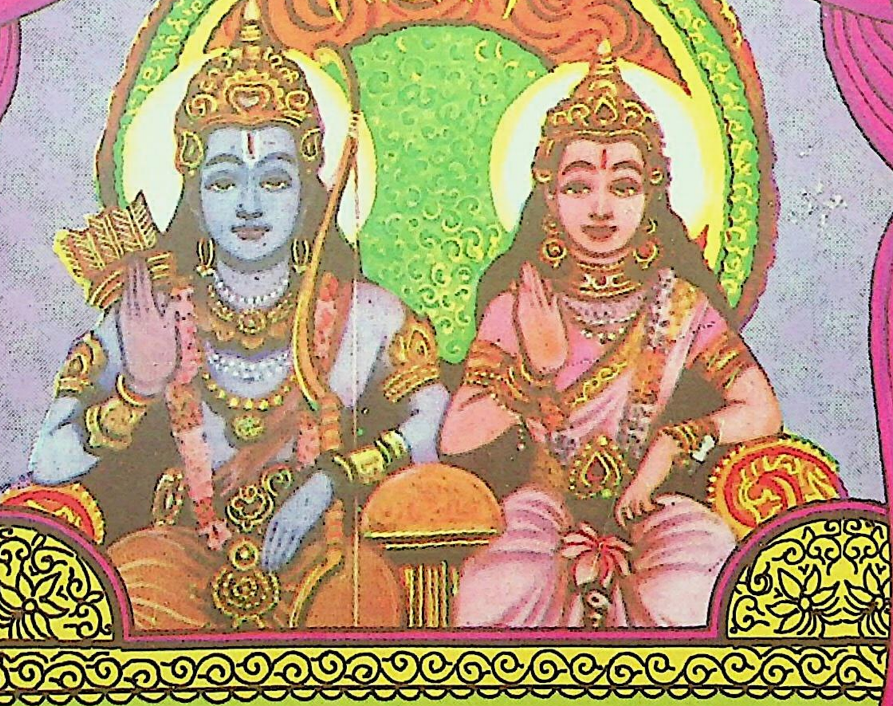
रामलीला रामायण

(सटीक)



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४००००४.

रामलीला रामायण

(सटीक)

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र द्वारा संगृहीत



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : मार्च २०१८, संवत् २०७४

मूल्य : २५० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

भूमिका

इस देश में भगवद्भक्तों को भक्ति के दृढ़ करने और इतरजनों को सब प्रकार की राजनीति सामाजिक नीति के उपदेश करने में रामचरित्र के समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। प्रतिवर्ष सैकड़ों स्थानों में चैत्र तथा आश्विनमास में रामलीला हुआ करती है, रामायण में जितने स्वरूप हैं, वे सब बनकर रामचरित्र का अनुकरण करते हैं, परन्तु इस समय गोस्वामी-तुलसीदासकृत रामायण के आधार पर रामलीला होती है, यह ग्रन्थ कथा की रीति पर भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी ने रचा है, जिससे लीला करानेवालोंको यह कठिनता उपस्थित होती है कि लीला कराने के समय किस चौपाई को छोड़ना चाहिये और किसको पढ़ना चाहिये और सर्वत्र इस चरित्र के कराने में चतुर पुरुषों की प्राप्ति भी कठिन है और पढ़नेवालों की बुद्धि के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार से चरित्र किया जाता है। यह देखकर यह विचार हुआ कि इस तुलसीकृत रामायण में से वही उपयोगी दोहा चौपाई चुन ली जायँ जिनका केवल रामलीला मात्र से सम्बन्ध हो और कथा क्रम भंग न हो। यही सिद्धान्तकर हमने रामायण में उपयोगी ग्रन्थ का उद्धार किया है और जो चौपाई पात्रों के कहने योग्य हैं उनसे पहले कहनेवालों का नाम लिख दिया है। यदि वे दोहे चौपाई रामलीला करनेवाले अपने मुख से कहें तो रामलीला की चौगुनी शोभा हो सकती है और यदि चौपाई याद न हो तो उसका अर्थ कह दें और जिन दोहा चौपाइयों के पहले कोई नाम नहीं लिखा है उनको रामलीला करानेवाले पंडित लीलाक्रम मिलाने के लिये स्वयं पढ़ दें और पात्रों के वचन भी पढ़ दें तो भी लीला हो सकती है परंतु पूरी लीला तभी समझी जा सकती है जब लीलापात्र अपने मुख से चौपाई आदि पढें, जो दोहे चौपाई केवल पंडितजी के पढ़ने के हैं उनको ' " ( ) इस प्रकार चिह्न से जता दिया है। रामलीला कहीं दस, पन्द्रह, बीस, कहीं तीस दिन तक हुआ करती है इस कारण हमने लीला में दिनों का विधान नहीं किया है कि इस दिन इतनी लीला करो। केवल एक एक लीला का एक एक दृश्य कल्पना कर लिया है। लीला करानेवाले अपने अपने दिनों के अनुसार उनको विभक्त कर लें, कहीं कहीं कोई कोई दृश्य अनुपयोगी है तो लीला करानेवाले उनको छोड़ सकते हैं, जैसे सुमन्त का आगमन और राजा दशरथ का मरण, पर ऐसे स्थलों पर हमने * ऐसा फूल बनाकर नोट कर दिया है। सात काण्डों में जिस पात्र की जैसी आकृति वेष और

पता हो उसकी एक अलग सूची दी है उसके अनुसार उनका वेष करना चाहिये। तथा दृश्यों में जितने पात्रों की आवश्यकता होती है वे भी वहीं देख लेने, और रामलीला दो प्रकार से होती है। एक नेपथ्य बनाकर एक मैदान में, इसलिये दोनों प्रकार की सामग्री का ही इसमें वर्णन किया है।

यदि हम चाहते तो इसको सम्पूर्ण नाटकाकार कर सकते थे, पर ऐसा करने से गोस्वामीजी की वाणी की तोड़फोड़ करनी पड़ती जैसे–"पुनि आउब इहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहँसी इक आली" इसमें चौपाई का पिछला भाग कथारूप बदलना पड़ता। "चलहु अबार होत अब आली" ऐसा करने से तब यह सखी का वाक्य पूरा होता, पर ऐसा करने से रामायण की सरसता जाती रहती, और कदाचित् हरि भक्तों को यह असह्य होता और यह रामलीला है। निरा नाटक नहीं है, यह विचारकर हमने ज्यों की त्यों चौपाई लिखी हैं और पूरे वाक्य के पहले पढ़नेवाले का नाम लिखा है। यदि कहीं आधे वाक्य पर नाम हो तो आधा वाक्य पात्र और आधा पंडितजी पढ़ दें, ऐसा करने से पूरा कार्य निर्वाह हो जायगा और यदि कोई निरी नाटकरीति से ही लीला करना चाहे तो इसमें केवल पात्र नामांकित दोहा चौपाई ही उच्चारण करा सकते हैं। ऐसा करने से उनका नाटक पूरा हो जायगा। और कहीं कहीं बहुत उपयोगी जानकर हमने गद्य भी लिख दिया है तथा सर्वसाधारण के समझने योग्य कविकल्पतरु श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीकृत रामायण की भावभक्तिभरित-श्रीजगदाधार रामावतार की सभी अद्भुत लीला मुग्धमनोहर सरलार्थ और अनेक ग्रन्थों के विषय सारभूत टिप्पणियों से समलंकृत किया है और प्रसंग पर भक्तजनों के गाने योग्य भजन भी लिख दिये हैं।

लीला करनेवालों की सामग्री तथा इस जन समुदाय का प्रबन्ध करना इत्यादि का उपदेश भी लिख दिया है।

मुझे पूर्व आशा है कि यह ग्रन्थ हरिभक्त और लीला कराने वालों को बहुत रुचैगा और विज्ञजन इसी के अनुसार अपने अपने ग्राम नगर में रामलीला करावेंगे।

इस प्रकार यह ग्रन्थ सर्वांग से अलंकृत कर वैश्यवंशावतंस जगद्विख्यात सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदय को समर्पण कर दिया है जिन्होंने सर्व रामभक्त लीला अनुरक्त सद्गृहस्थ, साधु, सन्त, महंत और विशेषकर "रामलीला धनुष यज्ञ" करनेवालों को परमोपकारी जान निज मुद्रणालय में छापकर प्रकाशित किया है। विशेष इस समय हिन्दी तथा संस्कृत के उद्धार करने में तन मन धन लगा रखा है तथा विद्वानों को अनेक प्रकार के सन्मान से संतुष्ट करते रहते हैं।

अन्त में पाठक महोदयों से प्रार्थना है कि यदि इसमें कोई त्रुटि पावें तो सूचना दें, उचित होने पर अग्रिम संस्करण में ठीक कर दी जायगी।

सज्जनों का अनुगृहीत –
ज्वालाप्रसाद मिश्र
दिनदारपुर, मुरादाबाद,

नूतन संस्करण

रामलीला प्रेमी सज्जनों! मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र महाराज की असीम कृपा से, परम पवित्र रामलीला रामायण का यह नवीन संस्करण सर्वप्रकार सर्वाङ्गपूर्ण कर, परम शुद्धता के साथ आप महानुभावों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। ऐसे तो अन्यत्र भी रामलीला रामायण प्रकाशित हुई हैं, किन्तु विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत रामलीला रामायण पर मुग्ध हो, जनता ने जो यथोचित आदर किया है और उसी के अनुसार सुन्दर सुहावनी रामलीलायें कर, भक्तिपूर्ण सफलता प्राप्त की है तथा अपने स्नेह-प्रेम का पुनीत परिचय दिया है, उसके लिये हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

आशा है, इस नवीन संस्करण को भी रामलीला प्रेमी पूर्व से अधिक, अपनाकर, लेखक और प्रकाशक के भक्तिपूर्ण भाव को सफल करेंगे।

चिरपरिचित-रामभक्तानुरागी–
जगदीशप्रसाद मिश्र

दृश्यवर्णन

*

रामायण में जितनी लीला हैं संक्षेप से वह दृश्य लिखते हैं–

बालकाण्ड १

अयोध्याकाण्ड २

आरण्यकाण्ड ३

किष्किधाकाण्ड ४

सुन्दरकाण्ड ५

लंकाकाण्ड ६

उत्तरकाण्ड ७

ग्रन्थपूर्ति

श्रीः

रामलीला रामायण की बृहत् अनुक्रमणिका

*

इत्यनुक्रमणिका

उपदेश

१—यद्यपि रामचरित्र उपदेशों से ही भरा पड़ा है परन्तु हम मुख्य मुख्य उपदेशों को यहां पाठकों के विनोदार्थ लिखते हैं।

२—पुत्रों की प्राप्ति में देवी बल की भी प्राप्ति करनी चाहिये जैसे महाराज दशरथ ने यज्ञ कर पुत्रों की प्राप्ति की।

३—ऋषि, मुनि, महात्माओं को सदा सत्कार करना चाहिये जैसे दशरथजी ने विश्वामित्र के आने पर किया।

४—परोपकार के लिये तन मन धन सभी को त्याग देना जैसा दशरथ ने विश्वामित्र के उपकार के निमित्त प्राणप्रिय रामलक्ष्मण को भेज दिया।

५—प्राणियों को दुःख देनेवाले को अवश्य दण्ड दे जैसे रामचन्द्र ने ताड़का को मारा, योग्यशिष्य को समस्त विद्या देनी जैसी विश्वामित्र ने रामचन्द्र को विद्या दी। विना गुरु के आज्ञा के कोई कार्य न करे जैसे रामचन्द्र गुरु की आज्ञा से धनुषभंग करने चले।

६—अपने मुख से अपनी बड़ाई न करै जैसा लक्ष्मण कहते हैं–"शूर समर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आप"।

७—पंचो की संमति से कार्य करना चाहिये जैसा महाराज दशरथ कहते हैं—"जो पांचहिं मत लागै नीका । करहु हर्षि हिय रामहि टीका ।"

८—चाटुवादियों की ओर विकृताङ्गों की बात पर विश्वास न करे जैसा कैकेयी ने मन्थरा की बात पर किया।

९—स्त्रियों की अत्यंत प्रीति और उनकी माया में न पडें। पड़ने से दुःख होता है जैसे महाराज दशरथ ने कैकेयी से दुःख पाया।

१०—वचन देकर फिर न फिरे, चाहे प्राण जांय जैसा दशरथ ने किया, माता पिता की आज्ञा कैसी भी हो मान लेनी और सब माताओं को समान जाने जैसा रामचन्द्र ने मातापिता की आज्ञा सें वनवास लिया और सब माताओं को समान जाना।

११–सौतों में प्रीति कौशल्या के समान होनी चाहिये और सौतपुत्रों की प्रीति भी कौशल्या के समान होनी चाहिये जैसे कौशल्या कैकेयीकी आज्ञा को न मेट सकी और भरत को अपने पुत्र के समान जाना। सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम के साथ जाने में कहा–"तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सबभाँति सनेही ।"

१२–बहुओं को सास की सेवा करना परम धर्म है और सास को बहू अपनी पुत्री के समान रखनी चाहिये परस्पर विरोध चुगली करना उचित नहीं है सीता–"तब जानकी सासु पग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ।। सेवासमय दैव दुख दीन्हा ।

मोर 'मनोरथ' सफल न कीन्हा ।'' कौशल्या–''नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्राण जानकी लाई । जिवनमूरि जिमि जुगवत रहेऊं । दीपबाति नहिं टारन कहेऊं ।''

१३–भाइयों में ऐसी प्रीति हो जैसी राम लक्ष्मण और भरत की यथा सब सुख छोड़ लक्ष्मण राम के साथ गये और भरतजी नंगे पाव राम को मनाने गये और पिता का दिया राज्य लेकर आप भी चौदह वर्ष तपस्वी रहे।

१४–स्त्री को अपने पति के ही अनुकूल रहना चाहिये वह चाहे किसी दशा में हो जैसे जानकी सर्वस्व त्याग राम के साथ गई।

१५–कैकई के समान हठी स्त्रियों को पीछे पछताना पड़ता है।

१६—स्वामी के कार्य में स्त्रियों को बाधा देनी चाहिये जैसे कौशल्या ने दशरथ को वचन देने पर राम को वन जाने दिया, रोका नहीं तथा ज्येष्ठ भाई से प्रतिकूल हठ न करे जैसे भरतजी राम के वनगमन की उत्कट इच्छा जान लौट आये।

१७—अपराधी शरणागत हो तो उसकी प्राण रक्षा करे जैसे राम ने जयंत की रक्षा की।

१८–स्त्री की रक्षा का पूर्ण उपाय करे और उसकी विपत्ति निवारण वा उद्धार में पूर्ण पराक्रम करें जैसे रामचन्द्र ने किया कि, रावण का सर्वनाश कर दिया।

१९—स्त्रीपुरुषों को ऐसा स्नेह हो जैसे राम सीता के हरण में दुःखी हुए। जानकी अशोक बन में दुःखी रहीं।

२०—छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र की स्त्री इनको कन्या के समान जाने जैसा रामचन्द्र कहते हैं–''अनुजवधू भगिनी सुतनारी । सुन शठ ये कन्या सम चारी ।''

२१—मित्रों की मित्रता निष्कपट हो, जैसे सुग्रीव और राम की, दुःख के समय सौगुणनेह करे, विपत्ति से बचावै।

२२–दूत ऐसे होने चाहिये जो प्राणपन से स्वामी का हित करे जैसे अंगद हनुमान्, सेवक को स्वामी का हित ऐसा करना चाहिये जैसा मकरध्वज ने किया कि, पिता जानकर भी हनुमानजी को यथाबल भीतर न जाने दिया।

२३–घर के भेदी का तिरस्कार करने से दुःख होता है जैसे विभीषण का तिरस्कार कर रावण का नाश हुआ।

२४—जिसका देश जीतै वहां का राज्य पूर्व राजा के किसी सम्बन्धी को देना चाहिये जैसा रामचंद्र ने वालि के राज्य पर सुग्रीव को और रावण के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त किया।

२५—जिसकी जो वस्तु हो वह उसी के पास पहुंचा देनी चाहिये जैसे रामचन्द्र ने पुष्पक विमान कुवेर पर भेज दिया यद्यपि अलौकिक था।

२६—राज्य होने पर मित्रादि से समान बर्ताव रखे जैसे श्रीरामचन्द्र सब मित्रों से बर्ते। देवर का भाभी के संग लक्ष्मण भरत के समान बर्त्ताव होना चाहिये।

इसके सिवाय और भी अनेक उपदेश हैं, सुलोचना का पतिव्रत आदि सब लिखने से ग्रन्थ बढ़ जायगा।।इति।।

लीलाविधान

लीला करनेवाले को उचित है कि, लीला करनेवाले जितने पात्र हैं वे सब चतुर और उच्च स्वर से बोलनेवाले होने चाहिये और वह अपने कार्य को उसी प्रकार करे जिससे वह कार्य यथायोग्य होना विदित हो। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ग्रह सब कुमार अवस्था के होने चाहिये और चतुर होने चाहिये, राम का स्वरूप कुछ श्यामवर्ण हो तो और भी उत्तम है। सीता भी कुमारी और कोमल प्रकृति की होनी चाहिये, कौशल्या कैकेयी आदि बड़ी अवस्था की हों, दशरथ सुमन्त वसिष्ठ आदि सब बड़ी अवस्था के पुरुष हों, हनुमान् सुग्रीव जो बनें वे बलवान् पुरुष हों, अंगद का देह छोटा पांव मोटे हों, राक्षस श्यामवर्ण हों, शूर्पणखा पतली लंबे डौल की चतुर हो, कुबड़ी टेढ़ी चलनेवाली हो, कमर पर कूबड़ बनाना चाहिये। परशुराम तीक्ष्ण प्रकृति हों। इस ग्रंथ में जिन चौपाइयों के पहले कोई नाम लिखा है वह चौपाई लीला करनेवालों के कण्ठ हों तो बहुत ही उत्तम है, वे स्वयं पढ़ सकते हैं और यदि पंडित उनको पढ़े तो लीला करनेवाले उनका अर्थ अपने आप कह सकें तो बहुत उत्तम है इस कार्य की निपुणता तभी हो सकती है जब चार छः महीने पहले से उनको सिखाया जाय। लीला का स्थान इतना बड़ा हो जहां सर्व साधारण भली प्रकार देख सकें, लीलास्थान के बहुत निकट हाट न लगावें इससे शब्द बहुत होता है तथा आनेवाले पुरुषों को यथायोग्य स्थान में बैठावें, जिससे वे प्रसन्न रहें। रंगभूमि में नाटक पात्रों को छोड़कर कोई चलने फिरने और शब्द न करने पावे इससे रस बिगड़ता है। जहां रामचन्द्र की विजय हो उस समय बाजे का शब्द होना चाहिये। प्रत्येक दिन जितनी लीला करनी हो उसकी सामग्री प्रथम से उपस्थित कर लेनी चाहिये। जिसका वृत्तांत आगे हमने लिखा है और लीला इस प्रकार हो जिससे सब देखने वाले देख सुन सकें, यदि लीला नेपथ्य में हो तो पहले सूत्रधार एक पुरुष आकर इस बात की सूचना कर जाय कि आज यह लीला होगी और उसके आने पर बाजा रोक दिया जाय, यदि नेपथ्य न बना हो तो वैसे ही लीला आरंभ की जाय। यदि लीलापात्र चौपाई कहते में भूलें तो सूत्रधार को चुपके से बता देना चाहिये, परस्पर की बात सन्मुख होकर करनी चाहिये, हँसी के समय हँसना जैसा मुख, और दुःखादि के समय उदासीन मुख कर लेना चाहिये। यदि लीला मैदान में बाड़ा बांधकर की जाय तो लीला करनेवाले चारों ओर घूमते हुए लीला करें और थोड़ी थोड़ी दूर चलकर खड़े हो, पढ़ें और जब युद्ध हो तो दोनों ओर के वीर बड़े बड़े टाट के गोले उछालते सब ओर घूमते फिरें, तात्पर्य यह है कि जिस लीला का जो भाव है उसमें न्यूनता न होनी चाहिये। इति शुभम् ।

प्रस्तावना

बालकाण्ड १

प्रथम दिन शिवपार्वती का दर्शन कराय पार्वती के प्रश्नों का उल्लेख होना चाहिये पश्चात् ब्रह्मादि देवता और गौरूप पृथ्वी यह सब क्षीरसागर के समीप खड़े हों, भगवान् की स्तुति करें, ब्रह्माजी के चार मुख शिवजी के जटाजूट देवता सुन्दरवर्ण और एक गौ क्षीरसागर के स्थान में एक श्वेतवस्त्र बिछा हो। परदे के पीछे से आकाशवाणी हो।

रामजन्म

इस दिन चार छोटे छोटे सुन्दर बालक परदे की ओट करके तीन स्त्रियों के समीप बैठा दिये जांय। कौशल्या के निकट १, सुमित्रा के निकट दो, कैकेयी के निकट १ फिर जय बोलकर परदा हटा देना चाहिये। पीछे बालकों के संग खेलना आदि कृत्य करना चाहिये। इससे पहले दो ऋषियों के संग महाराज दशरथ का यज्ञ करना चाहिये, एक कुण्ड में आहुती देनी और अग्नि का प्रसाद लेकर राजा तीनों रानियों को खीर खिलावे। पुत्रों के जन्म होने पर गुरु वसिष्ठ आकर बालकों का नामकरण करे, फिर राम बालकों के वस्त्र पहरकर बाललीला करें।

विश्वामित्र यज्ञ

विश्वामित्र आकर रामलक्ष्मण को लिवा ले जायँ, मार्ग में ताड़का को एक ही बाण से मार दें फिर विश्वामित्र यज्ञ करें। कई विद्वान पंडित और ऋषि बैठे मृगछाला बिछी हो, पंडित स्वस्तिवाचन करे, राम के बाण छोड़ते ही गुब्बारे के समान शिर हाथवाले मारीच के पेट मे धुंआ भरकर उड़ा देना चाहिये। शेष सेना को युद्ध कर मारना चाहिये फिर वहां से चलकर मार्ग में एक कपड़े से ढ़की स्त्री को चरण छुआकर राम उद्धार करें और वह स्तुति कर चली जाय। विश्वामित्र का जनकनगर में जाना और उनसे जनकजी का मिलन यथायोग्य होना चाहिये। पीछे राम का नगर देखने जाना और परस्पर स्त्रियों की बातचीत दिखाई जाय अथवा यह प्रसंग छोड़ दिया जाय।

फूलवाड़ी दर्शन

इस दिन एक कृत्रिम बगीचा बनाकर उसमें गौरी बैठाई जाय। रामलक्ष्मण फुलवारी के फूल एक ओर तोड़ते फिरें, दूसरी ओर सखियों के साथ जानकी दर्शन

कर फिर बातें कर वारी के फूल एक ओर तोड़ते फिरें। दूसरी ओर सखियों के साथ जानकी दर्शन कर फिर बातें कर गौरी पूज घर जांय।

चापभंजन

इस दिन बीच में धनुष रखकर राजाओं को सजाकर बैठाना चाहिये और उनके धनुष न उठाने पर जब रामचन्द्र धनुष को तोड़ें तब गोले वा बन्दूकों का शब्द होना चाहिये और उसी समय परशुराम बड़ा क्रोधकर आवें और राम लक्ष्मण से सम्वाद होकर धनुष दे वन को चले जाँय।

रामविवाह

जनक के दूत पलट जाने पर दशरथ, वसिष्ठ, सुमन्त, भरत, शत्रुघ्न हाथियों पर चढ़ बाजे बजाते हुए चलैं और चारों भाइयों का विवाह एक ही मण्डप में यथायोग्य दिखाना चाहिये। पीछे विदा हो घर आवें, रामचन्द्रादि चारों भाइयों का दूलह का वेष होना चाहिये।

अयोध्याकाण्ड २ (राम का वनवास)

पहले राम के निकट नारदजी आवें पश्चात् राजा दशरथ गुरु से पूछ राम के राज्य की तैयारी करें। मन्थरा देखकर कैकेयी से कहे और कैकेयी आभूषण उतारकर कोपभवन में चली जाय, वहां दशरथ से बातचीत होकर वरदान मांगै, रामचन्द्र सबसे विदा हो सीता लक्ष्मण के साथ वन के कपड़े पहन रथ पर चढ़ अयोध्या से चले जायँ और गंगातट पर निषाद से बातचीत हो। वहां से सुमन्त को बिदाकर निषाद के चरण धोने से पीछे गंगा पार हो जायँ और वाल्मीकादि मुनियों से मिलते हुए चित्रकूट पर निवास करें।

भरतमिलन

सुमंत के लौटने पर राजा दशरथ प्राण त्याग दें (चाहे यह दृश्य छोड़ दे) फिर भरतजी नाना के यहां से आकर बातचीत कर राम को मनाने जायँ, मार्ग में निषाद का युद्धोद्योग दिखाकर पीछे भेंट और राम के समीप गमन करें। दोनों भाई प्रणाम करते चलें। राम से भेंटकर उनके दिये खडाऊ शिर पर धर लौट आवें।

आरण्यकाण्ड ३

जयंत जब सब ओर से घूमकर राम की शरण आवे और राम उसको उत्तर दे

चुकें तब एक आदमी पीछे खड़ा होकर जयंत की आंख फोड़ दे और जयंत फिर भागता हुआ चला जायँ, फिर रामचन्द्र अनेक ऋषियों के आश्रम पर जाय, शरभंगमुनि का खपच्ची का ढांचा बनाया जाय उसके पीछे एक मनुष्य बैठकर बातचीत करे। पीछे उसमें अग्नि देने से वह आदमी उठ जाय।

शूर्पणखा का मुख कृत्रिम रवड़ का बनाना चाहिये जिसमें नाक बहुत लम्बी हो और भीतर उसमें लाल रंग भरा हो, जो नाक काटने से बहने लगे वा चेहरे पर लाल रंग लगा दो। खर दूषण और राक्षसों के ढाल तलवार वा एक कृत्रिम बरछी होवे। पैतरे फेरते हुए राम की ओर खड्ग ढाल दिखावें, घुमा देवें, रामचन्द्र के चारों ओर घूमें, अंत में वे सब लेट जायं, दो मनुष्य इनकी टांग घसीट २ ले जायँ, अग्नि में जानकी का सौंपना यही है कि जानकी अग्निस्पर्श कर लें। मारीच नामक मृग इस प्रकार खपच्चियों का बनाया जाय कि उसके आगे पीछे दोनों ओर मुख हों और वह सुनहरी पन्ने से मढ़ा हुआ हो, चारों पांवों में पहिले लगें हो। एक आदमी उसे लेकर चले। राम पीछे चले, रगंभूमि में हो तो दो मनुष्य उसमें लगे, तारको इधर उधर खेंचे जब वह गिरे तो एक आदमी हा लक्ष्मण! चिल्ला उठे जब लक्ष्मण राम को देखने जायँ तब रावण संन्यासी के वेष में आय जानकी को ले जाय और जटायु कागज का बना हुआ किसी मनुष्य के उठाने पर युद्ध करे। रंगभूमि नेपथ्य में तारों द्वारा जटायु युद्ध करे पीछे रावण पंख काटकर जानकी को ले जाय और राम लक्ष्मण जानकी का खोज करते आवें और जटायु से बात करें। उसकी क्रिया करने पर उसने नीचे से निकला पुरुष मुकुटादि पहरे विष्णुरूप से चला जाय। फिर मार्ग में रामचंद्र कबन्ध को मारें। यह एक ऐसा कृत्रिम बनाया जाय जिसके पेट में शिर हो। पीछे शबरी के जाय सत्कार पाय नारदजी से बात करें।

किष्किंधाकाण्ड ४

राम लक्ष्मण को महावीरजी कन्धे पर चढ़ाकर लावें, श्वेतरंग का नकली अस्थिसमूह और ताड़ के कृत्रिम सात पेड़ बना उनमें एक तार बांध दे जो राम के बाण मारते ही खेंचने से दूर जा पड़े। पीछे वालि, सुग्रीव से युद्ध होने पर राम वृक्ष की ओट से वालि को मारें और तारा को समझाय सुग्रीव को राज्य दे। वानरों को सुध के लिये चारों ओर भेजें।

सुन्दरकाण्ड ५

कृत्रिम समुद्र श्वेत कपड़ा बिछाकर इतना चौड़ा बनाया जाय कि हनुमान उसको एक छलांग में लांघ जाय। मार्ग में सुरसा से बातकर लंकनी का प्रहार कर लंका में जो बड़ी विचित्र कागज से मढ़ी बनी हो जायँ, वहां से विभीषण से बातकर

अशोकवाटिका में जाय। वृक्ष पर छिप रहें और रावण के चले जाने पर मुद्रिका डालकर फिर जानकी से बातें कर वन उजाड़ राक्षसों से युद्ध कर मेघनाद से पकड़े जाकर फिर रावण के दरबार में जाय समझाय फिर लंकापुरी जलावें। लंका में अग्निक्रीडा के गोले धरे हों, जलते समय उनमें से बड़ा शब्द हो, पीछे महावीर सीता से पूछकर रामचंद्र को संदेशा सुनावें।

राम का सेनासहित सागरतट गमन करना, रावण की सभा विभीषण का शरण में आना, रामचंद्र का उसको तिलक करना और फिर मार्ग मांगने को समुद्र तट पर बैठना, पीछे क्रोध करने पर सागर का श्वेत वस्त्र पहरे बाहर निकलना और आगे भेंट धरकर पुल बांधने का उपाय बताना, ये सब होना चाहिए।

लंकाकाण्ड ६ (समुद्रतरण)

राम का कटक सहित समुद्र के पार जाना, कृत्रिम समुद्र पर काठ वा मोटे पत्र की अनेक रंग की पटली बिछाकर पुल वनवाना चाहिये। पीछे वहां शंकर का स्थापन कर सब पार जांय, रामचन्द्र की ओर से अंगद जांय और एक रावण के पुत्र को मार कथोपकथन कर पैर अड़ाय रामचन्द्र पर आवें।

कुंभकर्ण मेघनाद वध

वानर और राक्षस टाट मढ़े गूदड़ के गोलों से युद्ध करे, मेघनाद लक्ष्मण का युद्ध सब ओर को हो और मेघनाद एक शक्ति लक्ष्मण के मारे जिससे वह गिर पड़ें (रात में हो तो शक्ति में जलती फुलझड़ी लगाई जांय (हनुमान् उनको उठाकर लावें फिर सुषेण को घर से लावें। पीछे सजीवन लेने चलें। सरोवर एक कपड़े का हो उसके नीचे एक लड़का अप्सरा बना लेटा हो वह महावीर का पैर पकड़े, हनुमान् उनको झटका दें। तब वह अप्सरा निकलकर वृत्तान्त कह चली जाय, हनुमान् कालनेमि को मारकर पर्वत पर जावें, वह पर्वत बीस खपच्ची का बना हो, रात में लीला हो तो उस पर ज्वलित बत्तियां लगीं हो, उसको उठाकर कूदते फांदते चलें और मार्ग में भरत के बाण लगने से गिरकर चैतन्य हो बिदा हो रामदल में आवें और लक्ष्मणजी के उठने पर फिर पर्वत जहां का तहां पहुँचा दें।

तब कुंभकर्ण को रावण जगावें और वह युद्धकर राम लक्ष्मण के हाथ से मारा जाय। मेघनाद कुंभकर्ण कृत्रिम कागज बांस के बहुत बड़े बनाने चाहिए, फिर मेघनाद युद्ध करे और नागफांस में सबको बांध ले फिर गरुड़जी आनकर उस नाग को निगल जांय (यह कागज का बना हो। मैदान की लीला में आदमी उठाकर लावे और सर्प लपेट चला जाय) पीछे मेघनाद यज्ञ करे और युद्ध कर लक्ष्मण के हाथ से मारा जाय उसका शिर लक्ष्मण राम के पास लावें, भुजा तार से लंका में फेंक दी

जाय, सुलोचना एक चौकी पर बैठी हो उसके आगे गोल छेद हो उसके नीचे एक मनुष्य हो, सुलोचना उस भुजा के मोटे सिरे को छेद पर धर हृदय से लगाय रुदन करे तब चौकी के नीचे का मनुष्य छेद द्वारा अपना हाथ भुजा में डालकर उंगली से लिखे, चौकी पर कपड़ा बिछा हो, सुलोचना रावण पर जाय बातकर पीछे रामचंद्र पर आय विनय करे। राम के निवास स्थान में शिर ऐसे स्थान पर धरा हो जिसके नीचे गढ़े में एक आदमी बैठा हो उसका शिर मेघनाद के कृत्रिम शिर में समा जाय, कपड़ा बिछा हो। सुलोचना के कहने से वही नीचे से हँसे और फिर शिर ले जाय। कृत्रिम सुलोचना सती हो जाय।

अहिरावणवध

रावण मंत्र जपने बैठे, अहिरावण आवे और बताकर रामचन्द्र और लक्ष्मण को वानरों के सोते में उठा ले जाय। अपने लोक में जाकर यज्ञ करे। महावीरजी वानरों से बात करें, रामलक्ष्मण को लेने जाय और मकरध्वज से युद्ध कर उसे बांध भीतर जाय और देवी के मुख के आकार की झूल पहर पूजा की सब सामग्री खा जांय। जब अहिरावण राम लक्ष्मण को बलिदान के लिये खड़ा करे तब महावीर मन्दिर से निकल रामलक्ष्मण को उठाय अहिरावण से खड्ग छीन उसे मार मकरध्वज को राज्य दे अपनी सेना में आवें।

रावण वध

एक दो बार पैदल पीछे विमान पर बैठकर रावण से युद्ध करें, पीछे कृत्रिम रावण जिसमें अग्निक्रीड़ा के द्रव्य लगें हो, फूंक दिया जाय, रामलक्ष्मण अपने निवेश में आवें।

पीछे मन्दोदरी विलाप करें, विभीषणादि रावण को जलांजलि दे फिर विभीषण को लंकाराज्य की प्राप्ति, पीछे जानकी रामचन्द्र के समीप लाई जांय, वह अग्नि स्पर्श कराय शुद्ध की जांय। (यही वास्तविक सीता का प्रगट होना है) फिर दशरथ विमान पर आय प्रणामकर चले जायं और सब देवता आय स्तुति करें। इन्द्र राम की आज्ञा से विमान में बैठ पिचकारी से जल बरसाय मृत वानरों को जिवावैं।

राम का अवधगमन

विमान में बैठकर सुग्रीवादि वानरों के सहित राम लक्ष्मण अयोध्या को चलें और सब स्थान दिखाते हुए मुनियों से मिल निषाद से भेंट करे और महावीरजी को भरत के पास समाचार लेने भेजैं।

उत्तरकाण्ड ७

(महावीर का भरत से सम्वाद)

भरतजी कुशासन पर राम राम जपते हुए जटा बढ़ाये हो उनसे महावीर सम्वाद करें, राम का सन्देश पाकर भरत शत्रुघ्न वसिष्ठादि पुरुष सब माता यह राम के निकट चलें और परस्पर मिलें भेटें।

रामचन्द्र को राज्याभिषेक

इस दिन बड़े बड़े झाड़ फानूस दीपक बालकर मण्डप वा सभागृह सजाया जाय, महाराज रामचन्द्र, जानकी लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न उत्तम २ वस्त्र आभूषण धारणकर सिंहासन पर बैठें और वसिष्ठ मुनि अपने हाथ से तिलक करें, पीछे महाराज को भेंट दी जाय और उनके सन्मुख नृत्य गान होता रहे।

इति

विशेष कृत्य

दशरथ की राजसभा–बीच में एक सिंहासन वा सजी हुई चौकी के आगे पुष्पपात्र रखे हो, दाहिने बांये चौकी हों।

यज्ञ–इसमें मुनियों के बैठने की मृगछाला बिछी हों, कुशादि सन्मुख धरे हों, रामलक्ष्मण के बैठने को चौकी बिछी हो।

जनकसभा–बीच में धनुष बड़ा लम्बा सजा धरा हो, चारों ओर राजाओं को बैठने को कुरसी बिछी हों।

कोपभवन–इसमें बिछौना बिछा हो, एक डेरे सा घर हो।

चित्रकूट–एक ऊँचा स्थान कृत्रिम वृक्षों से युक्त हो, बीच में चौकी हो।

पंचवटी–मार्ग में मुनियों के आश्रम, कृत्रिम वृक्ष, एक चौकी बिछी हो।

खरदूषण गृह–दोनों के बैठने को दो चौकी बिछी हों।

मारीच का घर–मारीच के बैठने को चटाई और रावण को कुरसी हो।

रावणसभा–बीच में कुरसी इधर उधर तिपाई हों।

शबरी का स्थान–चटाई बिछी हुई, कुशा के आसन धरे हुए हों।

ऋष्यमूक पर्वत–ऊँचे स्थान पर चौकी बिछी हुई।

वालि का स्थान–दो चौकी बिछी हुईं।

विभीषण का घर–दो चौकी बिछी हुईं।

अशोकवाटिका–चारों और कृत्रिम वृक्ष अशोक के नीचे एक चौकी बिछी हुई।

द्रोणाचल–एक कृत्रिम पर्वत कागज मढ़ा हुआ।

भरतआश्रम–बीच में एक चौकी चारों ओर तुलसी आदि के बिरवे।

रामनिवेश–बीच में दो कुरसी नीचे फरस हो।

लंका–एक बड़ा स्थान कागज का विचित्र मढ़ा हुआ वा जैसा उचित हो जिसमें चार द्वार हों, ऊपर बैठक हो।

पाताललोक–नेपथ्य में हो तो जाली के भीतर लीला हो।

रामाभिषेक मण्डप–यह स्थान बहुत सजा हुआ हो, इसमें बहुत सी कुर्सियां हों, सुन्दर बिछौने हों, दीपावली हो।

प्रगट हो कि रामलीला दो प्रकार की हो सकती है। एक मैदान में, दूसरी नेपथ्य में, जो नेपथ्य में लीला की जाती है वह नाटक रीति पर होती है उसमें पात्रों के विशेष विज्ञ होने की आवश्यकता है उसके निमित्त वैसे ही सामान किये जाते हैं। तार आदि लगाये जाते हैं, एक लीला बाड़ा बांधकर मैदान में होती है उसमें सर्वसाधारण के देखने योग्य वैसे ही कार्य किये जाते हैं। हमने दोनों प्रकार के उपयोगी विषयों का इसमें वर्णन किया है।

पात्रों के नाम और वेष आदि

नाम	व्याख्यान	वेष
विश्वामित्र	एक ऋषि कुशिक वंश में उत्पन्न	शिरपर जटाजूट बांधे,गलेमें तुलसी कीमाला,जनेऊ पहरे,हाथमें कमण्डलु, पीतांबर ओढ़े, धोती खडाऊं पहरे, माथे पर तिलक, लम्बी दाढ़ी जिसमें काले सफेद बाल
वशिष्ठ	राजा दशरथ के गुरु और पुरोहित	विश्वामित्र के समान वेष ।
दशरथ	अयोध्या के राजा	राजाओं का सा वेष, शिर पर मुकुट, माथे पर तिलक, दुशाला ओढ़े हुए ।
सुमन्त	राजा दशरथ के मन्त्री	अंगरखा, घुटन्ना, पगड़ी, जूता,दुपट्टा दुशाला, माला, कंठी पहरे हुए।
शृंगीऋषि	अंगराज के जामाता	वेष विश्वामित्र के समान।
राम	दशरथके पुत्र कौशल्यासे जन्मे रघुनन्दन रघुवीर रघुनाथ आदि नाम से प्रसिद्ध भगवान्	राजकुमारोंकासा वेष विवाहतक सब भूषणकिरीट आदि धारणकिये बहुमूल्य वस्त्र पहरे वन जानेके समय जटामुकुट पीतवस्त्र पहरे हाथमें धनुषबांण।
लक्ष्मण	दशरथसे सुमित्रामेंउत्पन्न अनन्त रामानुजनामादि	वेष राम के समान ।
भरत	कैकेयी पुत्र	वेष राम के समान ।
शत्रुघ्न	सुमित्रा पुत्र	वेष राम के समान ।
ताड़का	एक राक्षसी सुन्दकी स्त्री	कालेरंगका वस्त्र बुरामुख लंबेबाल ।
सुबाहुमारीच	ताड़का के पुत्र	काले वस्त्र पहरे हाथमें बांसलिये ।
अहल्या	गौतम की स्त्री	पीलीसाड़ी पहरे, माथे में टीका ।
जनक	मिथिलापुर के राजा	दशरथ के समान वेष, डाढ़ी में भेद।
शतानन्द	जनक के पुरोहित	विश्वामित्र के समान वेष।
सीता	जनक की पुत्री वैदेही जानकी भूमि से उत्पन्न	स्त्रियोंके सब भूषण वस्त्र पहरे,माथे पर चंद्रिका
परशुराम	जमदग्निसेरेणुकामेंउत्पन्न	मुनियों का सा वेष, पीलावस्त्र पहरे, धनुषबाण हाथ में लिये, कंधे पर कुठार धारे रुद्राक्ष की माला लिये

पात्रों के नाम और वेष आदि

नाम	व्याख्यान	वेष
रावण	लंकाका राजा दशकंधर दशशीशविश्रवा पुत्र	कृत्रिम दशशिर बीसभुजा राजवेषपर कालेवस्त्रधरे हाथमें ढालतलवार लिये।
बाणासुर	बलिपुत्र दैत्य	खौर लगाये श्वेतवस्त्र धारे
कैकेयी	दशरथकीरानीभरतकीमाता	स्त्रियोंके भूषण वस्त्र पहरे हुए।
मंथरा	कैकेयी की दासी	स्त्रियों के वस्त्र, पीठमें कूबड़
अरुन्धती	वसिष्ठकी स्त्री	पीलीसाड़ी, माथे पर तिलक
कौशल्या	दशरथकी रानी, रामकी माता	रानियोंके भूषण वस्त्र राजा के परलोक गमन पश्चात् श्वेत साड़ी।
सुमित्रा	लक्ष्मण शत्रुघ्न की माता दशरथ की रानी	रानियों के से भूषण वस्त्र।
निषाद	शृंगवेरपुर का राजा गुह	हरेरंगका अंगरखा, लालजांघिया,पगड़ी में गोटालगा, हाथमें धनुषबाण
जयन्त	इन्द्र का पुत्र	काकजैसी झल पहरे हुए।
इन्द्र	देवराज	श्वेतवस्त्र, शिरपर मुकुट, हाथ में सुनहरी दण्ड, रंगबिरंगा धनुष।
नारद	ब्रह्मा के पुत्र	हाथमें वीणा, पीतवस्त्र।
अत्रि	एकऋषि	पीतवस्त्रादि पहरे
अनसूया	अत्रि की पत्नी	पीलीसाड़ी जटाजूट बांधे माथेमें तिलक
शरभंग	एक मुनि	मुनिवस्त्र पहरे जटाजूट बांधे।
सुतीक्ष्ण	एक मुनि	मुनियोंका वेष गलेमें रुद्राक्ष
अगस्त्य	मुनिश्रेष्ठ	काला लहंगा, कालीछींटका दुपट्टा
शूर्पणखा	रावण की बहन	गोटालगा शिरके बाल खुले हुए। कालाअंगरखा जांघिया कृत्रिममुख।
खर दूषण	रावणके सेनापति	ढाल तलवार लिये
जटायु	गिद्धों के राजा	नीचे विष्णुरूप ऊपरसे गृध्रसमानझूलप०
कबन्ध	दनुपुत्र राक्षस	पेटमें शिर काला वेष
शबरी	भीलिनी	आधीटांगोतक सूतीका लहंगा, आधे शिरपर डुपट्टा हाथपांव गुदे हुए, मोटी मोटी चूड़ी।

नाम	व्याख्यान	वेष
सुग्रीव	बालिका भ्राता कपीश	कमरतकपीला अंगरखा गोटालगा जांघिया या कटिमेंलांगूल हाथमेंगदा कृत्रिममुख।
वालि	सुग्रीवका बड़ा भ्राता पम्पापुरका राजा	सुग्रीव के समान वेष।
हनुमान	सुग्रीवके सेनापति मारुत सुत पवनसुत	सुग्रीवकासा वेष,लालवर्ण विप्ररूपमें धोती पहरे माथेपर तिलक
तारा	बालिकी रानी	अच्छे भूषण वस्त्र पहरे।
अंगद	वालिका पुत्र युवराज वालिकुमार	सुग्रीवकासा वेष,हरेरंगके वस्त्र पांव कमरमें घूंघरू गलेमें हंसली हाथमें कड़े कानोंमें बाली
जाम्ववन्त	सुग्रीवका मन्त्री भालुओंका सेनापति ऋक्षराज	रीछोंका राजा रीछोंकी झूलपहरे।
सम्पाती	जटायुका बड़ा भ्राता	गृध्ररूपी झूलपहरे
विभीषण	रावणकाछोटाभाई रामभक्त पश्चात् लंकापति	पीला अंगरखा पीलीधोती तुलसीकी माला कृत्रिमुख माथेपर तिलक।
त्रिजटा	एक राक्षसी अशोकवनकी रखवाली करनेवाली	कालालहंगा दुपट्टा शिर पर तीनजटा।
अक्षयकुमार	रावणका पुत्र	राक्षसी वेष।
मन्दोदरी	रावणकी रानी	रानियों के से भूषण वस्त्रपहरे गोराशरीर
मालवन्त	रावणका मन्त्री	शिरपर पगड़ी अंगरखा पीला।
समुद्रदेव	तनुधारी समुद्र	श्वेत अंगरखा श्वेतपगड़ी हाथमें मोती भरे।
प्रहस्त	रावणका पुत्र	राक्षसी सेनापतिका वेष।
शुकनास	रावणका दूत	कमरतक कालीमिरजई जांघिया कृत्रिम मुख हाथ में काली बरछीका डंडा।
मेघनाद	रावण का पुत्र घननाद इन्द्रजीत	युवराज जैसा वेष गोटा टंकाहुआ काला अंगरखा धनुषबाण ढाल तलवार लिये।
सुषेण	लंका का वैद्य	लंबा अंगरखा धोती पगड़ी हाथ में। औषधियों का डिब्बा
कालनेमि	मुनिरूप राक्षस	तापसवस्त्र विभूतिरमाये तिलक दिये।

नाम	व्याख्यान	वेष
मकरी	एक अप्सरा शापवश नाके का रूप	सुन्दर स्त्री भूषण पहरे।
कुंभकर्ण	रावण का भ्राता	राक्षसीवेष बड़ा डील।
सुलोचना	मेघनाद की स्त्री	रानियोंका सा सुंदरवेष बाल खोले भूषण पहरे हुए।
अहिरावण	पाताललोक का राजा एक राक्षस	अंगरखाघुटन्ना मुकुटमें सापोंके फन बने हुए हाथमें ढाल तलवार।
महादेव	शिवशंभु शंकर सृष्टि संहारकारी	जटाजूट बांधे गलेमें रुद्राक्ष हाथमें त्रिशूल और डमरू सर्प लिपटे हुए पीली धोती माथे पर चंदनकी खौर कानोमें कुंडल
ब्रह्माजी	सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता	चारमुख खौर लगाये पुस्तक लिये। अंगरखा पहरे।
विष्णु	नारायण पालनकर्त्ता	चारभुजा मुकुट तिलक भूषण पहरे।

विशेष

राजा दशरथ के सभासद, द्वारपाल, सेवक, विप्र, बराती, जनक के प्रधान, बन्दीजन, सखियां, दूत, पुरोहित, मंत्रिपुत्र, केवट, किरात, भरत का सेवक, खर दूषण का मन्त्री इनका यथोचित वेष राक्षसों की सेना काले वर्ण की, वानरी सेना लालवर्ण की होनी चाहिये और यथायोग्य चाहिये।

इति

ज्वालाप्रसादमिश्र

श्रीगणेशाय नमः

रामलीला-रामायण

नान्दी-

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाः सुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।१।।

सोरठा-वन्दना

जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरवदन ।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभगुण सदन ।।१।।
मूक होहिं वाचाल, पंगु चढै गिरिवर गहन ।
जासु कृपासुदयाल, द्रवहु सकल कलिमलदहन ।।२।।
नीलसरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन ।
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीरसागर शयन ।।३।।
कुन्द इन्दुसम देह, उमारमण करुणा अयन ।
जाहि दीनपर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ।।४।।

टीका-जिनके स्मरण करते ही कार्य सिद्ध होते हैं वह गणेशजी हस्ती के समान सुन्दर मुखवाले बुद्धि के निधान अच्छे गुणों के आलय मेरे ऊपर कृपा करो*।।१।। जिनकी कृपा से गूंगे बोलते हैं, लँगड़े दुरूह पर्वतों पर चढ़ सकते हैं वह सब कलिमलनाशक दयालु मेरे ऊपर कृपा करो।।२।। नीलकमल के समान शरीरवाले नये खिले कमल के समान नेत्रवाले सदा क्षीरसागर में शयन करनेवाले मेरे हृदय में निवास करो।।३।। कुन्द और चन्द्र के समान शरीरवाले पार्वतीपति करुणामय दीनहितकारी काम के मर्दन करनेवाले शंकर मुझ पर कृपा करो।।४।।

---

*राग भूपाली-गाइये गणपति जगवन्दन । शंकरसुवन भवानी नन्दन ।। सिद्धिसदन गजवदन विनायक । कृपासिंधु सुंदर सब लायक ।। मोदक प्रिय मुद मंगल दाता । विद्यावारिधि बुद्धि विधाता ।। मागत तुलसिदास करजोरे । वसैं राम सिय मानस मोरे ।।१।।

वन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि ।
महामोहतम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥५॥
वन्दौं पवनकुमार, खलवन पावक ज्ञान घन ।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शरचाप धर ॥६॥
वन्दौं चारौं वेद, भव वारिधि वोहितसरिस ।
जिनहिं न सपनेहु खेद, वर्णत रघुपति विशद यश ॥७॥

गुरु के चरण कमलों को प्रणाम करता हूं, जो दयासागर नररूप हरि हैं जिनके वचन महा अज्ञान के दूर करने को सूर्य की किरणरूप हैं॥५॥ पवनपुत्र महावीरजी को प्रणाम करता हूं जो दुष्टरूपी वन के जलाने को अग्नि हैं जिनके हृदयरूप घर में धनुष बाण धारण किये श्रीराम निवास करते हैं॥६॥ चारों वेदों को प्रणाम करता हूं, जो भवसागर पार करने को जहाजरूप हैं, रघुनाथ का विमलयश वर्णन करते जिन्हें स्वप्न में भी खेद नहीं है॥७॥

इति वन्दना

प्रस्तावना

(कैलासपर्वत पर शिवपार्वती बैठे हैं)

पा०-विश्वनाथममनाथपुरारी । त्रिभुवनमहिमाविदिततुम्हारी।।१।।
ज़ो मोपर प्रसन्न सुखरासी । जानियसत्य मोहिं निजदासी ।।२।।
तो प्रभु हरहु मोर अज्ञाना । कहि रघुनाथ-कथाविधि नाना।।३।।
शेष शारदा वेद पुराना । सकलकरहिं रघुपति गुणगाना ।।४।।
तुम पुनि रामनाम दिनराती । सादर जपहु अनंग अराती ।।५।।
अति आरत पूछहुँ सुरराया । रघुपतिकथा कहहु करिदाया ।।६।।
प्रथम सोकारण कहहु विचारी।निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी ।।७।।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बालचरित पुनि कहहु उदारा ।।८।।
कहहु यथा जानकी विवाहा । राज तजा सो दूषण काहा ।।९।।
वनवसि कीन्हेउ चरित अपारा । कहहु नाथ जिमि रावण मारा ।।१०।।
राज्य बैठ कीन्ही बहुलीला । सकल कहहु शंकरसुरशीला ।।११।।
दोहा-बंदौ पदधर धरणि शिर, विनय करहुँ कर जोर ।
वर्णहु रघुवर विशद यश, श्रुति सिद्धान्त निचोर ।।१।।

पार्वती-हे विश्वनाथ! हे मेरे स्वामी शिव! तुम्हारी महिमा त्रिलोकी में विदित है।।१।। हे सुखराशी! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे अपनी दासी जानो।।२।। और रामचन्द्र की अनेक कथा कहकर मेरा अज्ञान हरो।।३।। शेष शारदा वेद पुराण सब रघुनाथ के गुणों का गान करते हैं।।४।। हे कामनाशक! तुम भी दिनरात रामनाम जपते हो।।५।। हे सुरपति! मैं बड़ी आरत होकर पूछती हूं आप दया करके रघुपति के चरित्र वर्णन करो।।६।। पहले तो यह कारण कहो कि, उस निर्गुण ब्रह्म ने किस प्रकार सगुण अवतार धारण किया।।७।। फिर रामावतार कहो उनके बालचरित बड़े उदार हैं सो कहो।।८।। फिर जानकी का विवाह कहो उन्होंने राज्य क्यों त्यागन किया।।९।। फिर वन में निवास कर क्या क्या उदार चरित्र किये। रावण को किस प्रकार मारा।।१०।। फिर राज्य पर बैठकर जो लीला की सो हे शंकर! वह सब सुखदायक चरित कहो।।११।। दोहार्थ-मैं पृथ्वी में शिर धरकर तुम्हारे चरणों को प्रणाम करती हूं कि, वेद का सिद्धान्त निचोड़कर रघुनाथ का यश वर्णन करो।।१।।

शिव-धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम समान नहिंकोउउपकारी।।१।।
पूछेहु रघुपति-कथाप्रसंगा । सकललोक जिमि पावनिगंगा ।।२।।
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवणरन्ध्र अहि भवन समाना ।।३।।
नयनन सन्त दरश नहिं देखा । लोचन मोर पंखकर लेखा ।।४।।
ते शिर कटतूमरसम तूला । जे न नमत रहि गुरुपद मूला ।।५।।
जिन हरिभक्ति हृदय नहिं आनी । जीवत शवसमान ते प्रानी ।।६।।
जे नहिं करहिं रामगुण गाना । जीह सुदादुरजीह समाना ।।७।।
कुलिश कठोर निठुर सो छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।।८।।
यथा अनन्त रामगुण गाना । तथा कथा कीरति गुण नाना ।।९।।
तदपियथा श्रुति जसमति मोरी । कहिहौं देखि प्रीति अतितोरी ।।१०।।
गिरिजा सुनहु रामकरलीला । सुरहित दनुज विमोहन शीला ।।११।।
सो०-हरिगुण नाम अपार, कथारूप अगणित अमित ।
मैं निजमति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ।।१।।

यह देखो रावणादि से भय पाये देवता क्षीरसागर में भगवान् के पास जाते हैं, हम भी चलै (गये)

इति प्रस्तावना

शिव-हे गिरिराजकुमारी! तुम धन्य हो तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है।।१।। तुमने रघुनाथ की कथा का प्रसंग पूछा जो सब लोकों में गंगा के समान पवित्र है।।२।। जिन्होंने कानों से हरिकथा नहीं सुनी उनके कर्णरन्ध्र सर्पों के भवन के समान हैं।।३।। जिन्होंने नेत्रों से सन्तों का दर्शन नहीं किया वे नेत्र मोरपंख के समान हैं।।४।। जो शिर हरि तथा गुरु के पदकमल में नहीं झुकते वे कड़वी तूमड़ी के समान जानो।।५।। जिनके हृदय में हरि की भक्ति नहीं है वह प्राणी जीते ही मृतक हैं।।६।। जो राम के गुण नहीं गाते उनकी जीभ मेंढकों की जीभ के समान है।।७।। जो छाती हरि के चरित्र सुनकर प्रसन्न न हो वह वज्र से भी अधिक कठोर है।।८।। जैसे राम के गुणगान अनन्त हैं इसी प्रकार उनकी कथाकीर्ति अनेक गुण अनन्त हैं।।९।। तो भी श्रुति के अनुसार जैसी मेरी मति है तुम्हारी प्रीति देखकर वर्णन करूंगा।।१०।। हे पार्वती! राम की लीला सुनो, जो देवताओं का हित करती और असुरों को मोह करती है।।११।।

सोरठार्थ-हरि के गुण और नाम अपार हैं और कथारूप भी अनन्त हैं, मैं अपनी मति के अनुसार कहता हूं हे प्रिये! प्रेम से सुनो।।१।।

इति प्रस्तावना

अथ प्रथमदर्शन

(स्थान क्षीरसागरतट)

(ब्रह्मादिक सम्पूर्णदेवता और धेनुरूपधारी पृथ्वी खड़ी है

ब्रह्माजी स्तुति करते हैं)

छ०—जयजय सुरनायक जनसुखदायक प्रणतपाल भगवन्ता ।
गोद्विजहितकारी जय असुरारी सिन्धुसुता प्रियकन्ता ।।
पालन सुरधरणी अद्भुतकरणी मर्म न जाने कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करो अनुग्रह सोई ।।१।।
जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
अविगतिगोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुन्दा ।।
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा ।
निशिवासर ध्यावहिं हरिगुण गावहिं जयति सच्चिदानन्दा ।।२।।
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा ।।
जो भव भय भंजन जनमनरंजन गञ्जन विपति वरूथा ।
मन वच क्रम वाणी छांड़ि सयानी शरणसकलसुरयूथा ।।३।।

ब्रह्माजी—हे देवताओं के स्वामी जनों के सुख देनेवाले दीनों के पालक भगवान्! तुम्हारी जय हो तुम गौ ब्राह्मणों के हितकारी असुरों के मारनेवाले लक्ष्मी के प्रियपति हो तुम्हारी जय हो तुम देवता और भूमि के पालक अद्भुतकर्म करनेवाले हो, तुम्हारा मर्म कोई नहीं जानता, जो स्वभाव से ही दयालु तथा दीनों पर कृपा करते हैं सो हमारे ऊपर अनुग्रह करो।।१।। हे अविनाशी! सब घट घट के सर्वत्र व्यापक परमानन्दस्वरूप! आपकी जय हो तुम्हारी गति जानी नहीं जाती, तुम इन्द्रियों से परे पवित्र चरित्र मायारहित मुकुन्द अर्थात् मोक्ष देनेवाले हो जिसके निमित्त वैरागी अति प्रेम से मोह त्यागकर दिनरात ध्यान करते हैं और गुण गाते हैं, हे सच्चिदानन्द! उन आपकी जय हो।।२।। जिसने दूसरे की सहायता के बिना सृष्टि उपजाकर सत, रज, तम तीन गुणों से प्रगट की है, सो हे पापनाशक! हमारी सुधि लो, हम तुम्हारी भक्ति और पूजा नहीं जानते हैं सो संसार के भयनाशक भक्तों के मन में आनन्द करनेवाले विपत्ति नाश करनेवाले भगवान् हम सब देवता मन वचन कर्म की चतुरता छोड़कर आपकी शरण हैं।।३।।

शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोइ न जाना ।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवो सो श्रीभगवाना ।।
भववारिधि मन्दर सब विधि सुन्दर गुणमंदिर सुखपुञ्जा ।
मुनिसिद्धसकल सुर परमभयातुर नमतनाथ पदकंजा ।।४।।

दोहा–(जा न सभय सुर भूमि सुनि, वचन समेत सनेह ।
गगन गिरा गम्भीर भइ, हरण शोक सन्देह ।।)

आकाशवाणी चौपाई–

जनि डरपहु सुरसिद्धि सुरेशा । तुमहिं लागि धरिहौं नरवेशा ।।१।।
अंशनसहित मनुज अवतारा । लेहौं दिनकर वंश उदारा ।।२।।
कश्यप अदिति महातप कीन्हा । तिनकहँ मैं पूरव वर दीन्हा ।।३।।
ते दशरथ कौशल्यारूपा । कौशलपुरी प्रगट नर भूपा ।।४।।
तिनकै गृह अवतरिहौं जाई । रघुकुलतिलक सो चारहु भाई ।।५।।
नारद वचन सत्य सब करिहौं । परमशक्ति समेत अवतरिहौं।।६।।
हरिहौं सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देवसमुदाई ।।७।।

सरस्वती शेष और सम्पूर्ण ऋषि जिनको कोई नहीं जान सकता जिनको दीन पियारे हैं ऐसा वेद पुकारता है सो भगवान् हमारे ऊपर कृपा करो, संसारसागर के मथने को मन्दराचल गुणों के मन्दिर! हे सुख के समूह! यह सब देवता सिद्ध मुनि परम व्याकुल होकर तुम्हारे चरणकमलों को प्रणाम करते हैं।।४।।

दोहार्थ–(देवता मुनि भूमि आदि को व्याकुल देख और प्रेमपूर्वक वचन सुन परदे के पीछे वाणी हुई।)

आकाशवाणी–हे सुर सिद्ध इन्द्रादिक तुम कोई भय मत करो, मैं तुम्हारे निमित्त मनुष्य का वेश धारण करूंगा।।१।। मैं उदार सूर्यवंश में अंश से मनुष्य का अवतार लूंगा।।२।। कश्यप अदिति ने पहले बड़ा तप किया था मैंने उनको पूर्व में वर दिया था कि, मैं तुम्हारे घर प्रगट हूंगा।।३।। वही अयोध्या में राजा दशरथ और कौशल्यारूप हैं।।४।। उनके घर चारों भाई रघुकुलतिलकरूप से प्रगट होंगे।।५।। और नारदजी ने जो कहा है तुमको नरदेह धारण करनी पड़ेगी सो उनका भी वचन सत्य करूंगा। परम शक्तिसहित अवतार लूंगा।।६।। भूमिका सब भार हरूंगा हे देवताओ! तुम सब निर्भय हो और अपने अपने स्थानों को गमन करो।।७।।

(आकाशवाणी मौन हुई)

ब्रह्माजी–हे भूमि! तुमने भगवान् का वचन सुना अब किसी प्रकार का भय मत करो और अपने स्थान को जाओ और हे देवताओ! तुम भी अपने अपने अंश से रीछ वानरों का शरीर धारणकर भगवान्‌की सेवाके निमित्त भूमि में प्रगट होवो,हम भी अपने लोकको जाते हैं।

देवता–जो आज्ञा! ऐसा ही करेंगे (सब गये) (इति प्रथम दर्शन)

अथ द्वितीयदर्शन

(राजा दशरथ का स्थान)
(राजा दशरथ कौशल्या कैकेयी सुमित्रादि स्थित हैं)

चौ०—एकबार भूपतिमनमाहीं । भइ गलानि मोरे सुत नाहीं ।।१।।
गुरुगृह गयउ तुरत महिपाला । चरणलागि करि बिनय विशाला ।।२।।
निजदुखसुखनृप गुरुहिसुनायो । कहवशिष्ठबहुविधिसमुझायो ।।३।।
वशिष्ठ-धरहु धीर हुइहैं सुतचारी । त्रिभुवन विदित भक्त भयहारी ।।४।।
(श्रृंगीऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा । पुत्रलागि शुभ यज्ञकरावा) ।।५।।

(महाराज दशरथ यज्ञ करते हैं वसिष्ठ आहुति बोलते हैं
अग्नि बल रही है)

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये । ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय । ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये । ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय । ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ॐ इमं मे वरुण श्रुधीहवमद्या च मृडय त्वामवस्युराचके स्वाहा ।

एक बार राजा दशरथ के मन में चिन्ता हुई कि मेरे पुत्र नहीं।।१।। तुरंत राजा गुरु के घर गये और चरण वंदनाकर बड़ी विनय की।।२।। राजा ने अपना दुःखसुख गुरु को सुनाया तब वसिष्ठ समझाते हुए बोले।।३।। हे राजन्! धीर धरो तुम्हारे त्रिलोकी में विख्यात भक्तों के भय हरनेवाले चार पुत्र होंगे।।४।। वसिष्ठजीने श्रृंगीऋषि को बुलाकर पुत्र के हेतु सुन्दर यज्ञ कराया)।।५।।

भक्तिसहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिनि चरूकर लीन्हे।।६।।
अग्नि-जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा।सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा ।।७।।
यह हवि बांट देहु नृप जाई । यथायोग्य जेहि भाग बनाई ।।८।।
गुरुपद वंदि भूप गृह आये । मंजुल मंगल मोद बधाये ।।९।।
तबहि राउ प्रियनारि बुलाई । कौशल्यादि तहां चलि आई ।।१०।।
अर्द्धभाग कौशल्यहि दीन्हा । उभयभाग आधेकर कीन्हा ।।११।।
कैकेयी कहँ नृपले दयऊ । रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ ।।१२।।

कौशल्या कैकेयी हाथ धर । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न कर ॥१३॥
इहिविधिगर्भसहितसबनारी । भयउ हृदय हर्षित सुख भारी ॥१४॥
सुखयुत कछुककाल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥१५॥

दोहा–योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल ॥
चर अरु अचर हर्षयुत, रामजन्म सुखमूल ॥१॥

मुनि के भक्ति से आहुति देने पर चरु हाथ में लिये अग्नि प्रगट हुए॥६॥ हे वसिष्ठजी! तुमने जो हृदय में विचारा वह तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हुआ॥७॥ हे राजन्! यह हवि यथायोग्य विभाग रानियों को बांट दो॥८॥ राजा गुरु के चरणों को प्रणाम कर घर आये और श्रेष्ठ बधाई और मंगलाचार हुए॥९॥ तब राजा ने अपनी प्रिय स्त्री बुलाई वे कौशल्या आदि वहां आई॥१०॥ आधाभाग हवि का कौशल्या को दिया फिर आधे के दो भाग कर॥११॥ एक कैकेयी को दिया शेष हवि के दो भाग किये॥१२॥ वह कौशल्या कैकेयी के हाथ पर धराय प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिवाये॥१३॥ इस प्रकार सब रानी गर्भवती हुईं। हृदय में प्रसन्नता और बड़ा सुख हुआ॥१४॥ सुखपूर्वक कुछ समय बीत गया और प्रभु के ? प्रगट होने का समय आया॥१५॥ दोहार्थ-योग, लग्न, यह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए, चराचरों को सुखदायक सुखमूल राम का जन्म हुआ॥१॥

नवमी तिथि मधुमास पुनीता । शुक्लपक्ष अभिजित हरिप्रीता ॥१॥
मध्यदिवस अति शीत न घामा । पावनकाल लोक विश्रामा ॥२॥

दोहा–सुरसमूह विनती करि, पहुँचे निज निज धाम ॥
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ॥

(शब्द के साथ परदा हटता है भगवान् चतुर्भुज रूप से प्रगट होते हैं)

छन्द–भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी ।
हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुतरूप निहारी ।
लोचन अभिरामा तनघनश्यामा निज आयुध भुजचारी ।
भूषण वनमाला नयनविशाला शोभासिंधु खरारी ॥१॥
कौ०–कह दुहुँ करजोरी अस्तुति तोरी केहिविधि करौं अनन्ता ।
मायागुणज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ॥
करुणा सुखसागर सबगुण आगर जेहि गावहिं श्रुतिसंता ।
सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता ॥२॥

उस समय नवमी तिथि पवित्र चैत्र का महीना शुक्लपक्ष अभिजित उप नक्षत्र हरिप्रीतियोग ।।१।। मध्यदिवस न शीत न घास लोक का विश्रामदायक पवित्र समय था।।२।। दोहार्थ–देवता विनय करके अपने अपने स्थान को गये। सब लोक के विश्राम देनेवाले जगन्निवास प्रभु प्रगट हुए।।२।। छन्दार्थ–जिस समय कृपासागर कौशल्या के हितकारी दीनदयालु प्रगट हुए उस समय मुनियों के मन को हरनेवाला अद्‌भुत रूप देखकर माता प्रसन्न हुई। मनोहर नेत्र घनश्याम शरीर चारों भुजाओंमें निजआयुध शंख चक्र गदा पद्‌म वा धनुष बाण धारण किये गहनों में वनमाला धारे विशाललोचन शोभा के सागर असुरों के शत्रु हैं।।१।। हाथ जोड़कर कौशल्या बोली–हे अनन्त! मैं तुम्हारी स्तुति किस प्रकार करूं तुम माया के गुण और ज्ञान से परे मन में नहीं आते ऐसा वेद पुराण कहते हैं। करुणा सुख के समुद्र सब गुणों में श्रेष्ठ जिनको श्रुति और सन्त गाते हैं सो मेरे निमित्त जनों पर अनुरागकर लक्ष्मीपति प्रगट हुए हैं।।२।।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोमरोम प्रतिवेद कहै ।
ममउर सोवासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरितविधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहैं ।।३।।
"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।।"
कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ।
सुनि वचन सुजाता रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ।
यह चरित जो गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा ।।४।।
दोहा–विप्रधेनु सुरसन्तहित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुणगोपार* ।।३।।

---

*राग आसावरी– आज सुदिन शुभघरी सुहाई । रूप शील गुणधाम राम नृपभवन प्रगट भये आई ।। अति पुनीत मधुमास लगन ग्रह वार योग समुदाई । हर्षवंत चरअचर भूमिसुर तनुरुह पुलक जनाई । वर्षहिं विबुध निकर कुसुमावलि नभ दुन्दुभी बजाई । कौशल्यादि मात सब हर्षित यह सुख वरणि न जाई । सुन दशरथसुत जन्म लिये सब गुरुजन विप्र बुलाई । वेद विहितकर क्रिया परमशुचि आनन्द उर न समाई । सदनवेद धुनि करत मधुर मुनि बहु विधि बाज बधाई । पुरवासिन प्रियनाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई । मणि तोरन बहु केतु पताकन पुरी रुचिरकर छाई । मागध सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ।। सहज श्रृङ्गार किये बनिता चलि मंगल विपुल बनाई । गावहिं देहि अशीष मुदित चिरजीयो तनय सुखदाई । वीथिन कुमकुम कीज अरगचा अगर अबीरउड़ाई । नाचहिं पुर नर नारि । प्रेमभरि देह दशा बिसराई । अमित धेनु गजतुरंग वसनमणि जातरूप अधिकाई । देत भूप अनुरूप जेहि होइ सकल सिद्धि गृह आई । सुखी भये सुर संतभूमिसुर खलगण मन मलिनाई । सबहिं सुमन विकसत रवि निकसत विपिन कुमुद

यह माया के निर्माण किये अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके रोमरोम में निवास करते हैं ऐसा वेद कहता है सो मेरे हृदय में बसे यह बड़े उपहास की बात है इसको सुनकर धीर पुरुषों की मति भी नहीं रह सकती, जब यह ज्ञान उपजा तब प्रभु मुसुकाये कारण कि महत् चरित करना चाहते हैं, अच्छी पूर्वजन्म की कथा कह माता को समझाया जिससे पुत्र का प्रेम प्राप्त हो।।३।। फिर माता की यह मति डोली तब कहने लगी हे तात! रूप त्यागन करो, अतिप्रिय बाललीला करो, यह सुख परम अनूप है यह वचन सुन चतुर पुरुष सुरपति बालक हो रोदन करने लगे, यह चरित्र जो गावेंगे वह हरि के पद को प्राप्त होंगे और संसार कूप में नहीं पड़ेंगे।।४।। दोहार्थ– ब्राह्मण धेनु देवता सन्तों के निमित्त मनुष्य अवतार लिया है अपनी इच्छा से शरीर निर्माण किया है, माया के गुण और इंद्रियों से परे हैं।।३।।

चौ०– हर्षित जहँ तहँ धाईदासी । आनँद मगन सकल पुरवासी ।।१।।
केकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुन्दर सुत जन्मत भइँ सोऊ ।।२।।
दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना । मानहु ब्रह्मानंदसमाना ।।३।।
दश०–जाकर नामसुनतशुभहोई । मोरे गृह आवा प्रभुसोई ।।४।।
"परमानन्द पूर मन राजा । कहा बुलाय बजावहु बाजा ।।५।।
गुरुवशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आये द्विजन सहित नृपद्वारा ।।६।।
अनुपम बालक देखि न जाई । रूपराशिगुण कहि न सिराई ।।७।।

दोहा–तब नान्दीमुख श्राद्धकरि, जातकर्म सब कीन्ह ।
हाटक धेनु वसन मणि, नृप विप्रन्हकहँ दीन्ह ।।४।।

चौ०–ध्वजपताक तोरणपुर छावा ।कहि न जाय जेहि भांति बनावा ।।
मागध सूत बंदि गुण गायक । पावन यश गावहिं रघुनायक ।।२।।

जहां तहां प्रसन्न हो दासी धायमान हुई सब पुरवासी आनन्द में मग्न हुए।।१।। कैकेयी और सुमित्रा के भी सुन्दर पुत्र हुए।।२।। दशरथ पुत्र का जन्म सुनकर मानो ब्रह्मानन्द में समागये और बोले।।३।। जिसका नाम सुनने से शुभ होता है वह प्रभु मेरे घर आये।।४।। राजा ने परमानन्द में पूर्ण होकर कहा बाजे बुलाकर बजवाओ।।५।। गुरुवसिष्ठ को बुलावा गया वह ब्राह्मणों सहित नृप के द्वारे आये।।६।। अनुपम बालक का दर्शन किया जो रूप की राशि और जिनके गुण नहीं कहे जाते।।७।। दोहार्थ–तब नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म किये। राजा ने सुवर्ण गौ वस्त्र मणि, ब्राह्मणों को दीं।।४।। चौ०–ध्वजा पताका तोरण से नगर छा गया जैसा बनाया सो कहा नहीं जाता।।१।। गुण गानेवाले मागध सूत बन्दीजन रघुनाथ के पवित्र गुण गाने लगे।।२।।

–विलखाई । जो सुख सिन्धु सुकृत सीकर ने शिव विरचि प्रभुताई । जो सुख उमंग अवध रह्यो दशदिशि कवन जतन कहों गाई । जे रघुवीर चरण चिन्तक तिनकी प्रगट दिखाई । अविरल अमल अनूपभक्ति दृढ़ तुलसिदास तव पाई ।।१।।

सर्वसदान दीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू ।।३।।
मृगमद कंकुम चन्दन कीचा । मची सकल वीथिन्ह बिचबीचा ।।४।।

दोहा-गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगट भये सुखकंद ।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द ।।५।।

चौ०-कछुक दिवस बीते इहि भांती । जात न जानहिं दिन अरुराती ।।१।।
नामकरण कर अवसर जानी । भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी ।।२।।
करि पूजा भूपति अस भाषा । धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ।।३।।
वशिष्ठ-इनके नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ।।४।।
जो आनन्दसिंधु सुखरासी । सीकर तैं त्रैलोक प्रकाशी ।।५।।
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिललोकदायक विश्रामा ।।६।।
विश्वभरन पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।७।।
जाके सुमिरण ते रिपुनाशा । नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ।।८।।

दोहा-लक्षणधाम रामप्रिय, सकलजगत आधार ।
गुरुवशिष्ठ तेहि राखा, लक्ष्मण नाम उदार ।।६।।

सब किसी ने सर्वस दान दिया जिसने पाया उसने भी नहीं रखा।।३।। कस्तूरी कुंकुम चन्दन की गली गली में कीच मच गई।।४।। दोहार्थ-घर घर सुन्दर बधाये बजे कि, सुखमूल प्रगट हुए जहां तहां नगर नारियों के वृन्द प्रसन्न हुए।।५।। चौ०-कुछ दिन इस प्रकार से बीत गये दिन रात जाते नहीं जाने जाते।।१।। नामकरण का अवसर जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि को बुला भेजा।।२।। पूजा करके राजा बोले हे मुनि! आपने जो विचार रखा है सो नाम कहिये।।३।। इनके अनेक सुन्दर नाम हैं हे नृप! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं।।४।। जो आनन्द के सागर सुख की राशि हैं जिनकी कृपा के कारण से तीन लोक को आनन्द होता है।।५।। उन सुखधाम का राम नाम है यह सब लोक को विश्राम देने वाले हैं।।६।। जो विश्व के भरण पोषण करनेवाले हैं उनका नाम भरत होगा।।७।। जिनके स्मरण करने से शत्रु का नाश होता है वह वेद प्रकाशित शत्रुघ्न नामवाले होंगे।।८।। दोहार्थ-जो लक्षण के धाम राम के प्यारे सब जगत् के आधार हैं गुरु वसिष्ठ ने उनका नाम लक्ष्मण धरा।।६।।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी । वेदतत्त्व नृप तव सुत चारी* ॥१॥

(गये)

इति द्वितीय दर्शन

इस प्रकार गुरु ने विचार कर नाम रखे हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व हैं॥१॥

(अच्छा अब हमारी दक्षिणा दो तो घर जांय)

(बिदा हो सब गये)

इति द्वितीय दर्शन

अथ तृतीय दर्शन

(राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न बालसखा संग लिये विचरते हैं)

चौ०-परममनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥१॥
चूड़ाकरन कान्ह गुरुआई । विप्रन बहुरि दक्षिणा पाई ॥२॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवैं तजि बाल समाजा ॥३॥
कौशल्या जब बोलन जाई । ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई ॥४॥
दोहा-भोजन करत चपलचित, इत उत अवसर पाय ।
भाजि चलैं किलकत वदन, दधि ओदन लिपटाय ॥७॥

टीका-चारों कुमार परम मनोहर उदार चरित्र करते फिरते हैं॥१॥ गुरु ने चूड़ाकरन किया और ब्राह्मणों ने फिर बहुत दक्षिणा पाई ॥२॥ राजा भोजन करने को बुलाते हैं परन्तु अपने बाल समाज को छोड़कर नहीं आते॥३॥ कौशल्या जब बुलाने जाती है तब ठुमक ठुमक भाग जाते हैं॥४॥ दोहार्थ-चपल चित्त से भोजन करते हैं इधर उधर अवसर पाकर किलकारी मारते भाग जाते हैं मुख में दही भात लिपट रहा है॥७॥

राग कान्हरा-ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियां । किलकत उठि चलत धाय परत भूमि लटपटाय, धाय मात गोद लेत दशरथ की रनियां । अंचर रज अंगझार विविध भांति सो दुलार, तन मन धनवार डारों कहत मृदु वचनियां । मोदक मेवा रसाल मन भावत लेउ लाल, और लेउ रुचिर पान कञ्चन रुनझुनियां । आनन्दसज कंबुकंठ ग्रीवा अति रुचिर रेख, कांच कुटिल कमलबदन मन्द सो हँसनियां । विद्रुम सो अधर ललित बोलत प्रिय मधुर वचन, नासाअतिसुभग बीच लटकत लट कनियां अद्‌भुत छबिअति अपार को कवि नहिं वरणपार, कह न सके शेष जिहिं सहस्र तो रसनियां । तुलसीदास रूपरङ्ग पटतरका दिये कहा, रघुबरकी छबि समान रघुवर छबि बनियां॥१॥

चौ०-भये कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितुमाता ।।१।।
गुरु गृह गये पढ़न रघुराई । अल्पकाल विद्या सब पाई ।।२।।
विद्या विनय निपुणगुणशीला । खेलहिं खेलसकल नृप लीला*।।३।।
करतल बाल धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ।।४।।
जिन वीथिन विहरैं सब भाई । थकित होहिं लखि लोग लुगाई ।।५।।
बंधु सखा सब लेहिं बुलाई । वन मृगया नित खेलहिं जाई ।।६।।
जे मृग राम बाण के मारे । ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ।।७।।
जेहिविधि सुखी होंहि पुरलोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा।।८।।
अनुज सखा सँग भोजन करहीं । मात पिता आज्ञा अनुसरहीं ।।९।।
प्रातकाल उठिके रघुनाथा । मात पिता गुरु नावहिं माथा ।।१०।।
आयसु मांगि करहिं पुरकाजा । देख चरित मन हर्षित राजा ।।११।।

जब सब भाई कुमार हुए तब माता पिता ने गुरुद्वारा यज्ञोपवीत दिवाया।।१।। रघुनाथजी गुरु के घर पढ़ने गये और अल्पकाल में सब विद्या पाई ।।२।। विद्या विनय में निपुण गुण शीलवान् बालकों के संग नृपलीला खेलते हैं।।३।। हाथ में धनुषबाण शोभित है रूप देखकर चराचर मोहित होता है।।४।। जिन गलियों में सब भाई विचरते हैं वहां के लोग-लुगाई रूप देखकर थकित हो जाते हैं।।५।। बंधु सखा सब बुलाकर वन में मृगया खेलने जाते हैं।।६।। जो मृग राम के बाण से मरे वे शरीर छोड़ वैकुण्ठ में गये।।७।। जिस प्रकार पुरवासी प्रसन्न हों प्रभु वही संयोग करते हैं।।८।। छोटे भाई और सखाओं के साथ भोजन करते माता पिता की आज्ञा मानते हैं।।९।। प्रभात ही उठके रघुनाथ माता पिता गुरु को माथा नवाते हैं।।१०।। आज्ञा मांगकर पुर का काज करते हैं चरित देखकर राजा मन में प्रसन्न होते हैं।।११।।

दोहा-व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप ।
भक्तहेतु नानाविधिहि, करत चरित्र अनूप ।।८।।

दोहार्थ—जो व्यापक कलारहित अज निर्गुण नामरूप रहित हैं वह भक्तों के निमित्त अनूप चरित्र करते हैं।।८।।

इति तृतीय दर्शन

---

*रागनट—खेलन चलिये आनन्दकन्द । सखाप्रिय नृपद्वार ठाढ़े विपुल बालक वृन्द । तृषित तुम्हरे दरश कारण चतुर चातक दास । वपुष वारिद वरषि छविजल हरहु लोचन प्यास । बन्धु वचन विनीत सुनि उठे मनहु केहरिवाल । ललित लघुशर चापकर उर नयन बाहु विशाल । चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा पुञ्ज। प्रेम वश प्रतिचरण महिमनो देति आसन कञ्ज। निरखि परम विचित्र शोभा चकित चितवहिं मात । हर्ष विवश न जात कहि निज भवन विहरहु तात । देख तुलसीदास प्रभु छबि गहे सब पल रोकि । थकित निकर चकोर मानहु शरदइन्दु विलोकि।।१।।

अथ चतुर्थ दर्शन

(विश्वामित्रगमन)

विश्वामित्र महामुनिज्ञानी । बसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी ।।१।।
तहँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं । अतिमारीच सुबाहुहि डरहीं ।।२।।
गाधितनय मनचिंता व्यापी । हरिबिन मरहिं न निशिचर पापी ।।३।।
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा । प्रभु अवतरेउ हरणमहिं भारा ।।४।।
वि०-इहि मिसदेखों प्रभुपद जाई । करि विनती आनों दोउ भाई ।।५।।
दोहा-बहुविधि करत मनोरथ, जात न लागी बार ।
करि मज्जन सरयूसलिल, गये भूप दरबार ।।९।।

टीका-महाज्ञानी विश्वामित्र अच्छे आश्रम किये वन में निवास करते हैं।।१।। वहां मुनि योग यज्ञ जप करते परन्तु मारीच सुबाहु से डरते कारण कि, वे विघ्न करते थे।।२।। तब विश्वामित्र के मन में चिन्ता हुई कि, यह पापी राक्षस बिना हरि के न मरेंगे।।३।। फिर मन में विचार कर जाना कि, प्रभु ने भूमि का महाभार दूर करने को अवतार लिया है।।४।। इसी बहाने प्रभु के पद जाकर देखूं और विनती कर दोनों भाइयों को बुला लाऊं।।५।। दोहार्थ-इस प्रकार बहुत मनोरथ करते चले जाते में देर न लगी सरयू के जल में स्नान कर राजा के दरबार में गये।।९।।

मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ ले विप्रसमाजा ।।१।।
चरनपखारि कीन्ह अति पूजा । मोसम धन्य आजु नहिं दूजा ।।२।।
विविध भांति भोजन करवावा । मुनिवर हृदय हर्ष अतिछावा ।।३।।
पुनि चरणन मेले सुतचारी । रामदेख मुनि विरति विसारी ।।४।।
तब मन हर्ष वचन कहराऊ । मुनि असकृपाकीन्ह नहिं काऊ ।।५।।
रा०-केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लाउब बारा ।।६।।
वि०-असुर समूह सतावहिं मोहीं । मैं याचन आयो नृप तोहीं ।।७।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निश्चर वध में होब सनाथा ।।८।।

---

*राग प्रभाती—प्रात समय रघुवीर जगावें कौशल्या महतारी । उठो लालजी भोर भयो है सुर नर मुनि हितकारी । ब्रह्मादिक इन्द्रादिक नारद सनकादिक ऋषि चारी । वाणी वेद विमल यश गावें रघुकुल यश विस्तारी । बन्दी जन गंधर्व गुण गावें नाचत देदे तारी । उमा सहित शिव द्वारे ठाढ़े होत कुलाहल भारी । कर स्नान दान प्रभु दीनों गो गज कञ्चन झारी । जय जयकार करत जन माधो तन मन धन बलिहारी १

दोहा-देहु भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुयस नृप तुमकहँ, इनकहँ अति कल्यान ।।१०।।
सुनि राजा अति अप्रियवानी । हृदय कंप मुखद्युति कुँभिलानी ।।१।।
द०-चौथेपन पायउँ सुतचारी । विप्रवचन नहिं कहेउ विचारी ।।२।।
मांगहु भूमि धेनु धन कोषा । सर्वस देहुँ आज सह रोषा ।।३।।
देह प्राणते प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देहुँ निमिष इकमाहीं ।।४।।

राजा मुनि का आगमन सुन ब्राह्मणों के संग लेने गये ।।१।। चरण धोय बड़ा सन्मान किया कि, मेरे समान कोई दूसरा भाग्यवान् नहीं है।।२।। फिर अनेक प्रकार से भोजन कराया तब मुनीश्वर के हृदय में अत्यन्त हर्ष हुआ।।३।। फिर चारों पुत्रों को चरणों में डाला राम को देख मुनिराज वैराग्य भूल गये।।४।। तब राजा प्रसन्न हो बोले-हे मुनिराज आपने तो ऐसी कृपा कभी नहीं की।।५।। आपके आने का क्या कारण है? कहो सो करने में वार न लगाऊं।।६।। विश्वामित्र बोले मुझे बन में निशाचर दुःख देते हैं मैं तुमसे याचना करने आया हूँ।।७।। लक्ष्मण सहित राम को दो राक्षसों के वध से मैं सनाथ हो जाऊंगा।।८।। दोहार्थ-हे राजन्! प्रसन्न होकर दीजिये मोह अज्ञान त्यागन कीजिये तुमको धर्म सुयश और इनका कल्याण होगा।।१०।। यह अप्रिय वाणी सुनते ही राजा का हृदय काँप गया मुख की कांति कुँभला गई और बोले।।१।। चौथेपन में चार पुत्र पाये हैं, हे मुनि! आपने विचार कर वचन नहीं कहे।।२।। भूमि धेनु धन कोष मांगो मैं आज सब रोष सहकर दे दूंगा।।३।। हे मुनि! देह प्राण से तो कुछ प्यारा नहीं वह भी एक पल में दे सकता हूं।।४।।

सब सुतप्रियमोहिं प्राणकि नाईं । रामदेत नहिं बनहिं गुसांई ।।५।।
कहँ निशिचर अतिघोर कठोरा । कहँ सुन्दरसुत परम किशोरा ।।६।।
तब वशिष्ठ बहुविधि समुझावा । नृपसंदेहनाश कहँ पावा* ।।७।।

(वार्ता)

वसिष्ठ०—हे राजन्! आप विषाद न कीजिये राम लक्ष्मण विश्वामित्र को दीजिये इनकी अशीश लीजिये यह कुमारों की रक्षा कर लेंगे।

अति आदर दोउ तनय बुलाये । हृदय लाय बहुभाँति सिखाये ।।८।।
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ । तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ।।९।।

---

*राजन्! राम लषण जो दीजै । यश रावरो लाभ ढोटनहू मुनि सनाथ सब कीजै। डरपत हो सांचेहु सनेह वश सुत प्रभाव बिनु जाने । बूझिय वामदेव अरुकुलगुरु तुम पुनि परम सयाने रिपुरण दलि मखराखि कुशल अतिअल्पदिननि घर ऐहैं । तुलसिदास रघुवंश तिलककी कविकुल कीरति गैहैं।।१।।

दोहा-सौंपे भूपति ऋषिहि सुत, बहुविधि देइ अशीश ।।१०।।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीश ।।११।।

मुझे सब पुत्र प्राणों के समान प्यारे हैं परन्तु हे मुनिराज! राम को तो नहीं दिया जाता।।५।। कहां तो वह घोर कठोर राक्षस कहां परम किशोर मेरे बालक।।६।। तब वसिष्ठ ने बहुत भाँति से समझाया और राजा का सन्देह मिट गया।।७।। अति आदर से दोनों बालक बुलाये और हृदय लगाकर बहुत भाँति से समझाये हे पुत्रो! मुनिराज की आज्ञा मानियो जो कहैं सो करियो।।८।। हे मुनिराज! यह दोनों बालक मेरे प्राणनाथ हैं तुमही इनके पिता हो अन्य कोई नहीं।।९।। दोहार्थ—ऐसे अनेक अशीश देकर बालक मुनिराज को सौंप दिये और राम लक्ष्मण माता के घर जाय चरणों में शिर नवाय चले।।११।।

स्थानवन (वार्त्ता)

विश्वा०-हे कुमारो! हमारे आगे आगे हो जाओ इस बन में दुष्ट ताडका आदि निवास करते हैं और सिंहादि भी विचरते हैं।

राम-आपकी कृपा से एक क्षण में सबको जय कर सकते हैं।

विश्वा०-वह देखो वह चाण्डालिनी ताड़का कालमुखी कैसी इधरही को आती है।

ताड़का०-अरे बुड्ढे आज तू फिर इधर उधर होकर आया अच्छा रह आज? तुझे संहार करती हूं, और इन तेरे साथियों को गटकती हूं

विश्वा०-हे राम! सावधान हो पहला विघ्न यही है

राम०-जो आज्ञा हम इसे यमसदन का अतिथि करते हैं (बाण चढ़ाय)

चले जात मुनि दीन दिखाई । सुन ताडका क्रोधकर धाई ।।१।।
एकहि बाण प्राण हरलीन्हा । दीनजानि तेहि निजपद दीन्हा ।।२।।
तबऋषि निजनाथहि जियचीन्हा । विद्यानिधिकहँ विद्या दीन्हा ।।३।।
जाते लागि न क्षुधा पियासा । अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा ।।४।।

दोहा-आयुध सकल समर्पिकै, प्रभु निज आश्रम आनि ।।
कन्द मूल फल भोजन, दिये भक्तहित जानि ।।१२।।

इति चतुर्थ दर्शन

———

चौ०-मार्ग में जाते हुए मुनिराज ने दिखाया मुनते ही ताड़का क्रोध से आई।।१।। राम ने एक ही बाण से उसका प्रशण हर लिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।।२।। तब ऋषिने अपने नाथ को पहचाना और उन विद्यानिधि को विद्या दी।।३।। जिससे भूख प्यास न लगे और शरीर में बड़ा बल तथा तेज का प्रकाश हो जाय।।४।। दोहार्थ-सब आयुध सौंपकर प्रभु को आश्रम में लाये और भक्तहितकारी जान कन्दमूल के भोजन दिये।।१२।।

इति चतुर्थ दर्शन

———

अथ पञ्चम दर्शन

(विश्वामित्र का यज्ञ)

प्रात कहा मुनिसन रघुराई । निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ।।१।।
होम करन लागे मुनि झारी । आप रहे मखकी रखवारी ।।२।।

स्वस्तिवाचन–

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः।स्वस्तिन-स्ताक्ष्योँ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।। शान्तिः ।।३।।

टीका-प्रभातसमय रघुनाथजी ने मुनिराजसे कहा तुम निर्भय यज्ञ करो ।।१।। मुनिगण होम करने लगे आप यज्ञ की रखवारी में रहे ।।२।।

आदित्याय नमः। सोमाय नमः । भौमाय नमः । बुधाय नमः । बृहस्पतये नमः । राहवे नमः । केतवे नमः । ईश्वराय नमः । विष्णवे नमः । ब्रह्मणे नमः । इन्द्रायः नमः । अग्नये नमः । यमाय नमः । वरुणाय नमः । अनन्ताय नमः । होममन्त्राः- ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्मयेन सवितारथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् स्वाहा । इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्यपाँ सुरे स्वाहा । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् स्वाहा ।।

चौपाई—

"सुनि मारीच निशाचर कोही । ले सहाय धावा मुनि द्रोही ।।३।।

(वार्ता)

सुबाहु-देखो इस बुड्ढे ने फिर खटराग लगाया आजही इसे चट करते हैं
मारीच-चलो अब देर क्यों करते हो नरमांस का आनंद उड़ावै

विनु फर राम बाण तेहि मारा । शतयोजन गा सागर पारा ।।४।।
पावक शर सुबाहु पुनि मारा । अनुजनिशाचर कटक सँहारा ।।५।।
मारि असुर द्विज निर्भयकारी । अस्तुति करहिं देवमुनिझारी ।।६।।

(वार्ता)

राम०-मुनिराज! अब दैत्य नष्ट हुए पूर्णाहुति कीजिये

विश्वा०-यही करते हैं,

ॐ मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निं कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्तः देवाः स्वाहा । पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेवविक्रीणावहा ईषमूर्जठं शतक्रतो स्वाहा ।।

यह बात सुन मुनिद्रोही मारीच सहायता लेकर यज्ञ बिगाड़ने को दौड़ा।।३।। विना फरके रामने मारीच के बाण मारा वह समुद्र के पार सौ योजन जा पड़ा।।४।। सुबाहु के अग्निबाण मारा लक्ष्मण ने दैत्यों का कटक संहार किया।।५।। जब असुरों को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय किया तब देवता मुनि स्तुति करने लगे।।

(एक दूत का प्रवेश)

दूत-मुनिराज प्रणाम करता हूं महाराज जनक ने आपको यज्ञ में निमंत्रण दिया है और सीता का विवाह भी धनुष प्रण पर होगा सो आप चलैं

विश्वा०-अच्छा तुम जाओ हम भी आते हैं

दूत०-जो आज्ञा (गया)

चौ०-तब मुनि सादर कहा बुझाई । चरित एक देखिय प्रभु जाई ।।७।।
धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा । हरषि चले मुनिवर के साथा ।।८।।

(सब गये)

(स्थान वन)

आश्रम एक दीख मगमाहीं । खगमृग जीव जन्तु तहँ नाहीं।।९।।
पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी । सकलकथा ऋषि कही विशेखी ।।१०।।

विश्वा०-दो०-गौतमनारी शापवश, उपल देह धरि धीर ।
चरण कमल रज चाहती, कृपाकरहु रघुवीर ।।१३।।

(रामचन्द्र चरण से छूते हैं)

छन्द-परसत पदपावन शोक नसावन प्रगट भई तपपुञ्ज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सन्मुख होइ कर जोर रही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवै वचन कही ।
अतिशय बड़ भागी चरणन लागी युगल नैन जलधार बही ।।१।।

तब मुनि ने आदर से समझाय कहा प्रभु एक चरित्र चलकर मिथिलापुर में देखिये वहां धनुष यज्ञ है।।७।। यह सुनकर रघुनाथजी-'जो आज्ञा' ऐसा कह मुनिवर के साथ चले।।८।। मार्ग में जाते एक आश्रम देखा वहाँ खग मृग जीव जन्तु कोई नहीं थे।।९।। एक शिला देखकर प्रभु ने पूछा मुनिराज यह क्या है? ऋषि ने विशेष रूप से सब कथा कही।।१०।। दोहार्थ–गौतम की स्त्री पति के शाप के कारण पाषाण देह धारे धीरता से स्थिर है यह आपके चरणकमलों की रज की इच्छा करती है इस पर कृपा करो।।१३।। छन्दार्थ–पवित्र चरण स्पर्श करते ही वह तप की पुञ्ज प्रगट हुई जनसुखदायक रघुनायक को देखकर हाथ जोड़ स्थिर रही, अतिप्रेम से अधीर हो गई, शरीर पुलकायमान हो गया, मुख से वचन नहीं कहा जाता अति बड़भागी चरणों में पड़ी दोनों नेत्रों से जल की धार बही।।१।।

धीरज मन कीन्हा प्रभुकहँ चीन्हा रघुपति कृपा भक्ति पाई ।।
अति निर्मल वानी अस्तुति ठानी ज्ञान गम्य जय रघुराई" ।।
अह०–मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावणरिपु जनसुखदाई ।
राजीवविलोचन भवभयमोचन पाहि पाहि शरणहि आई ।।२।।
मुनि शाप जो दीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन भवभयमोचन यहै लाभ शंकर जाना ।।
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न वर मांगौं आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।३।।
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी ।
सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरि ।।
इहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरण परी ।
जो अतिमन भावा सो बर पावा गइ पतिलोक अनन्दभरी ।।४।।

चौ०–चले रामलक्ष्मण मुनि संगा । गये जहां जगपावनिगंगा ।।१।।
पुनि सुरसरि उत्पति रघुराई । कौशिक सन पूछा शिरनाई ।।२।।

फिर मन में धीरजकर प्रभु को पहँचाना रघुपति की कृपा से भक्ति पाई।। अति निर्मलवाणी से स्तुति ठानी ज्ञान से जानने योग्य हे राम! आपकी जय हो।।१।। मैं स्त्री अपवित्र हूं आप जगत् के पवित्र करनेवाले हैं। रावण के शत्रु जनों के सुखदाई हो कमलोचन संसार के भय दूर करनेवाले मेरी रक्षा करो २ मैं शरण में आई हूं।।२।। मुनि ने शाप दिया यह बहुत अच्छा किया, मैंने परम अनुग्रह माना। भय दूर करनेवाले प्रभु को मैंने नेत्र भरकर देखा यही लाभ शंकर ने माना है, हे प्रभु! मैं भोरी मति की क्या विनती करूं? हे नाथ! मैं और वर नहीं माँगती, तुम्हारे चरणकमल

के पराग को अनुराग से भ्रमररूप मेरा मन पान करे।।३।। जिन चरणों से परम पवित्र गंगाजी प्रगट हुई शिवजी ने शिर पर धरी वह ब्रह्माजी से पूजित चरणकमल कृपालु हरि ने मेरे शिर पर धरे। इस प्रकार बार बार हरि के चरणों में प्रणाम कर गौतम नारी मन भाये। वर को पाय आनन्द में मग्न हो पतिलोक को गई।।४।। चौ०–राम लक्ष्मण मुनि के संग चले और जगत् की पवित्र करनेवाली गंगा के समीप गये।।१।। रामचन्द्र ने शिर नवाय गंगाजी की उत्पत्ति मुनिराज से पूछी।।२।।

गाधितनय सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ।।३।।
पुनि प्रभु ऋषिन समेत नहाये । विविध दान महिदेवन पाये ।।४।।
हरषि चले मुनिवृन्द सहाया । वेगि विदेह नगर नियराया ।।५।।
कौशिक कहेउ मोर मन माना । यहाँ रहिय रघुवीर सुजाना ।।६।।
भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तहँ मुनिवृन्द समेता ।।७।।
विश्वामित्र महामुनि आये । समाचार मिथिलापति पाये ।।८।।

दोहा–संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ज्ञाति ।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदितराउ इहि भाँति ।।१४।।

कीन्ह प्रणाम धरणि धरमाथा । दीन्ह अशीश मुदित मुनिनाथा ।।१।।
विप्रवृन्द सब सादर वन्दे । जानि भाग्य बड़ राउ अनन्दे ।।२।।
कुशल प्रश्न कहि बारहि बारा । विश्वामित्र नृपहि बैठारा ।।३।।
रा०–कहहुनाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलककि* नृपकुल पालक ।।४।।

मुनिराज ने जैसे भगीरथ गंगा को लाये वह सब कथा कही।।३।। फिर प्रभु ऋषियों के सहित नहाये, ब्राह्मणों ने अनेक दान पाये।।४।। फिर मुनियों के सहित चले और शीघ्र विदेह नगर आया।।५।। विश्वामित्र बोले–यहां हमारा मन रमता है हे रघुवीर! सुजान यहां उतरिये।।६।। बहुत अच्छा कृपासागर! यह कह मुनियों सहित वहां उतरे।।७।। महामुनि–विश्वामित्र आये यह समाचार मिथिलापति ने पाये।।८।। दोहार्थ–साथ में मंत्री योद्धा ब्राह्मण गुरु जाति के जनों को ले इस प्रकार प्रसन्न हो राजा चले।।१४।। चौ०–पृथ्वी में शिर धर प्रणाम किया मुनिराज ने प्रसन्न

---

*ए दोउ कौन कहांते आये। नील पीत पाथोज वरण मनहरण सुभाय सुभाये। मुनि सुत किधौं भूप बालक किधौं, ब्रह्म जीव जग जाये। रूप जलधिके रतन सुछबि तिय लोचन ललित ललाये। किधौं रविसुवन मदन ऋतुपति किधौं हरिहर वेष बनाये किधौं आपने सुकृत कल्पतरु सुफल रावरेही पाये ।। भये विदेह नेह वश देह दशा विसराये। पुलक गात न समात हर्ष हिय सलिल सुलोचन छाये ।। जनक वचन मृदु मंजु मधुभरे भगति कौशिकहि भाये। तुलसी अति आनन्द उमंगि उर राम लषण गुण गाये ।।

हो अशीश दी।।१।। सब ब्राह्मणों को आदर से प्रणाम किया अपना बड़ा भाग्य जान राजा प्रसन्न हुए।२।। बारबार कुशल प्रश्नकर विश्वामित्र ने राजा को बैठाया।।३।। चौ०–राजा बोले–हे नाथ! यह सुन्दर दोनों बालक मुनिकुल के तिलक हैं वा क्षत्रियकुलपालक हैं।।४।।

ब्रह्म जो निगम नेति कह गावा । उभय बेषधर सोइ कि आवा ।।५।।
सहज विराग रूप मन मोरा । थकित होत जिमि चंद्र चकोरा ।।६।।
ताते प्रभु पूँछौं सत भाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ।।७।।
इनहि विलोकत अति अनुरागा । बरबसब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ।।८।।
वि०–ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्रानी । मन मुसुकाहिं राम सुनि वानी ।।९।।
रघुकुलमणि दशरथ के जाये । मम हित लागि नरेश पठाये ।।१०।।

दोहा–राम लषण दोउ बंधु वर, रूप शील गुण धाम ।
मखराखेउ सबसाखि जग, जीति असुर संग्राम ।।१५।।

रा०–श्यामगौर सुन्दर दोउ भ्राता । आनँदहू के आनँददाता ।।१।।
इनकी प्रीति परस्पर पावनि । कहि न जाय मन भाव सुहावनि ।।२।।
मुनिहि प्रशंशि नाय पद शीशा । चले लिवाय नगर अवनीशा ।।३।।
सुन्दर सदन सुखद सबकाला । तहां वास ले दीन्ह भुआला ।।४।।
करि पूजा सब विधि सेवकाई । गये राउ गृह बिदा कराई ।।५।।

वेद ने जिस ब्रह्म को नेति नेति कहकर गाया है क्या वह यही दो रूप धारण कर आया है।।५।। जैसे चन्द्रमा को देख चकोर थकित हो जाती है इसी प्रकार इनको देख स्वाभाविक वैराग्यरूप मेरा मन थकित होता है।।६।। इससे सतभाव से पूछता हूं–हे नाथ! कहो दुराव मत करो।।७।। इनको देखकर अनुराग से मन ने बरबस ब्रह्मसुख को त्याग दिया है।।८।। विश्वामित्र बोले–जहांलो प्राणी हैं यह सबके प्रिय हैं। यह वाणी सुन राम मन में मुसकाये ।।९।। यह रघुकुलमणि दशरथ के पुत्र हैं मेरे हित के निमित्त राजा ने भेज दिये हैं।।१०।। दोहार्थ–यह राम लक्ष्मण दोनों भले भैया रूप शील गुणों के धाम हैं, मेरे यज्ञ की इन्होंने युद्ध में शत्रुओं को मारकर रक्षा की इसकी सब जगत् साक्षी हैं।।१५।। चौ०–राज बोले–यह श्यामल गौर सुन्दर दोनों भाई आनन्द के भी आनन्द देनेवाले हैं।।१।। परस्पर इनकी प्रीति पवित्र है, कहीं नहीं जाती मनभावनी सुहावनी है।।२।। मुनि की प्रशंसाकर चरणों में शिर नवाय राजा नगर को लिवा ले चले।।३।। एक सुन्दर सुख देनेवाले घर में राजा ने इनका निवास किया।।४।। पूजा और सेवा सब प्रकार से कर बिदा कराय राजा घर गये।।५।।

दोहा–ऋषय संग रघुवंशमणि, करि भोजन विश्राम ।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरियाम ।।१६।।

राम–नाथ लषण पुर देखन चहहीं । प्रभु संकोच डर प्रगट न कहहीं ।।१।।
जो राउर अनुशासन पाऊं । नगर दिखाय तुरत ले आऊं ।।२।।
वि०–दो०–जाय देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाय ।।
करहु सफल सबके नयन, सुंदर वदन दिखाय ।।१७।।

इति पंचम दर्शन

दोहार्थ-रघुवंशमणि ऋषि के संग भोजन के पीछे विश्राम करके बैठे उस समय एक प्रहर दिन था।।१६।। रघुनाथजी बोले हे नाथ! लक्ष्मण पुर देखना चाहते हैं परन्तु प्रभु के संकोच और डर से प्रकट नहीं कहते।।१।। जो आपकी आज्ञा हो तो नगर दिखाकर मैं तुरंत ले आऊं।।२।। विश्वा०–दोहार्थ-हे सुखनिधान! दोनों भाई जाकर नगर देखो और मुख दिखाकर सबके नेत्र सफल करो।।१७।।

इति पंचम दर्शन

अथ षष्ठ दर्शन

(स्थान जनकपुर में राम लक्ष्मण विचरते हैं।)

"युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं रामरूप अनुरागीं।।१।।
कहहिं परस्पर वचन सप्रीती । सखि इन कोटि काम छबि जीती"*।।२।।
सुरनर असुर नाग मुनिमाहीं । शोभा असि कहुँ सुनियत नाहीं ।।३।।

टीका–स्त्री घरों के झरोखों में लगकर प्रेम से राम का रूप देखने लगीं।।१।। प्रेम से वचन कहने लगीं–हे सखि! इन्होंने कोटिकाम की छबि जीत ली है।।२।। सुर नर असुर नाग मुनिजन में ऐसी शोभा कहीं सुनाई नहीं आती।।३।।

---

*राग आसावरी–सखीरी मुनिसंग बालक रतनारे नयना जाके । रवि शशि कोटि बदन की शोभा श्याम गौर तनु जाके । राम लषण कौशल्या के जाये दशरथ नाम पिताके । ऋषि का यज्ञसपूर्ण करके अब आये राजा के।। आपद सबकी हरी रामने कारज करन सियाके। क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल धनुषबाण कर जाके ।। गौतम ऋषि की नारि अहल्या तारी चरणछुआके। सब सखियां मिल सियाके स्वयंवर पूजा करते उमाके।। तुलसी सेवक रघुनन्दनजू लेख लिखे विधनाके।।१।।

कहहु सखी असको तनुधारी । जो न मोह यह रूप निहारी ।।४।।
कोउ सप्रेम बोली मृदुबानी । जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ।।५।।
ये दोउ नृप दशरथ के ढोटा । बाल मरालनिके कल जोटा ।।६।।
मुनि कौशिक मखके रखवारे । जिनरण अजिरनिशाचर मारे ।।७।।
कौशल्या सुत सो सुख वानी । नाम राम धनु शायक पानी ।।८।।
गौर किशोर बेश वर काछे । कर शर चाप रामके पाछे ।।९।।
लक्ष्मण नाम राम लघुभ्राता । सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।।१०।।

दोहा–विप्रकाज करि बंधुदोउ, मग मुनि वधू उधारि ।
आये देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि ।।१८।।

देख रामछबि कोउ असकहई । योग्य जानकी यह बर अहई*।।१।।
जौ विधिवश अस बनै संयोगू । तौ कृतकृत्य होहिं सबलोगू ।।२।।
सखि हमरे अति आरति ताते । कबहुँक ये आवहिं यहि नाते ।।३।।

कहो सखी ऐसा कौन शरीरधारी है जो इस रूप को देखकर मोहित न हो जाय?।।४।। कोई प्रेम से बोली–हे सयानी! जो मैंने सुना है सो सुनो।।५।। यह दोनों राजा दशरथ के कुमार बालहंसों की सुन्दर जोट हैं।।६।। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ के रखवारे हैं इन्होंने युद्ध में निशाचरों को मारा है।।७।। सो सुख के खान कौशल्याकुमार हैं, इनका नाम राम है, हाथ में धनुषबाण लिये हैं।।८।। और जो गोरे वर्ण किशोर अवस्था सुन्दर वेश किये हैं हाथ में धनुष लिये राम के पीछे हैं।।९।। यह राम के लघु भ्राता लक्ष्मण हैं सुनो सखि इनकी सुमित्रा माता है।।१०।। दोहार्थ– दोनों भ्राता मुनि का कार्य कर मार्ग में गौतम नारी का उद्धार कर धनुषयज्ञ देखने आये हैं। यह सुनकर सब स्त्री प्रसन्न हुई।।१८।। चौ०–राम की छबि को देखकर कोई कहती है जानकी के योग्य यह वर है।।१।। जो प्रारब्धवश ऐसा संयोग बने तो सब लोग कृतकृत्य हो जायँ।।२।। हे सखी! हमको इस कारण व्याकुलता है कि, यह कभी इस नाते से आवेंगे।।३।।

दोहा–नाहित हमकहँ सुनहु सखि, इनकर दर्शन हरि ।
यह संघट तब होय जब, पुण्य पुराकृत भूरि ।।१९।।

---

*राग कान्हारा–ठुमक २ चलत चाल जनकनन्दनी । मधुर वचन तोतरे त्रय ताप मोचनी ।। सोहत नव नील वसन मन्दहास रुचिर दशन, झलकत उरमाल सकलदेववदनी ।। नूपुर पग बजत मानो सामवेद करत गान, क्षुद्र घंट रुचिर नाद उर आनंदनी ।। जगतमात सखिन संग विहरत बहु करत रग, अग्रदास निरखत छबि भवनिकन्दनी ।।

कोउ कह शंकर चाप कठोरा । यह श्यामल मृदुगात किशोरा ।।१।।
सब असमंजस अहै सयानी । यह सुनि अपर कहै मृदुबानी ।।२।।
सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहई । बड़प्रभाव देखत लघु अहई ।।३।।
परसि जासु पदपंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अग भूरी ।।४।।
सो कि रहैं विनु शिवधनुतोरे । अस प्रतीत परिहरिय न भोरे ।।५।।
जेहि विरंचिरचि सीय सँवारी । तेहि श्यामलवर रचा विचारी ।।६।।
तासु वचन सुनि सब हरषानी । ऐसिय होउ कहहिं मृदुबानी ।।७।।

दोहा–हिय हरषहिं वरषहिं सुमन, सुमुखिसुलोचनिबृन्द ।
जाहिं जहां जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द ।।२०।।

पुरबालक कहि कहि मृदु वचना । सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना ।।१।।
शिशु सब राम प्रेम वश जाने । प्रेम समेत निकेत बखाने ।।२।।

दोहार्थ–नहीं तो हे सखि! हमको दर्शन दुर्लभ है यह संघट्ट तो सभी होगा पूर्वकाल का पुण्य अधिक होगा।।१९।। चौ०– कोई बोली शिवजी का धनुष बड़ा कठोर है यह श्यामलमृदुगात किशोर हैं।।१।। हे सयानी! सभी असमंजस (दुविधा) की बात है यह सुनकर और स्त्री बोली।।२।। सखि इनको कोई २ ऐसा कहते हैं कि, यह देखने में छोटे हैं इनका प्रभाव बड़ा है।।३।। जिनके चरणों की रज स्पर्शकर महापापिनी स्त्री अहल्या भी तर गई।।४।। वह शिव का धनुष तोड़े बिना कैसे रह सकते हैं ऐसी प्रतीत भूलकर भी न त्यागिये।।५।। जिस विधाता ने जानकी को रचकर सँवारा है उसी ने विचार कर यह सावरा वर विधान किया है।।६।। उसके वचन सुन सब प्रसन्न हुईं और ऐसा ही हो यह मृदुबाणी से कहने लगीं।।७।। दोहार्थ–हृदय में प्रसन्न हो वे फूल बरसाती हैं जहां जहां दोनों भाई जाते हैं वहां वहां परमान्द होता है।।२०।। चौ०–पुरके बालक भी कोमल वचन कह प्रभु को रचना दिखाते हैं।।१।। जब राम ने सब बालकों को प्रेमवश देखा तो प्रीति से उनके स्थान पूछे कि, तुम्हारा घर कहाँ है?।।२।।

निज २ रुचि सब लेहिं बुलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ।।३।।
राम दिखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर वचना ।।४।।
कहिं बातै मृदु मधुर सुहाई । बिदा किये बालक बरिआई ।।५।।

दोहा–सभय सप्रेम विनीत अति, सकुचसहित दोउ भाइ ।
गुरु पदपंकज नाइ शिर, बैठै आयसु पाइ ।।२१।।

इति षष्ठ दर्शन

अपनी २ रुचि से सब बुलाते हैं स्नेह सहित दोनों भाई जाते हैं।।३।। रामचन्द्र मृदुमनोहर वचन कहकर भाई को रचना दिखाते हैं।।४।। फिर मृदुमधुर बातें कहकर जबरदस्ती बालकों को बिदा किया।।५।। दोहार्थ–कुछ भय से नम्रता से सकुच के सहित दोनों भाई चले और गुरु के चरणकमलों में शिर नवाय आज्ञा पाय बैठे और विश्राम किया गुरु के चरणों की सेवा की।।२१।।

इति षष्ठ दर्शन

अथ सप्तम दर्शन

(जानकीजी की फूलवाटिका)

विश्वा०-हे राम! पूजा का समय है बाग से फल ले आओ।

राम–जो आज्ञा (जाते हैं)

समय जान गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।१।।
चहुँ दिशि चितै पूछ मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदितमन ।।२।।

टीका–समय जान गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले।।१।। सब ओर देख और मालियों से पूछ फूल लेने लगे।।२।।

तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजापूजन जननि पठाई ।।३।।
संग सखी सब सुभग सयानी । गावहिं गीत मनोहर वानी ।।४।।
एक सखी सिय संग विहाई । गई रही देखन फुल-वाई ।।५।।
तेहि दोउ बंधु विलोकेउ जाई । प्रेम विवश सीता पहँ आई ।।६।।

दोहा–तासु दशा देखी सखिन, पुलकगात जल नैन ।
कहु कारण निज हर्षकर, पूछहिं सब मृदुवैन ।।२२।।

---

१ राम सवैया– एहो महीपति माली सुनो गुरु पूजनके हित फूल उतारन ।
आये इत हम बन्धु समेत उतारैं प्रसून जो होई न वारन ।।
कैसे कहे बिन फूल चुनैं मिथिलेशकि वाटिका के मनहारन ।
वस्तु विरानीको पूछे विना रघुराजजू लेत न वेद उचारन ।।

माली–दोहा–लेहु फूल फल दल विमल, सुन्दर राजकिशोर ।
जो बरजै सी बावरो, विश्व विलोचन चोर ।।

पुष्प लेते समय एक मालिन बोली–

सवैया–तुम श्यामल गौर सुनो दोउ लालन आये कहांसे उरायनमें ।
मिथिलेशकि वाटिकामें बिहरौ हियरौ हरो हेरि सुंभायनमें ।।

सखी-देखन बाग कुँवर दोउ आये । वय किशोर सब भांति सुहाये*।।१।।
श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनैन नैन विनु वानी ।।२।।
"सुनि हरषीं सब सखी सयानी । सिय हिय अति उत्कंठा जानी"।।३।।

उसी समय वहां जानकी आई माता ने पार्वती पूजने के निमित्त भेजा था।।३।। संग की सब सखी सुन्दर सयानी थीं मनोहर वाणी से गीत गाने लगीं।।४।। एक सखी जानकी का संग छोड़कर फुलवारी देखने गई।।५।। उसने दोनों भाइयों को देखा वह प्रेम में मग्न हो सीता के पास आई।।६।। दोहार्थ–उसकी दशा सखियों ने देखी शरीर पुलकायमान नेत्रों में जल भर आया है सब कोमल वाणी से कहने लगीं तुम अपने हर्ष का कारण कहो।।२२।। चौ०–सखी बोली–दो बालक बाग देखने आये हैं किशोरी अवस्था सब भांति से शोभायमान है।।१।। श्याम और गौर शरीर किस प्रकार से कहूं यदि वाणी से कहूं तो वह अनयन है और नेत्रों से देखा है तो वे बोल नहीं सकते।।२।। सब सयानी सखी यह वचन सुन प्रसन्न हुईं और सीता के मन में भी बड़ी उत्कंठा हुई।।३।।

एक कहहिं नृप सुत ते आली । सुने जे मुनिसँग आये काली ।।४।।
जिन निज रूप मोहिनी डारी । कीन्हें स्ववश नगर नरनारी ।।५।।
वर्णत छबि जहँ तहँ सब लोगू । अवशि देखिये देखन योगू ।।६।।
तासु वचन अति सियहिं सुहाने । दरशलागि लोचन अकुलाने ।।७।।
चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ।।८।।

दोहा–सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकलदिशि,जनु शिशुमृगी सभीत ।।२३।।

कंकणकिंकिणी नूपुरधुनिसुनि । कहत लषण मन राम हृदयगुनि।।१।।

–इत कौन पठायो दया नाहिं आयो सुफूलन तोरो उपायनमें ।
रघुराज कहूँ गड़ि जैहैं लला पुहुपानिकी पांखुरी पायनमें ।।१।।

*राग मल्हार–विहरत बागमें देखे कुल भानवा। क्रीट मुकुट कञ्चनको झलकै, मकर मनोहर कुंडल अलकैं, भाल तिलक केशर को राजै, उर वैजन्तीमाल विराजै, मधुर वचन कर लीने धनु बानवा।।१।। पीताम्बर कटिपर कस काछे, मन मुसकात फिरत वन आछे, काकपक्ष शिर सुन्दर सोहै, देखतराम लषण मन मोहै, विधि शंकर इनहिको धरै ध्यानवा।।२।। कही सखी जब ऐसी बानी, अखिल लोकपति जीवत जानी, शोभा सकल लोककी जगमें, तारी शिला चरण की रजमें, दरशन लीजो तजो गृह मानवा।।३।। कुसुमसमेत वामकर दोना, छोटो कुँवर सखी अतिलोना। याहि देखु सब भईं सुखारी, तुलसी मुदित विदेहकुमारी, बहुरि चली गिरिजाके भवनवा।।४।।

राम-मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं । मनसा विश्वविजय कह कीन्हीं।।२।।
असकहि फिरि चितये तेहिओरा । सिय मुख शशिभये नैन चकोरा ।।३।।
दोहा–सिय शोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि ।
बोले शुचिमन अनुज सन, वचन समय अनुहारि ।।२४।।
राम-तात[१] जनकतनया यह सोई । धनुषयज्ञ जेहि कारण होई।।१।।

कोई बोली आली! वे राजकुमार हैं जिनको सुना है कि, वे कल मुनि के साथ आये हैं।।४।। अपने रूप से जिन्होंने मोहिनी डालकर नगर के नरनारियों को अपने वश कर लिया है।।५।। जहां तहां सब लोग छबि वर्णन करते हैं अवश्य देखिये देखने के योग्य हैं।।६।। उसके वचन जानकी को बहुत अच्छे लगे दरशन के लिये नेत्र व्याकुल होने लगे।।७।। उस प्रिय सखी को आगे करके चली। पुरातन प्रीति को किसी ने नहीं जाना।।८।। दोहार्थ- नारद के वचन स्मरण कर बड़ी पवित्र प्रीति प्रगट होने लगी सब और चकित होकर डरी हुई छोटी मृगी के समान देखने लगी।।२३।। चौ०–कंकण किंकिणी और नूरपुरकी धुनि सुनकर मन में विचारकर रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले।।१।। मानो कामदेव ने दुन्दुभी दी और विश्व को विजय करने की इच्छा की।।२।। ऐसा कहकर उस ओर देखा और सीता के मुखरूप चंद्र की ओर रामचन्द्र के नयन चकोर हो गये।।३।। दोहार्थ–प्रभु सीता की शोभा मन में वर्णन कर और अपनी दशा विचारकर पवित्र मन से समय अनुसार लक्ष्मण से बोले।।२४।। चौ०–राम-हे तात! यह जानकी वही है जिसके निमित्त धनुषयज्ञ होता है।।१।।

पूजन गौरि सखी ले आई । करत प्रकाश फिरति फुलवाई ।।२।।
जासु विलोकि अलौकिक शोभा । सहज पुनीत मोर मन क्षोभा ।।३।।
सो सब कारण जान विधाता । फरकहिं सुभग अंग सुन भ्राता ।।४।।
रघुवंशिनकर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पग धरैं न काऊ ।।५।।
मोहिं अतिशय प्रतीत जिय केरी । जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी।।६।।
जिनके लहहिं न रिपुगण पीठी । नहिं लावहिं परतिय मन डीठी ।।७।।
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं । ते नरवर थोरे जग-माहीं ।।८।।
दोहा–करत बतकही अनुजसन, मन सिय रूप लुभान ।
मुख सरोज मकरंद छबि, करत मधुप इव पान ।।२५।।
चितवत चकित चहूँदिशि सीता । कहँ गयेनृप किशोर मनचीता ।।१।।

गौरी पूजन को सखी ले आई हैं फुलवारी में प्रकाश करती फिरती हैं।।२।। जिसकी अलौकिक

---

१ राम-सवैया-जिहिहेत अनेकन भूप अनूप स्वरूप बनाइके वागै गली ।
जिहिहेत कियो मिथिलेश प्रणै जु महेशके चापको टोरै बली ।।

शोभा देखकर स्वभाव से पवित्र मेरे मन में क्षोभ हुआ है।।३।। सो सब कारण विधाता ही जानते हैं। हे भ्राता! सुन्दर अंग फरकते हैं।।४।। रघुवंशियों का स्वभाव ही ऐसा है कि कुपंथ में कभी पांव नहीं रखते।।५।। मुझे यह मन में प्रतीति है कि, मैंने कभी स्वप्न में भी पराई स्त्री नहीं देखी।।६।। जिनके शत्रु से पीठ नहीं देते, पराई स्त्रियों की ओर दृष्टि नहीं करते।।७।। मंगता जिनके यहां से (नाहीं) नहीं लेते वे पुरुष जगत् में बहुत थोड़े हैं।।८।। दोहार्थ-लक्ष्मण से इस प्रकार बात करते हैं मन सीता के रूप में लुभा रहा है, सीता का मुख कमल है छबि मकरन्द है उसको भौंरे के समान पान करते हैं।।२५।। सीता चकित होकर चारों ओर देखती है मन इच्छित नृपकिशोर कहां गये।।१।।

लता ओट तब सखिन दिखाये । श्यामल गौर किशोर सुहाये*।।२।।
थके नैन रघुपति छबि देखी । लोचनहू परिहरी निमेखी ।।३।।
लोचन मगु रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।४।।
दोहा-लताभवनते प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाय ।
निकसे जनु युग विमल बिधु, जलदपटल बिलगाय ।।२६।।
धरि धीरज इक सखा सयानी । सीतासन बोली मृदुवानी ।।१।।

-लहै तौन स्वयंवरमें दुहिता विजयी तिहि कीरत विश्व चली ।
सुकुमारि महा मनहारि गुणो यह सोइ विशेषि विदेह लली ।।१।।
लक्ष्मण लाल सुनो रघुराज बढ़ै उर लाज कढ़ें मुखबाता ।
आकशमात अमात न आनद मानँद होइगो कौन विख्याता ।।
या क्षण दक्षिण बाहु बिलोचन क्यों फरकैं कछु जानि न जाता ।
कीन्हों विचार मनै बहु वारन सो सब कारन जाने विधाता ।।२।।

*सवैया-जे बान लायक लाल उते परदारेनके बिच धर्म विचारी ।
आये इतैं मुनि शासन लैं नहि जानि रही मर्याद हमारी ।।
रीति हैं धर्म धुरीननकी रघुवंशिनको जग जाहिर भारी ।
पीठे परै नहिं संगर में नहि दीठि परै स्वपन्यो परनारी ।।

*पद-आली लखौ नवमाली सलोना । जालिम जुलुफ विपुल व्याली सम मोहिं डसी किमि जाऊँरी भौना । हरि लीन्ह्यों हिय राजकुँवर यह मंजुल हँसनि कुसुमकर दोना। ठाढ़ौ लता भवन के द्वारे जिमि कंदर कहि केहरि छोना ।। नैन सैन हरि हरयो चैन सब मैन हैन सम कोऊ अरुझोना। लागी लगन सांवली सूरति शंपथि मोरि अब कोउ बरजो ना ।। श्रीरघुराज राज ढ़ोटापर तन मन वारि भई अब मौना । लोकलाज कुललाज विसरिगो आजहि होनी होय सो होना।।१।।

सखी-बहुरि* गौरिकर ध्यान करेहू । भूप किशोर देख किनलेहू ।।२।।
सकुचि सीय तब नैन उघारे । सन्मुख दोउ रघुवंश निहारे ।।३।।
परवश सखिन लखी जब सीता । भईगहरु सब कहहिं सभीता ।।४।।
पुनि आउब** इहि बिरियां काली । असकहि मन बिहँसी इकआली।।५।।

तब लता की ओट में सखियों ने दिखाये जो सांवले गोरे किशोर अवस्था से शोभायमान हैं।।२।। रामचन्द्र की छबि देखकर नेत्र थंक गये नेत्रों ने भी पलक लगाना छोड़ दिया।।३।। नेत्रों के मार्ग से राम को हृदय में लाय सयानी ने पलकरूपी कपाट बन्द कर लिये।।४।। दोहार्थ-उसी समय दोनों भाई लतारूपी भवन से प्रगट हुए मानो मेघसमूह को निवारण कर दो चन्द्र प्रकट हुए हैं।।२६।। चौ०-तब एक चतुर सखी धीरज धरके जानकी से कोमलवाणी बोली।।१।। गौरी का फिर ध्यान करना, इस समय भूपकिशोर को क्यों नहीं देख लेती।।२।। तब सकुचाकर सीता ने नेत्र खोले तो सामने दोनों रघुवंशकुमारों को देखा।।३।। जब सखियों ने जानकी को परवश देखा तब सभीत हो कहने लगीं कि, बहुत देर हो गई।।४।। फिर कल को इसी समय आवेंगी ऐसा कहकर एक सखी हँसी।।५।।

गूढगिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलम्ब मातु भयमानी ।।६।।
जानिकठिन शिव चाप विसूरति । चलीराखि उर श्यामल मूरति ।।७।।

दोहा–देखन मिसु मृग विहँगतरु, फिरति बहोरि बहोरि ।
निरखि २ रघुवीर छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि ।।२७।।

गई भवानी भवन बहोरी । वंदि चरण बोली करजोरी ।।१।।
सी०-जयजयजय गिरिराज किशोरी । जय महेश मुखचन्द्रचकोरी ।।२।।
जय गजवदन षडानन माता । जगतजननि दामिनिद्युतिगाता ।।३।।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना ।अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ।।४।।
भव२ विभव पराभवकारिणि ।विश्वविमोहनिस्ववशविहारिणि।५।

दोहा–पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रोष ।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेष ।।२८।।

सेवत तोहिं सुलभ फलचारी । वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी ।।१।।

---

*सवैया-देर भई गहि शाख तमालकी ठाडी अहै पग पीर न जोवे ।
ध्यान धरे गिरिजा वपुको मिथिलेशलली तू वृथा क्षण खोवे ।।
पूजन कीजैं बहोरि उतै चलि मांगियों जो मनमें कछु होवे ।
देखिले सांवरो राजकुमार खरो रघुराज महामुद मोवे ।।१।।
**सवैया-ह्वैगे विलंब बैठी इतहीं अब अंब गये विन कोप करैगी ।।

गूढ़वाणी सुनकर सीता सकुचाई देर होने से माता का भय माना।।६।। शिव का धनुष कठिन जानकर विसूरती हुई हृदय में सांवली मूर्ति रखकर चली।।७।। दोहार्थ–मृग विहंग और वृक्षों के देखने के बहाने से बारम्बार लौटकर देखती है, रघुनाथ की छबि बारंबार देखने से बहुत प्रीति बढ़ी।।२७।। चौ० फिर भवानी के मंदिर में गई और चरणों में प्रणाम कर बोली।।१।। हे गिरिराजकिशोरी! तुम्हारी जय हो, हे महेशमुख चन्द्रचकोरी! तुम्हारी जय हो।।२।। हे गणेश और कार्तिकेय की माता! तुम्हारी जय हो। तुम जगत की माता और दामिनि की कांति से शरीरवाली तुम्हारी जय हो।।३।। तुम्हारा आदि मध्य और अन्त नहीं है, बड़ा प्रभाव है जिसको वेद नहीं जानता है।।४।। संसार की उत्पत्ति पालना और पराभव करनेवाली हो संसार की मोहनेवाली अपने वश विहार करती हो।।५।। दोहार्थ–हे माता! पतिव्रताओं में तुम्हारी पहिली गिनती है सहस शारदा शेष भी तुम्हारी महिमा नहीं कह सकते।।२८।। तुमको सेवन करने में चारों फल मिलते हैं। तुम वर की दाता शंकर की प्यारी हो।।१।।

देवि पूजि पद कमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होंहि सुखारे ।।२।।
मोर मनोरथ जानहु नीके । बसहु सदा उर पुर सबहीके ।।३।।
कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेही । अस कहि चरण गहे वैदेही ।।४।।
विनय प्रेम वश भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ।।५।।
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ । बोली गौरि हर्ष हिय भरेऊ ।।६।।
पा०–सुन सिय सत्य अशीश हमारी । पूजहि मन कामना तुम्हारी ।।७।।
नारद वचन सदा शुचि सांचा । सोवर मिलहिं जाहिं मनरांचा ।।८।।
छंद–मन जाहि राचो मिलहिं सो वर सहज सुन्दर सांँवरो ।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो ।।
यहि भाँति गौरि अशीश सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली ।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि २ मुदित मन मंदिर चली ।।१।।
सोरठा–जानि गौरि अनुकूल, सियहिय हर्ष न जाय कहि ।
मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे ।।१।।
हृदय सराहत सीय लुनाई* । गुरु समीप गवने दोउ भाई ।।१।।

हे देवि! तुम्हारे चरण कमल पूजन कर सुर नर मुनि सुखी होते हैं।।२।। तुम मेरा

पूजन बाकी अहै जगदंबको लंब भये रवि वेला टरैगी ।।
श्री रघुराज निहारी लई मन की उपजी नहि फेरे फिरैगी ।
आउव काल्हि यही बिरिया इति गौरीकृपा सब पूरी परैगी ।।
*दोवैछन्द—रूप रंगीली गुण गर्वीली सुधर सलोनी बाला ।
नवल नागरी अति उजागरी छाकी प्रेम पियाला ।।

मनोरथ भली प्रकार जानती हो कारण कि, सबके हृदय में विराजती हो।।३।। इसी से वह कारण प्रगट नहीं किया यह कहकर जानकी ने चरण पकड़ लिये।।४।। भवानी विनय और प्रेम के वशीभूत हो गईं, चढ़ाने की माला उनके हाथ से गिरी और मूर्ति मुसुकाई ।।५।। आदर से सीता का प्रसाद हृदय में धारण किया और मन में प्रसन्न हो पार्वती बोलीं।।६।। हे सीता! हमारी सत्य आशीश सुनों, तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।।७।। नारद का वचन सदा पवित्र और सच्चा है वही वर मिलेगा जिसमें मन रचा है।।८।। छंदार्थ–जिसमें मन रचा है वह सहज सुंदर सांवरा वर तुमको मिलेगा वह करुणानिधान तुम्हारा शील सनेह जानते हैं। इस भांति से गौरी की अशीश सुनकर सीतासहित सखीजन प्रसन्न हुईं तुलसीदास कहते हैं बारंबार भवानी को पूज प्रसन्न हो मंदिर को चलीं।।१।। सोरठार्थ–गौरी की अनुकूलता जान सीता के मन का हर्ष नहीं कहा जाता। मंगल के करनेवाले बाये अंग फड़कने लगे।।१।। मन में सराहते हुए दोनों भाई गुरु के समीप गये।।१।।

सुमन पाय मुनि पूजा कीन्हीं ।पुनि अशीश दोउ भाइन दीन्हीं ।।२।।
सफल मनोरथ होयँ तुम्हारे । रामलषण सुनि भये सुखारे ।।३।।
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी । लगे कहन कछु कथा पुरानी ।।४।।
विगत दिवस मुनि आयसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ।।५।।
प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा । सियमुखसरिस देखिसुखपावा।।६।।
बहुरि विचार कीन्ह मनमाहीं ।सिया वदनसम हिमकर नाहीं ।।७।।
राम–दोहा–जन्मसिंधु पुनि बंधु विष, दीन मलीन सकलंक ।।
सियमुखसमता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक* ।।२९।।
घटै बढ़ै विरहिन दुखदाई । ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई ।।१।।

–नख शिख भूषण अमल अदूषण ज्यों शशि पूषण सोहैं ।
वसन सुरगा शोभित अंगा निरखि शची रति मोहैं ।।१।।
पंकजनैनी है पिकबयनी गजगामिनी ललामा ।
वैस किशोरी श्यामल गोरी मनहरनी सुखधामा ।।
उरज उतंगा नवल अनंगा परम प्रवीन पियारी ।
रंग रंगीली नेह प्रवीनी सुन्दर रूप उज्यारी ।।२।।

* कवित्त–जलते जनम तापै घटत बढ़त रोज बन्धु विष वारुणी को सहित कलंक है। वासर मलीन रोग यक्ष्मा ते दीन पुनि, पाइ पूर्णमासी पर्व राहुते सशंक है। मध्य श्यामताई विरहीजनको दुखदाई परि परिवेष नहिं ठहरै निशंक है। रघुराज सिय मुख सम किमि भाषौं मुख भाषत मयँक सम सोई मतिरंक है।।१।।

फूल पायकर मुनि ने पूजा की फिर दोनों भाइयों को अशीश दी।।२।। कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों, यह सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए।।३।। फिर भोजन कर विज्ञानी मुनि पुरातन कथा कहने लगे।।४।। दिन छिपने से मुनि की आज्ञा पाय दोनों भाई सन्ध्या करने चले।।५।। पूर्वदिशा में शोभायमान चन्द्रमा उदय हुआ उसको सीता के मुख के समान देखकर सुख पाया।।६।। फिर मन में विचार किया यह चन्द्र जानकी के मुख के समान नहीं है।।७।। दोहार्थ–एक तो सागर से जन्म फिर विष भ्राता दिन में मलीन और कलंकी यह वापुरा रंक चन्द्र सीता के मुख की उपमा कैसे पा सकता है।।२९।। चौ०–फिर घटता बढ़ता विरहीजनों को दुःख देता है अपनी सन्धि पाकर इसको राहु ग्रास करता है।।१।।

कोक* शोकप्रद पंकज द्रोही । अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही ।।२।।
वैदेही मुखपटतर दीन्हें । होइदोष बड़ अनुचित कीन्हें ।।३।।
सियमुखछबिविधुव्याजबखानी । गुरुपहँ चले निशाबड़िजानी ।।४।।
करि मुनिचरण सरोज प्रणामा । आयसु पाय कीन्ह विश्रामा ।।५।।

इति सप्तमदर्शन

फिर चकवा चकवी की शोकदाता और कमलों का द्रोही है। हे चन्द्र! तुममें बहुत दोष है।।२।। जानकी के मुख की उपमा देने से बड़ा दोष और अनुचित होता है।।३।। हां, सीता के मुख की छबि का चन्द्रमा ब्याज है यह कहते बड़ी रात गई जानकर गुरुसमीप चले।।४।। मुनि के चरणकमलों को प्रणामकर आज्ञा पाय विश्राम किया।।५।।

इति सप्तमदर्शन

अथ अष्टम दर्शन

(रामलक्ष्मण मुनिमण्डली में बैठे हैं। विश्वामित्र उपदेश करते हैं उसी समय शतानन्दजी आते हैं)

(वार्ता)

शतानन्द–विश्वामित्रजी महामुनिराज को नमस्कार है।

विश्वामित्र–नमस्कार कहिये क्या समाचार है?

शता०–राजा जनक के धनुषयज्ञ का मंगलाचार है अब आप चलें–

---

*सवैया—रे विधु कोकन शोक प्रदायक तू जग जाहिर पंकज द्रोही ।
काम को मीत करै अतिशीत कियो गुरु को अपकार है कोही ।
भाषत श्रीरघुराज सुनै सियके मुखकी सरि तोहि न सोही ।
नीक न लागत मोहि मयंक बड़ो विरही जनको निरमोही ।।१।।

दोहा—शतानन्दपद वंदि प्रभु, बैठे गुरुपहँजाय ।
चलहु तात मुनि कह्यो तब, पठवा जनक बुलाय ।।३०।।

मुनि-सीय स्वयम्बर देखिय जाई । ईस काहि धौं देहि बड़ाई ।।
लषण कहा यशभाजन सोई । नाथकृपा तव जापर होई ।।२।।

दोहार्थ—शतानन्द के चरणों को प्रणाम कर प्रभु गुरु के पास जाकर बैठे तब मुनि बोले—हे तात! चलो जनक ने बुला भेजा है।।३०।। चौ०—सीता का स्वयम्बर जाकर देखो ईश जाने किसको बड़ाई देगा।।१।। लक्ष्मण बोले—हे नाथ! यह यश उसी को मिलेगा जिस पर तुम्हारी कृपा होगी।।२।।

हरषे मुनि सब मुनिवरवानी । दीन अशीश सबहि सुखमानी ।।३।।
पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला । देखन चले धनुष मखशाला ।।४।।
रंगभूमि आये दोउ भाई । अससुधि सब पुरवासिन्ह पाई ।।५।।
चले सकल गृह काज विसारी । बालक युवा वृद्ध नरनारी ।।६।।
देखी जनक भीर भइ भारी । शुचि सेवक सब लिये हँकारी ।।७।।
जा तुरतसकललोगन्ह पहँजाहू । आसन उचित देहु सब काहू ।।८।।

दोहा—"कहि मृदुवचन विनीत तिन, बैठारे नरनारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि" ।।३१।।

राजकुमार तेहि अवसर आये । मनहु मनोहरता छबि छाये ।।१।।
जिनकी रही भावना जैसी । प्रभुमूरति देखी तिन तैसी ।।२।।
हरषे जनक देखि दोउ भाई । मुनिपदकमल गहे तब जाई ।।३।।
करि विनती सब कथा सुनाई । रङ्गअवनि मुनिवरहिं दिखाई ।।४।।

यह श्रेष्ठवाणी सुनकर सब प्रसन्न हुए और सुख मानकर सबने आशीष दी।।३।। फिर कृपासागर मुनिजनों के संग धनुषयज्ञस्थान देखने चले।।४।। रंगभूमि में दोनों भाई आये यह समाचार पुरवासियों ने पाये।।५।। बालक, तरुण, बूढ़े, नर, नारी सब अपना अपना कार्य छोड़कर चले।।६।। अब जनक ने देखा कि बड़ी भीड़ हुई है तब अपने उत्तम सेवक बुलाये।।७।। और बोले तुरंत सब लोगों पर जाकर सब किसी को उत्तम आसन दो।।८।। दोहार्थ—"उन्होंने कोमल

---

*सवैया—जे नृप आये शरासन तोरन गर्व भरे रणधीर महाने ।
ऐसे विचार किये मन में जितिहैं कहुको हमारे समुहाने ।।
आंखिन में तिनके रघुराज सुवीर शिरोमणि वेष दिखाने ।
वीर रसैकी बनी मनो मूरति रोष विचारि लखैं ललचाने ।।१।।

वचन नम्रतापूर्वक कहकर नरनारियों को बैठाया। उत्तम मध्यम नीच लघु इनको अपने अपने स्थल के अनुसार बैठाया" ।।३१।। चौ०–उसी अवसर में राजकुमार आये मानो मनोहरता छबि छा रही है।।१।। जिनके मन में जैसी भावना थी उन्होंने वैसी प्रभु की मूर्ति देखी।।२।। जनक दोनों भाइयों को देखकर प्रसन्न हुए और जाकर मुनि के चरण वन्दन किये।।३।। विनय करके अपनी सब कथा सुनाई। रंगभूमि सब मुनि को दिखाई ।।४।।

भलि रचना नृपसनमुनि कहेऊ । राजामुदित महा सुख लहेऊ ।।५।।
दोहा–सब मंचनते मञ्च इक, सुन्दर विशद विशाल ।।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठारे महिपाल* ।।३२।।

(धनुषयज्ञ)

सब राजाओं ने अच्छे अच्छे भूषण वस्त्र धारण किये सिंहासनों पर बैठे हैं और रामचन्द्र को देख प्रणाम करते हैं।)

प्रभुहि देखि सब नृप हियहारे । जनु राकेश उदय भये तारे ।।१।।
अस प्रतीति तिनके मनमाहीं । रामचाप तोरब शक नाहीं ।।२।।
राजा–विनुभंजेउभवधनुषविशाला । मेलिहि सीय रामउर माला ।।३।।
अस विचार गमनहु घर भाई । जय प्रताप बल तेज गँवाई ।।४।।

–क्षितिनाथ छली कुटिलै कितवै दगाबाज समाज जे आये रहे ।
कपटी कलि मूरति कूर महा करि माया कुमारि को ब्याह चहे ।।
रघुराज लखे रघुनायक ते महाभीम भयावन दण्ड गहे ।।
शिर काटन चाहत ज्यों अबहीं करवाल कराल लिहेउ बहे ।।२।।
नारि विलोकहि सांवलि सूरति मूरति माधुरिकी मनभाई ।
प्रीति भई रसरीति छई अनुराग कि आभ अनूप निकाई ।।
श्रीरघुराज मनौं जुलफैंकी जंजीरन की कुलफै खुलवाई ।
जानि दृगंचल चंचल चोर अचँचल कैदियो वेरी भराई ।।३।।
दोहा–कोटि मदन मद कदन वपु, शोभ सदन सुकुमार ।
कहै सखी किहि पटतरिय, निवछावरि शृङ्गार ।।१।।

* राग परज–सखी रंगभीने दोउ राजकुमार । निरख सखी नयनन भर नीके शोभा अमित अपार ।। भुजदंडन वंदन मंदनपर चमक चांदनी चार । ललित कंठ रेखा विचित्र सखि उर कमलन के हार ।। रंगभूमि मणिजटित मंच पर बैठे सभा मंझाकर। मानो रविउदयाचल गिरिते निकस्यो तिमिर विदार ।। खण्ड खण्ड ब्रह्माण्ड खण्डके भूपति जुरे अपार । कैसे धनुष उठायो । तोरचो किनहु न पायो पार ।। कटि निषंग कर धनुषबाण लिये हरन चले महिभार । लाहा रामचन्द्र छबि ऊपर जन कान्हर बलिहार ।।१।।

राजा से मुनि ने कहा कि, भली रचना है राजा ने सुनकर महासुख लिया।।५।। दोहार्थ–सब मंचों से एक मंचान बड़ा सुन्दर शोभित है मुनिसहित दोनों भाइयों को राजा ने वहां बैठाया।।३२।। प्रभु को देखकर सब राजा मन में हार गये जैसे चन्द्रमा के उदय होने में तारे।।१।। प्रतीत हुई कि, इसमें सन्देह नहीं कि राम चाप भंजन करेंगे।।२।। परन्तु शंकर का धनुष बिना भी सीता राम के गले में जयमाला डालेगी।।३।। हे भाई! ऐसा विचारकर बल तेज गँवाय अपने अपने घर जाओ।।४।।

विहँसे अपर भूप सुनि वानी । जे अविवेक अंध अभिमानी ।।५।।
दु०राजा–तोरेहुधनुषव्याहअवगाहा । बिनतोरे कोकुँवरिविवाहा ।।६।।
एक बार कालहु किन होई । सियहित समर जितब हम सोई ।।७।।
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने । धर्मशील हरिभक्त सयाने ।।८।।
साधुराजा–सो०–सीयविवाहब राम, गर्व दूरिकर नृपनकर ।
जीत को सकै संग्राम, दशरथ के रणबाँकुरे ।।१।।
वृथा मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदक नहिं भूँख बुताई ।।१।।
सिय हमारि सुनु परम पुनीता । जगदम्बा जानहु जिय सीता ।।२।।
जगतपिता रघुपतिहि विचारी । भरि लोचन छबि लेहु निहारी ।।३।।
करहु जाय जाकहँ जोई भावा । हमतौ आज जन्म फल पावा ।।४।।

(माथे पर तिलक रुद्राक्ष की माला धारण किये रावण और बाणासुर आते हैं) क्षेपक

रावण–कहां सिया सो देहु बताई । धनुष तोर ले जाउँ उठाई ।।५।।
बाणा०–गुरु धनुष है विचार नाहीं । मारत काहे गाल वृथाहीं ।।६।।
दशशिर किमि अभिमान जनावो । करि प्रणाम अपने घर जावो ।।७।।

यह बात सुन दूसरे राजा हँसे जो अज्ञान से अन्धे अभिमानी थे।।५।। और बोले–धनुष तोड़ने पर भी व्याह कठिन है बिना तोड़े तो कुँवरि को कौन विवाह सकता है।।६।। एक बार काल भी क्यों न हो सीताजी के निमित्त हम उसको जय करेंगे।।७।। यह वचन सुन धर्मात्मा हरिभक्त सयाने राजा मुसुकाते हुए बोले।।८।। सोरठार्थ–सब राजाओं के गर्व दूरकर सीता को रघुनाथजी विवाहेंगे, यह दशरथ के रणबांकुरे हैं इनको संग्राम में कौन जीत सकता है।।१।। चौ०–गाल बजाकर वृथा मत मरो, मन के मोदकों से भूख नहीं जाती।।१।। हमारी तो यह परमपवित्र शिक्षा सुनो सीता को मन में जगत् की माता जानो।।२।। रघुनाथ को जगत् का पिता विचारकर नेत्र भरकर छबि देख लो।।३।। जो जिसके मन में हो सो जाकर करो हमने तो आज जन्म का फल पा

लिया।।४।। रावण बोला–जानकी कहां है बताओ धनुष तोड़कर उठा ले जाऊं।।५।। बाणासुर बोला–देखते नहीं यह गुरु का धनुष है वृथा गाल क्यों मारते हो।।६।। हे रावण! अभिमान क्यों करते हो, प्रणाम करके अपने घर जाओ।।७।।

रावण–सवैया

एकहि शीश कि कौन कहे सिगरो जग ज्यों सरसों सम सोहै ।
तो नहिं शेषके वेश शरीर में सूक्षम कीन्ह अभूषन जो है।।
सो शिववास किये जेहि शैल सो कौर भयो कर एकहि कोहै ।।
हौनहिं गर्व करो करै कौन प्रशंसत जाहि हरी रहतो है।।१।।
बाणा०–पीन पिनाक पुरारिकोयों विरच्यो विधिलेकरवज्रकोसारहै।
याकी न जानत तैं गुरुता नहिं सीक गनै गुण्यो पूरो गवार है ।
आपनो गर्व गँवावनकोधनु तोरनको शठ कीन्हों विचार है ।
जो बढ़कै बलकै अवलोकत है सोतो नाहिन नाऊको बार है ।।२।।
चौ०–जगदाता मोरे घर आये । बलि को याच्यो कर फैलाये ।।१।।
तउ मैं गर्व करत अस नाही । क्यों मद करत वृथा मन माहीं ।।२।।
रावण–धनुष तोर तोरउ मद तोरौं । पुरी उठाय सिन्धु में बोरौं ।।३।।
असकहि धनुष उठावन लागा । उठ्यो न तब कह बाण अभागा ।।

सवैयार्थ–रावण बोला–एक शिर की कौन कहे सारा जगत् जिसके शिर पर सरसों के समान शोभायमान हो रहा है उन शेषजी का जिन्होंने अपने शरीर में सूक्ष्म आभूषण बनाया है वह शंकर जिस पर्वत पर निवास करते हैं वह मेरे एक ही हाथ को कौर हुआ सो मैं अभिमान न करूं तो कौन करेगा जिसकी शंकर प्रशंसा करते रहते हैं।।१।। बाणासुर बोला–यह पुराना शंकर का धनुष विधाता ने वज्र का सार लेकर रचा है इसकी गुरुता तुम नहीं जानते। सिखावन न मानने से तुम पूरे गँवार विदित होते हो। मूढ़! तुमने अपना गर्व गमाने के लिये ही धनुष तोड़ने का विचार किया है जो अपने बल से बढ़ के बोलता है सो नाऊ का बार है।।२।। चौ०–देखो जगत् के दाता वामनजी मेरे घर आये। हाथ फैलाकर बलि से याचना की।।१।। तो भी मैं ऐसा गर्व नहीं करता तुम क्यों वृथा घमण्ड करते हो।।२।। रावण बोला–धनुष तोड़कर तुम्हारा मद भी तोडूंगा तुम्हारी पुरी उठाय सागर में बोरूंगा।।३।। यह कह धनुष उठाने लगा जब न उठा तो बाणासुर ने अभागे से कहा।।४।।

बाणासुर सवैया

कर जो करमै कैलास लियो कसकै अब नाक सकोरत है।
दइ तालन बीस भुजा झहराय झुकै धनुको झकझोरत है ।।

तिल एक हलै न हलै वसुधारिस पीसकै दाँतन तोरत है ।
मन में यह ठीक भयो हमरे मद काको महेश न मोरत है ।।३।।
यह कह धनु प्रदक्षिणा करके । बाणासुर निकस्यो मुद भरके ।।१।।
मन लजाय गयो निकरदशानान । भये लोग प्रमुदित निज निज मन ।।२।।

(दोनों गये)

दोहा—जानि सुअवसर सीय तब, पठवा जनक बुलाय ।
संग सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लिवाय ।।३३।।

चलीं संग ले सखी सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ।।१।।
रंगभूमि जब सिय पगुधारी । देख रूप मोहे नरनारी* ।।२।।
यह कह धनु प्रदक्षिणा करके । बाणासुर निकस्यो मुद भरके ।।१।।

सवैयार्थ—जिसने हाथ में कैलास धनुष उठा लिया वह अब कस के नाक सकोड़ता है। बीसों भुजा ताल के समान झहराई झुक के धनुष को झकझोरता है पर धनुष एक तिलभी नहीं हिलता। पृथ्वी हिल जाती है तब रिस से दांत पीसता है यह हमारे मन में ठीक हुआ कि, किसका मद चूर्ण नहीं करते हैं।।३।। चौ०—यह कह धनुष की प्रदक्षिणा कर प्रसन्न हो बाणासुर गया।।१।। मन में लजाय रावण भी चला गया तब सब कोई प्रसन्न हुए।।२।। दोहार्थ—तब सुसमय जानकर जनक ने सीताजी को बुला भेजा। संग में सब सुन्दरसखी उनको आदर से बुलाने चलीं।।३३।। चौ०—सयानी सखी उनको साथ ले चलीं। मनोहर वाणी से गीत गाने लगीं।।१।। रंगभूमि में जिस समय जानकी आई उस समय उनका रूप देखकर नरनारी मोहित हो गये।।२।।

पाणि सरोजसोह जै माला । औचकचितै सकलमहिपाला ।।३।।
सीय चकित चित रामहिं चाहा । भये मोहवश सब नरनाहा ।।४।।

---

*कवित्त—उभै पाणि अलक उठाय मिथिलेश लली हेरो चारि ओर कहां सांवरो कुमार है ।
जहां जहां भयो दृष्टिपात मैथिली को मंजु तहां तहां बैठो जो जो भूमि भरतार है ।
सो सो सब जोहि जोहि मोहि मोहि मंचन पै रिगो ने नेकु रह्यो तनुको संभार है ।
रघुराज रामपद कंज लागे नैन जाय कीन्हें मनोराजन समाज खिलवार है ।।१।।
कोई भूमिपाल रहे दंदनसों दावि दाल कोई करवालन को छोड़े तिहिं काल हैं ।
कोई मोह वारिधि में बूड़ि उतरान लागे कोई गिरे मंचनते वपुष बिहाल हैं ।
दुर्मह भुलावन के हाल को कहांलौ कहों छूटी ढाल टूटी माल बन्द भये गाल हैं ।
मानो मोहिनीको रूप धारचो है विदेह बाल रघुराज मन मुसक्यात रघुलाल हैं ।।२।।
दास देखे स्वामिनीसी दुष्टकाल यामनीसी सखी वर भामिनीसी देव जगदंबासी ।
दुमात हितासी दासी कलपलतासी दैत्यभूप कालिकासी मुनि आनंद कंदवासी ।

रामरूप अरु सिय छबि देखी । नर नारिन परिहरी निमेषी ।।५।।
तब बन्दीजन जनक बुलाये । बिरदावली कहत चलि आये ।।६।।
ज०-कहु नृपजायकहो प्रणमोरा । चले भाट हियहर्ष न थोरा ।।७।।
दोहा-बोले बन्दी वचनवर, सुनहु सकल महिपाला ।
पण विदेह कर कहहिं हम, भुजाउठाय विशाला ।।३४।।

(एक एक राजा क्रम से उठते हैं बन्दीजन विरदावली सुनाते हैं)

बंदी-पहले हमारे वचन सुन लो पीछे धनुष के ढ़िग जाना।

करकमल में जयमाला शोभित है औचक सब राजों को देखती है।।३।। सीता ने चकित चित्त हो राम ही को चाहा। सब राजा मोहवश हो गये।।४।। राम का रूप और सीता की छबि देखकर नरनारियों के पलक लगने बंद हुए।।५।। तब जनकजी ने बन्दीजनों को बुलाया, वे बिरदावली कहते आये।।६।। राजा बोले-तुम जाकर हमारा प्रण कहो तब भाट यह वचन सुन मन में बड़े प्रसन्न हो चले।।७।।

दोहार्थ-तब बन्दीजन बोले-हे राजाओ! सुनो हम भुजा उठाकर राजा का विशाल प्रण सुनाते हैं।।३४।।

बन्दी-नृपभुजबल विधुशिवधनुराहू । गरु अकठोर विदित सबकाहू ।।१।।
रावण बाण महाभय भारे । देखि शरासन गवहिं सिधारे ।।२।।
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा । राजसमान आज जेहि तोरा ।।३।।

- सज्जन कृपासी योगीजन अजपासी सुरनारी कमलासी शठ मूरति त्यों सम्वासी ।
रहे जस आशी तिन्हैं तौन विधि भासी लखे मातासी लषण रघुराज अवलंबासी ।।३।।

१ कवित्त-विदित पुरारिको पिनाक नवखंडनमें परमप्रचंड त्यों अखंड ओज पारावर ।
बड़े बड़े वीर वरिवण्ड भुजदण्डसों खण्ड महिमण्ड यश जान चाहै पैरि पार ।।
आजलों न देखे तीर केते बली बूड़े वीर गुरुते गम्भीर नीर पीर पाय माने हार ।
बाहुबल विरचि जहाज रघुराज आज पावै पार सोई शिरताज भूमिभरतार ।।१।।
उदित उदण्ड जो हजार भुजदण्डसों दिग्गजन जीत्योशिल रह्यो बलिका कुमार ।
राजत अचल अर्धंग शिव समेत तैस्यो करमें कमलसो निशाचरको सरदार ।।
दोऊ महामानी वीर शंभुके शरासन को नाय शिर आसनको गवने गमैं लचार ।
कोटिन कुलिशसों पुरारिको पिनाक आजतोरि रघुराज सियव्याहै विनहीविचार ।।२।।
पूरव स्वयंवर जो होन लग्यो एकबार जुरे सबै इतै द्वीप द्वीपके महिपाल ।
राजन को बाहुबल पूरणसो राकापति ग्रस्यो तिहि शंभुधनुविन्धुतुद विकराल ।।
रघुराज बहुरि विदेह सोई सीता हेतु विरच्यो स्वयंवर में कम्मर कसे भुवाल ।
तोड़े जो पुरारिको पिनाक नाकनके यश मेलि हैं विदेह कन्या ताके कंठ जयमाल ।।३।।

त्रिभुवन जयसमेत वैदेही । विनहिं विचर वरै हठि तेही ।।४।।
सुनि प्रण सकल भूप अभिलाखे । भटमानी अतिशय मनमाखे ।।५।।
परिकर बांध उठै अकुलाई । चले इष्टदेवन शिरनाई ।।६।।
स०–ज्ञान न ध्यान न संयम जप तप जो नहिं सन्त गुरुन शिरनावै ।।
मात पिता गौ विप्र न मानत वेदरु शास्त्र में तर्क उठावै ।।
जो हठठान गुमान करै नित जौ परिनारिसों प्रेम बढ़ावै ।।
मानै हमारी कही महिपाल सो शंकर चाप के पास न जावै ।।१।।
वेद के अर्थ अनर्थ करै अरु धर्म सनातन रीति मिटावै ।
ग्यारह नियोग करै इकनारिके जो विधवान को व्याह रचावै ।
शूद्रन को उपवीत करै अरु नीच जने जहँ वेद बोलावै ।
जिन देश में दैवत पूजन होत नहीं वे धनुष्य के पास न आवै ।।२।।

राजाओं की भुजा का बल जो चन्द्रमा उसके ग्रसने को शिव का धनुष राहु है इसकी गुरुता और कठोरता सब किसी को विदित है।।१।। रावण बाणासुर बड़े बली असुर धनुष को देखकर ही घर चले गये।।२।। वही यह शंकर का धनुष आज राजसमाज में जिसने तोड़ा।।३।। उनको त्रिभुवन की जयसमेत जानकी बिना विचारे वरैगी।।४।। यह प्रण सुन सब राजाओं ने अभिलाषा की और योद्धा मन में बड़े गर्वित हुए।।५।। अपने अपने इष्ट देवताओं को शिर नवाय व्याकुलता से कमर बांधकर चले।।६।। सवैयार्थ–जो ज्ञान ध्यान, संयम, जप तप नहीं करते तथा सन्तगुरु को शिर नहीं नवाते माता पिता गौ ब्राह्मणों को नहीं मानते, वेद शास्त्र में तर्क उठाते हैं जो हठी गुमानी हैं तथा जो परनारी में आसक्त हैं वे राजा हमारी कही मान शिव के धनुष के समीन न जायँ।।१।। जहां वेदों के अर्थ का अनर्थ किया जाता है सनातन धर्म की जो रीति मिटाते हैं। एक नारि के ग्यारह नियोग करते विधवा का व्याह करते शूद्रों को यज्ञोपवीत करते जहां नीच जन वेद उच्चारण करते हैं तथा जिसके देश में देवताओं का पूजन नहीं होता वह राजा धनुष के समीप न जाय।।२।।

जाके रहो नित पूजन देव को मानत जो गुरु ब्राह्मण गाई ।
शील सनेह उछाह भरो मन संयम दान करै अधिकाई ।
मानत जो हर विष्णु अभेद रहै शरणागत को सुखदाई ।
इष्ट रु पूर्त करे सबही विधि सो धनु के ढिग चावसों जाई ।।३।।

---

*सोरठा–यहि विधि बाहु उठाय, खड़े सुमति बन्दी उभय ।
प्रण मिथिलेश सुनाय, सब राजन को देखते ।।

पहले के उठने पर

बन्दी जाको प्रचण्डप्रताप चहूं दिशि छायरह्यो जेहिंमानतशेषहै ।
और कहा उपमा यदि दीजिये देवनमें जेहि नाम विशेष है ।।
अस्त्र रु शस्त्रनमाहिं विचक्षण देखो लसतकस अनुपम वेष है ।
सुन्दर यह सुरसेनप्रदेश को आवत वीर सुखेन नरेश है ।।१।।

दूसरे के उठने पर

वेष विचित्र पवित्र किये अति जागत है जेहि की जगशाको ।
चन्द्रसमान दिपै मुखमण्डल और नहीं नृप कोउ उपमाको ।।
देश अनेक किये वश में बलवीर कुलीन धुरीन धरा को ।
सो यह मल्लिकपीडनरेश है आवत जो धनुके ढ़िग बांको ।।२।।

तीसरे के उठने पर

जाहिर जोति रही जग में जेहि के यश से रवि चन्द हु मन्द है ।
आनन दिव्य सरोज लजावत पूरे रह्यो छबि को मकरन्द है ।।
हांक सुने दिग्पाल परावत चाल चलै जिमि मत्तगयन्द है ।
मूछचढ़ाय गरूरसों आवत ये धनु के ढ़िग कारुषनन्द है ।।३।।

जिसके यहां नित्य देवता पूजे जाते, जो गुरु ब्राह्मण गाय को मानते हैं तथा जो हर विष्णु में भेद नहीं मानते, शरण में आये हुए को सुख देते हैं जिनका मन शील सनेह के उछाह से भरा है। जो देवमंदिर का निर्माण कर प्रतिष्ठा करते, बावड़ी कूप सरोवर बनाते हैं वह धनुष के समीप आनंद से जायँ ।।३।। सवैयार्थ–जिसका चारों ओर प्रचण्ड प्रताप छा रहा है जिसको शेष मानता है और उपमा इसकी क्या दें इसका देवताओं में नाम है यह अस्त्र शस्त्र में बड़ा चतुर है देखो कैसा सुन्दर वेष है। यह शूरसेन देश का वीर राजा सुखेन है।।१।। विचित्र पवित्र वेष किये जिसका शाखा जगत में जगता है मुखमंडल चन्द्र के समान दीपता है जिसकी उपमा को और राजा नहीं है। अनेक देश इसने वश में किये हैं यह बड़ा बली कुलीन पृथ्वी का धूर धारण करनेवाला बड़ा बांका मल्लिकापीड़ राजा धनुष के समीप आता है।।२।। जिसका प्रकाश जगत् में फैल रहा है जिसके यश से सूर्य चन्द्र फीके पड़ गये हैं दिव्य मुख कमल को लज्जित करता है यह छबि के पराग से मानो पूर्ण है जिसकी हांक सुनने से दिक्पाल पलायमान होते मत्तगयन्द (हाथी) की समान चालवाला मूच्छैं चढ़ाये गरूर किये यह करूषनन्दन धनुष के समीप आता है।।३।।

चौथे के उठने पर

कामछटा जेहि को लखलाजत होत उदै जिमि शशिधर प्राची ।
दानदया अरु नीति विचार में कीरति जासु सकल जग मांची ।

जाकी समान न और भयो कोउ बात सभा में उचारत सांची ।
वीर बली नृप आवत शैल सो बिलसत है पावनपुरकांची ।।४।।

पांचवें के उठने पर

रूप अनूप महाछबि खान विभूषणसों सब अंग संवारे ।
राजनमाहिं विराजरह्यो जिमि चन्द्र सुहावत है मधतारै ।।
भाल विशाल हियेमध हार सुअंगत दोउ भुजदण्डन धारे ।
अंगदनाम को अंगनरेश ये आवत है धनुढिग बलभारे ।।५।।

छठे के उठने पर

शंभु विराजते हैं जेहि ठौर लिये परिवार सकल सुखरासी ।
शीशकिचन्द्र प्रभासों जहां सबकालमें ज्योति रहै परकासी ।।

जिसको देखकर काम की शोभा लजाती है जैसे पूर्व में चन्द्रोदय हो इस प्रकार इसका उदय है, दान दया और नीति के विचार में जिसकी कीर्ति सब जगत् में मच रही है जिसके समान कोई और नहीं हुआ, जो सभा में सत्य बात उच्चारण करता है यह वीर बली राजा शैल के समान आता है। यह कांचीदेश का नरेश है।।४।। जिसका मनोहर उपमारहित छबि निधानरूप है। सब अंगों में भूषण धारण किये तारों में चन्द्रमा समान जिसकी राजा में शोभा है। चौड़ा मस्तक, हृदय में हार, दोनों भुजाओं में बाजूबन्द पहरे बड़ा बली यह अंग देश का अंगद राजा आता है।।५।। जहां अपने परिवार सहित सब सुखनिधान शंकर विराजमान रहते हैं जिसके शिर में स्थित चन्द्रमा की किरणों से उसके नगर में सदा उजाला रहता है। यह वीर विवेक और दयायुक्त हो निरन्तर शंकर का पूजन करता है यह वीर महीप उज्जैन का राजा है।।६।।

पूजत है हरको दिन रैन विवेक दयायुत वीर विलासी ।
आवत है धनुके ढिगमें यह वीर महीप उज्जैन निवासी ।।६।।

सातवें के उठने पर

वीर बली कोदण्ड गहे कर दीखत है जनु काल भयंकर ।
मानभरो भट शैलसी देह निहारत जाहि महीप रहे डर ।।
नागर जाहर देश अनेकन पालत भूमि प्रजा नारीनर ।
आवत भूप अवन्तिकादेशको हाथलिये अजहूँ अपने शर ।।७।।

आठवें के उठनेपर-

युद्धविचार प्रवीण महामति जो दृढकाय महाबलधारी ।
धर्मधुरंधर शत्रुविनाशन पालत नित्य प्रजा नरनारी ।।
गावत है जगमें सबही यश रूप लसै मनसिज अनुहारी ।
यह पंजाब नरेश महाभुज आवत है तनमें बलभारी ।।८।।

नौवेंके उठने पर-

अतितियसंगमें मानत है सुख भामिनि याहि करत सिंगार है ।
भौं मटकाय दिखावत भावको कोककलामें बढचो अधिकार है॥
वीरता धीरता चित्त न राखत भूषण वस्त्र भरो भंडार है।
नैन नचायके भाषत बैन ये राज जनाननको सरदार है॥९॥

जो यह बड़ा वीर हाथ में धनुष लिये काल के समान दीखता है मान में भरा बड़ा योद्धा शैलसा शरीर जिसको देखकर राजा डर रहे हैं यह चतुर अनेक देशों में विख्यात प्रजा के नारी नरों का न्याय से पालन करनेवाला हाथ में बाणलिये अवन्तिकापुरी राजा आता है॥७॥ यह युद्धविचार में बड़ा प्रवीण बुद्धिमान् दृढ़शरीर बड़ा बली धर्मधुरधारी शत्रुनाशकारी प्रजा के नरनारी पालन में तत्पर जिसका यश जगत में सब कोई गाते हैं, जो कामदेव के समान स्वरूपवान् है यह बड़ा बली पंजाब देश का राजा है॥८॥ यह स्त्रियों के संग में सुख मानते हैं, जिसका स्त्रियें नित्य शृंगार करती हैं जो भौं मटकाकर भाव को दिखाता है, जिसका कोककला में अधिकार बढ़ा हैं जिसके चित्त में वीरता कुछ नहीं है स्त्रियों के भूषणवस्त्रों से इनका भंडार भरा है जो नयन नचाकर बातें करते हैं यह राजा जनानों के सरदार हैं॥९॥

दशवें के उठने पर

जाके सुलच्छन अंग में दीखत बातनमाहिं विचक्षण नीको ।
वीरनमें अतिवीर महाबल यश प्रसिद्ध तलवार धनी को ॥
तस्कर चोर न राखत राज्य में सन्मुख जासु न होत अनीको ।
यह महाराष्ट्रसुदेश को वीर है नावत जगशिर भूपमनी को ॥१०॥

रामलक्ष्मण की ओर देखकर

छायरही सुखमा सब अंग में जो सब जीव के प्राण आधार हैं ।
बाहु विशाल अनेक भरे गुण अस्त्र निधान सिंगार सिंगार हैं ॥
काम वसन्त समान मनोहर ज्ञान निधान मनहु करतार हैं ।
वयस किशोर धनुष करपंकज ये अवधेश के राजकुमार हैं॥११॥

रघुराजों के उठने पर

बंदी–दोहा–तुमसे यह नहिं चढ़ैगो, भारी शंकर चाप ।
अपनी ओर निहारिकै, बैठजाहु चुपचाप ॥१॥

राजा–वृथा बकत क्यों बंदि तू, जानता सब संसार ।
मेरे बल के सामने, कहां धनुष त्रिपुरार ॥२॥

जब न उठा तब बंदी बोला

तब नहिं मानी बात मम, अब समझे महाराज ।
बैठ जाव मुख ढाँपकर, लखे लगत है लाज ॥३॥

जिसके अंग में सब सुलक्षण दीखते हैं, जो बातों में बड़े चतुर हैं, वीरों में वीर महाबली यश उजागर तलवार के धनी जिसके राज्य में ठग और चोर नहीं हैं। कोई सेना जिसके सन्मुख नहीं ठहरती, इसको सब शिर नवाते हैं, यह महाराष्ट्र देश के राजा हैं॥१०॥ जिसके सब अंगो में सुखमा छा रही है जो सब जीवों के प्राण आधार हैं, बड़ी भुजा अनेक गुणों की खान अस्त्रविद्या में अद्वितीय शृंगार के शृंगार काम और वसन्त देवता के समान मनोहर ज्ञान के निधान मानो दूसरे विधाता किशोर अवस्था धनुषबाण हाथ में लिये यह महाराज दशरथ के दोनों कुमार हैं॥११॥ बंदी–दोहार्थ–हे राजा! यह भारी शिव का धनुष तुमसे नहीं चढ़ेगा, अपनी ओर देखकर चुपचाप बैठ जाओ॥१॥ राजा बोला–अरे बन्दी! तू वृथा क्यों बकता है तब संसार जानता है मेरे बल के सामने शिव का धनुष क्या है॥२॥ बन्दी–हे राजन्! तब मेरी बात नहीं मानी अब समझे? अब मुख छिपाकर बैठ जाओ तुम्हें देखने से लाज लगती है॥३॥

और के उठने पर

बन्दी–जानबूझकर मत करो, साहस नृपति सुजान ।
यह शंकर को चाप है, गिरिते गरुअ महान ॥४॥
राजा–अरे भाट क्यों बकि रह्यो, लखत न मो भुजदण्ड ।
एकपलकमें करहूँ लख, शिवधनु के सौ खण्ड ॥५॥

जब न उठा तब

बन्दी–धनुष चढ़ावन को गये बड़े वीर बन आप ।
बहुत चढ़ायौ जाहु अब, बैठ रहो मुख ढांप ॥६॥

और के उठने पर

बन्दी–जाहु न तुम शिवधनुष ढ़िग, सुनो वचन भूपाल ।
इहि धनुके नहिं योग तुम, जगत विदित विकराल ॥७॥
राजा–वृथा न बक रहु चुप अरे, निपट अजान गँवार ।
देख धनुष के खण्ड मैं, अबहीं करूं हजार ॥८॥

जब न उठा तब

बन्दी–देखलियो बल लखी रजाई । बैठजाहु अब तुम ह्वै राई ।।१।।

इति क्षेपक

राजन्! आप चतुर हो, जानबूझकर साहस मत करो, यह शिव धनुष पर्वत से भी महाभारी है।।४।। राजा-अरे भाट! तू क्यों बकता है मेरे भुजदण्ड नहीं देखता, एक पलक में शिव धनुष के सौ खण्ड कर दूंगा।।५।। बंदी-आप तो बड़े वीर बनकर धनुष उठाने गये थे सो बहुत चढ़ाया जाओ अब मुख ढ़ककर बैठ जाओ।।६।। हे राजन्! तुम शिव के धनुष के समीप मत जाओ वचन मानो यह धनुष जगत् विदित विकराल है। तुम इसके योग्य नहीं हो।।७।। राजा-अरे मूर्ख गँवार भाट वृथा मत बकै, देख मैं धनुष के अब ही हजार खण्ड करता हूं।।८।। बंदी-बल और वीरता राजापन देख लिया, अब जाओ तुम चुप बैठ जाओ।।१।।

इति क्षेपक

तमककर ताककर तककै शिव का धनुष धारण करते हैं उठता ही नहीं अनेक भांति से बल करते हैं।।२।।

दोहा–तमकि धरहिं धनु मूढ नृप, उठै न चलहिं लजाय ।
मनहु पाय भट बाहुबल, अधिक गरुआय ।।३५।।

भूप* सहसदश एकहि बारा । लगे उठावन टरै न टारा ।।१।।
श्रीहत भये हार हियराजा । बैठे निज निज जाय समाजा ।।२।।
नृपन बिलोकि जनक अकुलाने । बोले वचन रोष जनु साने ।।३।।
जनक–द्वीपद्वीप के भूपति नाना । आये सुनि हम जो प्रण ठाना ।।४।।
देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रणधीरा ।।५।।

दोहा–कुवरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अतिकमनीय ।
पावनहार विरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय**।।३६।।

---

*छप्पय–बुधिबल विक्रम विजय बड़ापन सकल विहाई ।
हारि गये हिय भूप बेठि शीशन औंधाई ।।
हसहिं सबै परलोग बलगि यश आपन खोयो ।
पंजा प्रथम डबोरि नीच शिर करि अब रोयो ।।
जे तजी विचार पहिले मनुज करत काज अतुरायकै ।।
ते इन मतिमन्द महीप सम सरवस जात गँवायकै ।।१।।

**कवित्त–दिग्गजन काननलौं कीरति करनहार राजन समाज में न कोई वीर साचा है।

दोहार्थ–जिस समय मूढ़ राजा तमककर धनुष धारण करते हैं जब वही नहीं उठता तो लजाकर चलते हैं मानो भटों की भुजाओं का बल पाकर अधिक अधिक भारी होता जाता है।।३५।। चौ० दशसहस्त्र राजा एक ही बार उठाने लगे वह टारे से नहीं टरता।।१।। राजा हारकर श्रीहत हो गये अपनी अपनी समाजों में जा बैठे ।।२।। राजों को देखकर जनक अकुलाये और क्रोध के साने वचन बोले।।३।। कि, अनेक द्वीपों के राजा हमारे प्रण को सुनकर आये।।४।। देव दैत्य मनुष्यों का शरीर धारण करके आये तथा और भी रण में धीर धरनेवाले अनेक वीर आये।।५।। दोहार्थ–कुमारी की मनोहारिणी बड़ी विजय है और कीर्ति भी बड़ी कमनीय है। इसका पानेवाला वा चापभंजन करनेवाला मानो विधाता ने दूसरा रचा ही नहीं है।।३६।।

कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न शंकर चाप चढ़ावा ।।१।।
रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलभर भूमि न सके छुड़ाई ।।२।।
अब जनि कोउ भाखै भट मानी ।वीर विहीन मही मैं जानी ।।३।।
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊं । कुमरि कुमारि रहो काकरऊं।।४।।
जो जनत्यंउ विनु भट भुई भाई ।तो प्रणकरि करत्यों न हँसाई।।५।।
तजहु आश निज निज घर जाहू । लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ।।६।।
"सुनतहि लषण कुटिल भइ भौंहैं । रदपुटफरकत नैन रिसौंहैं ।।७।।

दोहा–कहि न सकत रघुवीर डर,* लगे वचन जनु बाण ।
नाय रामपद कमल शिर, बोले गिरा प्रमाण।।३७।।"

ल०–रघुवंशिन महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई।।१।।

चौ०–कहो क्या कीर्ति का लाभ किसी को अच्छा नहीं लगा जो किसी ने शंकर का धनुष नहीं चढ़ाया।।१।। हे भाई! चढ़ाना तोड़ना तो एक ओर रहा तिलभर भी भूमि को न छुड़ा सका।।२।। अब कोई अपने को योद्धा मत कहना, मैंने जाना कि पृथ्वी पर कोई वीर नहीं रहा।।३।। जो प्रण

–जाहु जाहु सबै भूप भौन को भले ही चले मोदित मजे में मौज कीजै पौढ़ि माचा है ,
रघुराज आज वसुधा में कोई वीर हो तो पूरत हमारो प्रण धर्म को न काचा है ।
ताते असलागै भैया धनुष तोरैया वीर–कुंवरि बरैया न विरंचि विश्वराचा है ।।१।।

*सवैया–बैठो दुजान मनौ मृगनायक श्रीरघुनायकके दृग देखै ।
कंपत गात न आवत बात अघात अमर्ष उठयो उर शेखै ।
श्रीरघुराज कमानसी भौंह लखैं तिरछोह विदेह विशेखै ।
रामकी भीतिसों भाषि सकै नहिं राखि सकै नहीं रोष आलेखै ।।१।।

छोड़ूं तो सुकृत जाता है कुमारी क्वांरी रहै तो मैं क्या करूं।।४।। जो जानता कि भूमि पर कोई वीर नहीं रहा तो प्रण करके हँसी न कराता।।५।।। अब आशा छोड़कर अपने अपने घर जाओ। विधाता ने जानकी का विवाह नहीं लिखा है।।६।। यह सुनते ही लक्ष्मण की भौहैं टेढ़ी हुई, होंठ फड़कने लगे, नेत्रों में रिस छा गया।।७।। दोहार्थ–रघुवीर के डर से कुछ कह नहीं सके, पर वचन बाणों के समान लगे। रामपदकमल में शिर नवाकर प्रमाण वाणी बोले।।३७।। चौ०–लक्ष्मण बोले-रघुवंशियों में जहां कोई होता है उस समाज में ऐसा कोई नहीं कहता।।१।।

कही जनक जस अनुचित वानी । विद्यमान रघुकुलमणि जानी ।।२।।
सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू ।।३।।
जो राउर अनुशासन पाऊं । कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं ।।४।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक इव तोरी ।।५।।
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना ।।६।।
नाथजानि अस आयसु होऊ । कौतुककरौं विलोकिय सोऊ ।।७।।
कमलनाल इमि चाप चढ़ावौं । शतयोजन प्रमाण ले धावौं ।।८।।
दोहा–तोरौं क्षत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बलनाथ ।।
जो न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनुहाथ ।।३८।।
लषणसकोप वचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ।।१।।
सैनहि रघुपति लषण निवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ।।२।।

जैसी अनुचितवाणी जनकजी ने रघुकुलमणि के विद्यमान होते कही।।२।। हे भानुकुलकमलदिवाकर मैं स्वभाव से कहता हूं अभिमान से नहीं।।३।। जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंद के समान ब्रह्माण्ड को उठाऊं।।४।। कच्चे घड़े के समान इसको तोड़कर मेरु को भी मूली के

---

* कवित्त–अरुण नयन जब लषण बखाने वैन सिय हिय प्राची मुख सूर प्रकटाने हैं ।
लोकपाल माने मोद सुकवि बखाने यश मिथिला नगरवासी वीरवर जाने हैं ।।
रघुराज मंदमंद मृदुमुसक्याने मन विश्वामित्र पाणि पीठि फेरे सुखसाने हैं ।
मिथिलाधिराज सकुचाने त्यों डराने भूप बहरी ससाने जल खगसे सकाने हैं ?
दोहा–लषण वचन की धाकसों, परचो समाज शनाक ।
जिमि सिंधुरगण बाक में, परै सिंह की हांक ।।१।।

सवैया–पूरब जो जनत्यों जगती में नहीं है कहुँ वर वीर प्रतापी ।
क्षत्रिन की करि क्षय भृगुनाथ नहिं पुनि क्षत्रिन को क्षिति थापी ।
श्रीरघुराज सुनो सबराज प्रणै करतो नहिं सत्य अलापी ।
क्यों धरतो उपहास शिरै करि पूरण पुण्य कहौं त्यों न पापी ।।१।।

समान खण्ड खण्ड कर दूं।।५।। तुम्हारे प्रताप और महिमा से हे भगवन्! यह पुराना धनुष क्या वस्तु है।।६।। हे नाथ! ऐसा जान के आज्ञा हो जो मैं कौतुक करूं सो देखिये।।७।। कमलनाल के समान चाप को चढ़ाकर सौ योजन पर्यन्त ले जाऊं।।८।। दोहार्थ–हे नाथ! तुम्हारे प्रताप और बल से इसे छत्रदण्ड के समान तोड़ सकता हूँ जो ऐसा न करूं तो प्रभु के पद की सौगन्ध है फिर धनुष हाथ में न लूं।।३८।। चौ०–लक्ष्मण ने जब क्रोध से वचन कहे तो पृथ्वी डगमगाई, दिग्गज डोल गये।।१।। सैन से ही राम ने लक्ष्मण को प्रेम से निवारण कर निकट बैठाया।।२।।

विश्वामित्र समय शुभजानी । बोले अतिसनेह मृदु बानी ।।३।।
वि०–उठहु राम भंजहु भवचापू । मेटहु तात जनक परितापू ।।४।।
सुनि गुरु वचन चरण शिरनावा । हर्षविषाद न कछु उर आवा ।।५।।
ठाढ़भये२ उठि सहज सुभाये । ठवनि युवा मृगराज लजाये ।।६।।

(रामचन्द्र को देखकर जानकीजी की माता बोली)

रानी३-सखि सब कौतुक देखनहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ।।७।।
कोउ न बुझाइ कहै नृपमाहीं । यह बालक अस हठ भल नाहीं ।।८।।
रावणबाण छुवा नहिं चापा । हारे सकल भूप करिदापा ।।९।।

विश्वामित्र अच्छा समय जानकर सनेह से कोमल वाणी बोले।।३।। हे राम! उठकर शिव का

---

*सवैया–भूपति वैन विचारि मुनीश मनैमन श्री जगदीश सम्हारी ।
मंजुल मंदहि मंदहि वैन कह्यो रघुनंदहि नैन निहारी ।
श्रीरघुराज सुराज समाजमें लाज भई सब गै हिय हारी ।
लाल उठो यहि काल तुम्हीं मिथिलेश कलेश को देहु निवारी ।।१।।

२ कवित्त–ठाढ़े मंच सहज सुभाव अंगिराय नेक रघुकुल कमल दिवाकर उदै भये ।
अभिमानी भूपति उलूकहीसे मूकमुख वीरवर तारागण झलमल ह्वै गये ।
ह्वै गई व्यतीत त्यों विदेह दुचिताई निशा कोक कोकनद पुरवासी सुखसों छये ।
रघुराज परम प्रताप ताप पाय देव दीह दुख तोम तम तुरत बिदाभये ।।१।।
उतरि चलो हैं मंदमंद उच्च मंचहीते मंदरते मानो कढ़ि आयो मृगराज है ।
मानो महामत्त मंद चलत मतंग मग मूर्तिमान मंड्यो मानो बीर रसराज है ।
भूमि भरतारनको तारनसों तेज हरि आवत उदैगिरिते मानो दिनराज है ।
काग करीबेकोमन लाज भरी नयननमें राजन समाजमध्य राजै रघुराज है ।।२।।

३ सवैया–एहो सखी अवधेश कुमार बड़ो सुकुमार लगै सुठिलोना ।
कौशिलावारो तथैव हमारो विलोकि कै कोई करे नहिं टोना ।।
तू चलिकै रघुलालके भाल विशाल में दैदे सुनील डिठोना ।
काजकियो मुनि को रघुराज पै मोहि तो लागै मरालसो छोना ।।१।।
कौन समाज में श्रीरघुराजहि ल्यावो सरासन भंग करावन ।।

चाप भंजन करो और पिता जनक का दुःख मेटो।।४।। रघुनाथ ने गुरु के चरणों में शिर नवाया, मन में हर्ष विषाद कुछ नहीं आया।।५।। सहज स्वभाव से उठ खड़े हुए उस युवाचाल से सिंह भी लज्जित होते थे।।६।। चौ०—रानी—हे सखि! जो हमारे हितू कहाते हैं वह सब कौतुक ही देखनेवाले हैं।।७।। कोई राजा से यह बात समझाकर नहीं कहता यह बालक हैं इनसे हठ करना भली नहीं।।८।। रावण बाणासुर ने चाप न छुवा और सब राजा अभिमान कर हार गये।।९।।

सो धनु राजकुँवर कर देहीं । बालमराल किमंदरलेहीं ।।१०।।
भूपसयानप सकल सिरानी । सखिविधिगतिकछुजातनजानी।।११।।
"बोली चतुरसखी मृदुबानी । तेजवन्तलघुगनिय न रानी ।।१२।।
सखि—रविमण्डलदेखतलघुलागा । उदय तासुत्रिभुवनतम भागा ।।१३।।
कहँ कुम्भज कहँ सिंधु अपारा । सोखेउ सुयश सकल संसारा ।।१४।।
दोहा—मन्त्रपरम लघु जासुवश, विधि हरिहर सुरसर्व ।
महामत्तगजराजकहँ, वशकर अंकुश खर्व ।।३९।।
देवि तजिय संशय अस जानी । भञ्जब धनुषराम सुनरानी ।।१।।

वही धनुष राजकुमार के हाथों में देते हैं भला छोटे हंस के बच्चों से मन्दरपर्वत उठता है क्या?।।१०।। राजा की चतुराई सब जाती रही हे सखि! विधाता की गति जानी नहीं जाती।।११।। तब चतुर सखी कोमल वाणी बोली हे रानी! तेजवन्त को लघु मत गिनो।।१२।। देखो सूर्य का मंडल देखने में लघु लगता है उसके उदय होते ही त्रिभुवन का अंधकार नष्ट हो जाता है।।१३।। कहां अगस्त्यजी और कहां अपार समुद्र उसको सोख लिया, यह सुयश संसार में विदित है।।१४।। दोहार्थ—मन्त्रों में भी परमलघु मन्त्र (ॐ) है इसके वंश में विधि हरि हर सब देवता हैं, महामतवाले हाथी को छोटा सा अंकुश वश कर लेता है।।३९।। चौ०—हे देवि! ऐसा विचार कर संदेह दूर करो। हे रानी! राम अवश्य धनुषभंग करेंगे।।१।।

—चूमन लायक है यह आनन मो मन हते कलेऊ करावन ।।
काहे दया मुनिके उपजै मिथिलेशै कोऊ नहीं जात बुझावन ।
सो धनु तोरन जात लाल जु छुया नहिं वाण बली अरु रावन ।।२।।
कोइ कहै नहिं कंत बुझाय भली हठ रावरी है यह नाहीं ।।
जानकी योग्य मिल्यो वर भाग्यन छोड़ प्रणै वहि देहिं विवाही ।
जे न करैं लहि औसर कारज ते जन पाछे परे पछिताही ।
श्रीरघुराज कहौ तुमहीं सति बाल मराल कि मेरु उठाहीं ।।३।।
तीरथ जाय सुपात्र को पाय न दान को देइ भरो अभिमाने ।
संगर शत्रु को पाय न मारत आरत पाय करैं नहिं त्राने ।
श्री रघुराज सुता वर योग जे पाय न व्याहत वेद विधाने ।
तू समुझाय कहै पियको जन चारि कहावत औनि अयाने ।।४।।

* कवित्त—मानो सत्यवानी महारानी वड़िज्ञानी तुम कामले कुसुमधनु विश्व वश कीन्हो
है लगै लघु मंडल दिवाकर उदोत काल परम प्रकाश जग तुम हरिलीन्हो है ।
मंत्रलघु होत वश होत सुर सर्व ताके अंबुनिधि कुंभज अंचैके पुनि दीन्ह्यो है
जह्नु करि गगपान प्रगट किय काननते रघुराज रामै बलहीन कस चीन्ह्यो है ।।१।।

तब रामहि विलोकि वैदेही । सभय हृदय विनवति जेहि तेही ।।२।।
सीता मनहीमन मनाय अकुलानी । होहु प्रसन्न महेश[1] भवानी[2] ।।३।।
करहु सफल आपनि सिवकाई । करिहित हरहु चाप गरुआई ।।४।।
गणनायक[3] वरदायक देवा । आजु लगे कीन्हीं तव सेवा ।।५।।
बार बार विनती सुनि मोरी । करहु चाप[4] गुरुता अतिथोरी ।।६।।
कहँ[5] धनुकुलिशहु चाहि कठोरा । कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा।।७।।

तब राम को देखकर जानकी सभय हृदय से जिस तिस की वंदना करती हैं।।२।। मन ही मन में मनाकर व्याकुल हुई हे महेशभवानी! मेरे ऊपर प्रसन्न हो।।३।। अपनी सेवकाई सफल करो हितकरके चाप की गुरुता हरण करो।।४।। हे गणनायक! वरदायक देवता आज ही के निमित्त तुम्हारी सेवा की थी।।५।। बारंबार मेरी विनय सुनकर चाप की गुरुता अत्यन्त लघु करो।।६।। कहां तो धनुष वज्र से भी कठोर और कहां श्यामल मृदुगात किशोर अवस्थावाले।।७।।

---

१ सवैया–हे करुणाकर शंभु सुजान करी तुम्हारी अबलों सेवकाई ।
आय पऱ्यो अब काम सुई परि पूरण कीजिये मोरी सहाई ।
श्रीरघुराज के पंकज पाणि तिहारे शरासन की गुरुताई ।
मूलहुते पुनि फूलहुते तिमि तूलहुते न लहै अधिकाई ।।१।।

२ सवैया–योग प्रदायिनि भोग प्रदायिनि रोगहु शोग नशायिनि जानी ।
तू करुणा कृपा छोहकी मूरति मोंहि दई जयमाल निशानी ।।
ताकी करौ सुधि आयो समै अब श्रीरघुराज मनोरथदानी ।
साँवरे की परै भाँवरी हैं अवलब तुही जगदंब भवानी ।।१।।

३ सवैया–जय शिवनन्दन दोष निकंदन वन्दन योग महेश उदारे ।
जय गणनायक जय वरदायक शुद्ध सतोगुण के अवतारे ।
आपके बाप को चड को दंड करी लघु दंडसो मोहि निहारे ।
श्रीरघुराजको राज समाज में देखै पिता धनुखंड को डारे ।।१।।

४ रागदेश–मैया मोको वैरन धनुष भयोरि । जन्मजन्म को परो शरासन सड़घुन क्यों न गयोरी ।। देशदेश के भूपति आये तिलभर कछु न टऱ्योरी । कहा कहौं मैं माई बाप को हो तेइ विष न दियोरी ।। उठे राम गुरु आज्ञा पाई सुमन समान लियोरी । तुलसीदास प्रभु के करपर से खण्डो खण्ड भयोरी ।।१।।

५ कवित्त–कहा कि शैल ते अति कोमल कमल कर कहां कोटि कुलिश कोदंड या कठोर है।
गडन चहति पांय पांखुरी पुहुपहूँकी ऐसे सुकुमारको न योग ऐसे जोर है ।।
रघुराज पकजकी जरि नहिं वैधे हरि, धरौं किमि धीर पावे पीर मन मोह है ।
अवध किशोर पग सेवनके पाइबे में, शम्भुधनु सत्य अब तोरई निहोर है ।।१।।

विधि केहिभाँतिधरौ मन धीरा । सिरससुमन किमिवेधहिं हीरा ।।८।।
अहह तात दारुण हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ।।९।।
सकल*सभाकी मति भइ भोरी । अबमोहिंशंभुचापगति तोरी ।।१०।।
निज जड़ता लोगन परडारी । होउ हरुअ रघुपतिहि निहारी ।।११।।
तन मन वचन मोर प्रण साँचा । रघुपतिमद सरोज मनराँचा ।।१२।।
तो भगवान सकल उरवासी । करहिं मोहिं रघुपति की दासी ।।१३।।
जेहि के जेहिपर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू ।।१४।।
प्रभुतन चितै प्रेमप्रण** ठाना । कृपा निधान राम सब जाना ।।१५।।
सियहि विलोकित केउधनु***कैसे । चितवगरुड़लघुव्यालहि जैसे ।।१६।।

हे विधाता! किस प्रकार से धीरज धारण करूं, हीरा कहीं सिरस के फूल से बींधा जाता है।।८।। हे तात! तुमने बड़ी कठिन हद ठानी है अपनी हानि लाभ नहीं समझते हो।।९।। सब सभा की मति भोरी हुई। हे शिवचाप! अप मुझे तुम्हारी गति है।।१०।। अपनी जड़ता लोगों पर डालकर राम को निहार हलके हो जाओ।।११।। जो तन मन वचन से मेरा प्रण सत्य है राम के चरणकमल में मन रच रहा है।।१२।। तो सबके हृदय की जाननेवाले भगवान् मुझे रघुपति की दासी करेंगे।।१३।। जिसका जिस पर सत्य सनेह होता है निःसन्देह वह उनको मिलता है।।१४।। प्रभु की ओर देखकर यह प्रेम का प्रण ठाना कृपा निधान राम ने सब जाना है।।१५।। सीता को देखकर यह धनुष को ऐसे ताका कि जैसे लघुसर्प को गरुड़ ताकता हो।।१६।।

---

* कवित्त–सकलसभा की भइ भोरी मति मोरी बार, शंभु धनु लागा जब आश एकतोरी है
जड़ता जननपै पवारेना निहारे मुख, हरू होई हेरि रामै करि तिन थारी है ।
देखत सकल सुरमुनि रघुराज आज, जनके निवारे नहिं करि बरजोरी है ।
पाउं दुखद्वन्द्व की अनंद छल छंद छोड़ि, हौं तो भई भानुकुल चन्दकी चकोरी है।।१।।

**कवित्त–गुरुजन लाज रजनी को पाय कंज मुख, मुकुलित रुकिगै मलिंदी सिपवानी है ।
श्रोण नैन कोनहीलौ आसुको निवास होत, जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है ।।
अति अकुलानी उर पूरण प्रतीति आनी, पूरव की प्रीति जानी पुनि सकुचानी है ।
रघुराज ठानी प्रण सुमिरि भवानि मन, जाकीसी जानकीसै जाननकी हौं जानी है।।१।।

***सवैया–गुरुलोग कि लाज गड़े गड़े गौगत जात अड़े अड़े जैननखों ।
मनमोद मढ़े मढ़े धीररसै नहिं बोलै वढ़े वढ़े बैननसों ।
रघुराज खुशीसो यथा खगराज विलोकत व्यालहि सैननसों ।
चितयो तिमिचाप चढे चढ़े लाल बड़े बडे बारिज नैननसों ।।१।।

दोहा–लषणलखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हरकोदण्ड ।
पुलकगात बोले वचन, चरणचाप ब्रह्मण्ड ।।४०।।

ल०–दिशि*कुंजरहुकमठअहिकोला । धरहुधरणिधरिधीरनडोला ।।१।।
राम चहहि शंकरधनु तोरा । होहु सजगसुनि आयसुमोरा ।।२।।
चाप समीप राम जब आये । नरनारिन सुर सुकृत मनाये ।।३।।
गुरुहि प्रणाम मनहिं मन कीन्हा । अतिलाघवउठायधनुलीन्हा ।।४।।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।।५।।
तेहिक्षण** मध्यराम धनु*** तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ।।६।।

दोहार्थ–जब लक्ष्मण ने देखा कि रामचंद्र ने शिवजी का धनुष ताका, तब पुलकित शरीर हो चरण से ब्रह्मांड को दबाय वह वचन बोले।।४०।। चौ०–ल० हे दिक्पाल, कूर्म, शेष, वाराह! तुम सब पृथ्वी को धारण किये रहो धीर धरना डोलना नहीं।।१।। राम शिवधनुष भंग करना चाहते हैं, मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ।।२।। जब श्रीराम धनुष के समीप आये तब नर नारियों ने अपने देवता और सुकृतों को मनाया।।३।। गुरु को मन ही मन में प्रमाणकर बड़ी लघुता से धनुष उठा लिया।।४।। लेकर उसको बड़े वेग से खैचा, किसी ने न देखा, सब खड़े रहे।।५।। उसी क्षण में राम ने धनुष तोड़ दिया और सब भुवन में कठोर ध्वनि छा गई ।।६।।

छन्द–भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजितज मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोलमहि अहि कोल कूरम कलमले ।

---

* छन्द–भाषि अस लषण संकल्प को सुरन सब वैठि तहँ आपहू सावधानै ।
चरणते चापि ब्रह्मांड मंडल सवल प्रवल अहिपति कमँडल प्रमानै ।।
गगन मग थम्बि रहे सूरतारा शशी सिद्धभागे भभरि चपल जानै ।
परचो खरभर भुवन भगे भरभर अमर चरित रघुराज को कोउ न जानै ।।१।।
कवित्त–कच्छप वाराह शेष भूमि के धरनहार, आज वसुधा को सब भांति मान गहियो ।
सागर और शैल देवी सब भूचर जो, शंभुकेर चापको अखण्डवेग सहियो ।
खेचरसुरसिद्धमुनिराज यक्षराज आदि, जेते बलवान वीर हिये धीर लहियो ।
तोरत हैं राम शंभु चापको पलमाहिं, अरे दशौंदिग्पालसावधान रहियो ।।१।।
** क०–घआयो चाप भंग समै सबहि जनायो ढग मानी नृप हि तबे धरकि धरकि उठे ।
रसिक बिहारी नेहबारीं पुरनारिके कंचुकी सुबन्द आप तरकि तरकि उठे ।।
उर उमँगे हैं तूप कौशिल लषण आदि राम भुजदण्ड दोऊ थरकि थरकि उठे ।
जनक किशोरी जूके सखिन समेत दोउ लोचन सफल चार फरकि २ उठे ।।१।।
***कवित्त–सहज सुभाय कर कमल लगाय मनजूषाको उघारि दीन्ह्यो झमकि झडाकदै ।
ताते ऐंचि शंभुको शरासन प्रयास नहिं साजत प्रत्यंचा कोन कड़के कड़ाक दै ।

सुर असुर मुनि कर कानदीन्हें सकल विकल विचारहीं ।
कोदण्ड भंजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ।।१।।

(धनुष टूटने के समय बड़ा शब्द होता है सब चौंकते हैं)

प्रभु दोउखण्डचाप महि डारे । देख लोग सब भये सुखारे ।।१।।

छन्दार्थ-भुवन में घोर कठोर शब्द भर गया, सूर्य के अश्व मार्ग छोड़कर चलने लगे वा धनुष टूटने के स्थान में सूर्य के अश्वों की गति में भेद पड़ा कारण कि बारह राशियों में सूर्य की गति है दिग्गज चकराने लगे, भूमि डोल गई, शेष, वराह, कूर्म डोल गये, सुर, असुर, मुनियों ने कानों में अंगुली दी और विकल होकर विचारने लगे, तुलसीदास कहते हैं राम ने धनुष तोड़ा ऐसा सब जय जयकार का वचन उच्चारण करने लगे।।१।। चौ०-जब प्रभु ने चाप के दो खण्ड भूमि में डाल दिये तब लोग देखकर प्रसन्न हुए।।१।।

शतानन्द तब आयसु दीन्हा । सीता गमन राम पहँ कीन्हा ।।२।।
कर सरोज जयमाल सुहाई । विश्वविजय शोभा जनु छाई ।।३।।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ।।४।।

रघुराज कौतुकसों ऐंचो चाप काननलों चंचलासी चौंध दरी चखन चड़ाक दै
अवध किशोर बाहु जोरको न थोरो सह्यो टूटिगों त्रिनेत्र धनु तड़कि तड़ाक दै ।।१।।
छन्द-उठत २ महि खूप लटपटत सब सिंधु सघटत जल मेल थल छूटिगो ।
शेष फण फटत तक वासहा रटत बाराह वल घटत युग डाढ सो टूटिगो ।।
दंत चटचटव महि शैल युग छटत दिग्दन्त गण हटत भल कुम्भथल फूटिगो ।
दैत्य लुटि लुटत अभिमानते छुटत कोदण्ड के टुटत ब्रह्माण्ड सो टूटिगो ।।१।।
*कवित्त-कारा मेहरंग व्योम भानुके तुरंग भाजे भाजे भये भीतिके अरूझे जाय तारामें ।
तारा टूटि टूटि परे अवनि अपारा पारा विंदसे विराजै परिगे खभारा में ।।
भारा भरे लाजहीके ही मैं सवै मानिहारा हारा गये हरिनके काच के आकरामें ।
कारागार द्वाराके किवारा खुले जाने देव देवपति माने रघुराजै रक्षकारामें ।।१।।
चौंकि उठचो चारिमुखचितवत चारों ओर चन्द्रचूडचेत्यों चित चखन उचायके ।
गगनते गिरें गोरवान जे विमाननमें क्षोणिको छुवत अस उंचें अकुलायके ।।
रंगभूमि भूपति समाज नर नारि जेते एकै वार गिरिगे प्रचण्ड शोर पायके ।
रघुराज लषण विदेह मुनि ठादे रहे राम जब तोरचो शम्भु चाप को चढ़ायके ।।२।।
चिक्करत दिग्गज पराने पुहमी को छोड़ि गिरिगे पतंग से विहंग आसमानके ।
टूटि टूटि गिरगै उतंग शृंग शैलन के गैलन वटोही भोग वासी भै मकानके ।।
बन्दी करि तरल तुरंग तुंग तोयनिधि है गये तडागसे न वेग मारुतानके ।
रघुराज बाहुबल वारिधि में बूड़े वीर शंकर जहाज चाप उढ़ै जे अज्ञानके ।।३।।

सुनत युगल करमाल* उठाई । प्रेम विवश पहिराइ न जाई ।।५।।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली । सिय जयमाल रामउर मेली***।।६।।**
सखी करहिं प्रभुपद गहु सीता । करत न चरण परस अतिभीता ।।७।।

तब शतानन्द ने आज्ञा दी और सीता ने राम के निकट गमन किया।।२।। कमलरूप हाथों में जयमाला शोभायमान है मानो विश्व के विजय की शोभा छा रही है।।३।। तब चतुर सखी ने समझाकर कहा सुन्दर जयमाला पहराओ।।४।। सुनते ही दोनों हाथों में जयमाला उठाई परंतु प्रेम के मारे पहराई नहीं जाती।।५।। तब यह छबि देखकर सखी गाने लगीं सीता ने राम के गले में जयमाला डाल दी।।६।। सखी कहती है हे सीता! प्रभु के चरणों को प्रणाम करो जानकी भय से उनके चरणों को नहीं छूती।।७।।

दोहा–गौतम तिय गति सुरति करि, नहि परसति पदपानि ।
मनविहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ।।४१।।

इति अष्टम दर्शन

---

* कवित्त–धनाक्षरी–आई रघुचन्द ढिग जनक किशोरी गोरी देखौ खण्ड २ तहँ शम्भुधनु बंकको । रसिकविहारी ऐसो आनन्द सिया के चित्त जैसे वर वित्त पाय होवे सुख रंकको ।। दोउकर उमगि उठाय जयमाल लीने कवि हुलसाये हेरि उपमा उतंकको । क्षीरसिंधुगहिकै सनालयुग कंजनते मुक्तमाल देत मानो पूरन मयंकको ।।१।। सोहें सिय सहित उमंगसखी साजे अंग भूषण सुरंग रंग वसन विशाल सों । करि कर ऊँचे दोऊ ठाढ़ी है विदेहसुताकैसे कंठ डारें माल छोटी रघुलाल सों रसिकविहारी तिहि औसर निहारी छबि उपमा विचारी सो उचारी हैं उतालसों । कनक लताकी नववल्ली है अनूप कढ़ि ऊरध उठी हैं मानोमिलन तमालसों।।२।।

राग केदारा–लेहुरी लोचन को लाहु । कुँवर सुन्दर सावरो सखि सुमुखि सुन्दर बाहु ।। खंड हरकोटण्ड ठाढ़े जानुलबितबाहु । रुचिर उर जयमाल राजत देत सुख सबकाहु ।। चितहित सहित नखशिख अंग अंग निबाहु । सुकृत निज सियराम रूप विरोच मति हि सराहु ।। मुदितमन वरदान शोभा उदित अधिक उछाहु । मनो दूर कलंक रवि शशिसमर सूध्यो राहु ।। नयन सुखमा अयन हाथ सरोज सुन्दर ताहु । वसत तुलसीदास उर पुर जानकीको नाहु ।।१।।

** कवित्त–परिपरि पांय जाय गिरिजानिहोरि नित्य शंकरमनाये पूजे गणपति भावसे । दीने दान विविध विधान जप कीन्हें बहुनेम व्रतलीने सिय सहित उछावसे ।। रसिक बिहारी मिथिलेश की दुलारी दृढ प्रीति उरधारी अवधेशसुत चाव से जनककिशोरी के प्रताप से पिनाकटूटों टूटो है न जानौ रामबल के प्रभावसे ।।२।।

***कवित्त धनाक्षरी–अतिहि उताल है निहाल रघुलाल कंठ मेली जयमाल भयो आनंद अपारो है। रसिकविहारी श्याम गोरी नवजोरी हेरी सब नर नारी निज प्राणधनवारो है । पहिराई दुहुँ छाई सो अपार शोभा ताछिन अनूप रूप रुचिर निहारो है । धारैतिय वेष मंजु मुदित वसन्त मानो आज ऋतुराजपै प्रसून जाल डारो है ।।१।।

दोहार्थ–इन चरणों को छूकर गौतम की स्त्री उड़ गई थी ऐसा जानकर चरण नहीं छूती, यह अलौकिक प्रीति देखकर प्रभु मन में हंसे।।४१।।

इति अष्टम दर्शन

अथ नवम दर्शन

(परशुराम आगमन)

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूरकुपूत मूढ़मन माषे ।।१।।
लेहु छुड़ाय सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृपबालक दोऊ ।।२।।
तेहि अवसर सुनि शिव धनुभंगा । आये भृगुकुल कमल पतंगा ।।३।।
देखि महीप सकल सकुचाने । बाझ झपट जनु लवा लुकाने ।।४।।
गौरशरीर भूति भलिभ्राजा । भालविशाल त्रिपुंड्र विराजा ।।५।।
शीशजटा शशिवदन सुहावा । रिसवस कछुक अरुण हुइ आवा ।।६।।
वृषभकंद उरबाहु विशाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ।।७।।
कटि मुनिवसन तूण दुइ बांधे । धनुशरकर कुठार कलकांधे ।।८।।

टीका–तब सीता को देखकर राजा अभिलाषी हुए और क्रूर कपूतों ने मन में बड़ा अभिमान किया।।१।। कोई बोले–जानकी को छुड़ाओ और कोई बोले राजा के दोनों बालकों को धरि बांधो।।२।। राजाओं के इस प्रकार विवाद हो रहे थे कि उसी समय शिवधन भंग हुआ सुन भृगुकुलकमलदिवाकर परशुरामजी आये।।३।। सब राजा देखते ही सकुचा गये जैसे बाज की झपट मे चिरैया भागती है।।४।। गोरा शरीर भली विभूति विराजमान हो रही है, बड़ा मस्तक त्रिपुण्ड़ विराज रहा है।।५।। शिर पर जटा चन्द्रमा सा मुख विराजमान है, रिस के कारण कुछ लाल हो गया है।।६।। वृषभ के समान कंधे हृदय और भुजा विशाल है, सुंदर अनेक माला और मृगछाल धारण किये हैं।।७।। कमर में मुनिवसन और दो तरकस बँधे हुए धनुषबाण हाथ में अच्छा कुठार कंधे पर है।।८।।

दोहा–सन्तवेष करणी कठिन, वरणि न जाय स्वरूप ।
धरि मुनितनु जनु वीररस*, आये जहँ सब भूप ।।४२।।

---

* कवित्त–दुराधर्ष समर सहर्ष उतकर्ष ओज अतिहीं अमर्ष भरो कंध में कुठार है ।
विक्रम विदित त्यों त्रिविक्रमको अंशविप्र क्षत्रीकुलछंद्यो क्षिति इकइस वार है ।
रघुराज राज राज सहित समाज देखे शंकर को शिष्य हिमाचल के अकार है ।
कर्त्ता शत्रुभीर भग्न पेखि भागे भीरु नग्न अग्निसों उदग्र जमदग्नि को कुमार है ।।१।।

देखत भृगुपति वेष कराला । उठे सकल भै विकल भुआला ।।१।।
पितुसमेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दण्ड प्रणामा ।।२।।
जनक बहोरि आय शिरनावा । सीय बुलाय प्रणाम करावा ।।३।।
आशिष दीन्ह सखी हरषानी । निज समाज ले गई सयानी ।।४।।
विश्वामित्र मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ।।५।।
रामलषण दशरथ के ढोटा । दीन्ह अशीश जानि भलिजोटा ।।६।।

दोहा—बहुरि विलोकि विदेहसन, कहहु कहा अतिभीर ।
पूछत जान अजान जिमि, व्यापेउ कोपशरीर ।।४३।।

दोहार्थ—सन्त का सा वेष कठिन करणी है स्वरूप नहीं वरणा जाता मानो सब राजाओं के मध्य में वीर रस मुनि का रूप धारण कर आ गया है।।४२।। चौ०—परशुराम का करालवेष देख सब राजा भय से व्याकुल हो उठे।।१।। पिता के सहित अपना २ नाम लेकर सब दण्डप्रणाम करने लगे।।२।। फिर जनकजी ने आकर शिर नवाया, सीता को बुलाकर प्रणाम कराया।।३।। आशीर्वाद दिया, सखी प्रसन्न हुई और सयानी सखी अपने स्थान को लिवा ले गई।।४।। फिर विश्वामित्र आये और दोनों भाइयों को चरण सरोज में प्रणाम कराया।।५।। यह राम लक्ष्मण दशरथ के कुमार हैं, भली जोट जानकर अशीश दी।।६।। दोहार्थ—फिर देखकर विदेह से बोले कहिये यह क्या भीड़ है जानकर भी जैसे अजान होकर पूछता हो, शरीर में क्रोध छा रहा है।।४३।।

चौ०—समाचार कहि जनक सुनाये । जेहिकारण महीप सब आये ।।१।।
सुनत वचन फिर अनत निहारे । देखे चाप खण्ड महि डारे ।।२।।
अतिरिस बोले वचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष किनतोरा ।।३।।
पर०—बेग दिखाउ मूढ़ नतु आजू । उलटौं महि जहँ लगि तव राजू ।।४।।
अतिडर उतर देत नृप नाहीं । कुटिलभूप हरषे मन माहीं ।।५।।

दोहा—"सभयविलोके लोग सब, जान जानकिहि भीर ।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्रीरघुवीर ।।४४।।

राम—नाथ शंभुधनु भंजनहारा । हुई है कोइ इक दास तुम्हारा ।।
आयसु कहा कहिय किन मोही । सुनि रिसाय बोले मुनिकोही ।।

—है राज वाहन की समिज सरोषकारी कीन्ह्यो रणयज्ञ श्रुव विरचि कुठार है ।
जाकीचापभीतिनिजरीति छोडचोक्षत्रीकुलक्षितिमें क्षम की छपा भयो भिनुसार है ।
रघुराज कोशलेश साहनी के आगे खड़ौ भृगुकुलकमल दिवाकर अकार है ।
कोपित अपार मानों नयनसों करै क्षार वीर विकरार बोले बैन बार बार है।।२।।

पर०–सेवक सो जो करे सिवकाई । अरिकरनी कर करिय लराई ।।३।।
सुनहु राम जेहि शिव धनु तोरा । सहसबाहुसम* सो रिपु मोरा ।।४।।
सो विलगाइ विहाइ समाजा । नतु मारे जैहैं सब राजा ।।५।।

चौ०–जनक ने समाचार कह कर सुनाया जिसके निमित्त सब राजा आये हैं।।१।। वचन सुनकर फिर अन्त में निहारा देखा तो धनु के दो खंड भूमि में पड़े हैं।।२।। बड़े रिस से कठोर वचन बोले–कहो रे जनक! यह धनुष किसने तोड़ा है।।३।। हे मूर्ख! उसे शीघ्र दिखाओ नहीं तो जहांलो तुम्हारा राज्य है मैं भूमि उलट दूंगा।।४।। बड़े भय से राजा को उत्तर देते न बना, कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए।।५।। दोहार्थ–तब सब लोगों को सभय और जानकी पर भीर देखकर हृदय में हर्ष विषाद न करके श्रीरघुवीर बोले।।४।। चौ०–राम–हे नाथ! शिवजी का धनुषभंग करनेवाला कोई एक तुम्हारा दास होगा।।१।। क्या आज्ञा है मुझसे कहिये, यह सुनकर क्रोधी मुनि बोले।।२।। सेवक वह जो सेवकाई करे और शत्रु की करणी करनेवाले से लड़ाई करनी उचित है।।३।। सुनो राम जिसने शिव का धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।।४।। सो समाज छोड़कर अलग हो जावो नहीं तो सब राजा मारे जायँगे।।५।।

सुनि मुनि वचन लषण मुसुकाने । बोले परशुधरहिं अपमाने ।।६।।
ल०–बहु धनुही तोरेउँ लरिकाई । कबहुँ न असरिस कीन्हगुसाईं ।।७।।**
इहि धनुपर ममता* केहि हेतू । सुनि रिसाय कह भृगुकुल केतू ।।८।।**

---

*कवित्त–बोल्यो घोरघनसों घमंडभरी वैन राम मेरो नाम धरि कौन राम कहवावतो ।
सांचो गुरुद्रोही मोर कोही नहि जान्यों मोहि तोरिके पिनाक अब वदन छिपावतो ।।
कहां रघुराज आज राज राज जेठो सुत मोकी आज अरजुनसों पूरो शत्रु भावतो ।।
होई भुजदंड बल धारिके कोदंड शर तजिकै समाज अब क्यों न कढ़ि आवतो ।।१।।
**कवित्त–हौं तो तप तपत महेन्द्र शैल बैठोहुतो आपुइतेकै लियो तै कोप को सहार है ।
कान में प्रचण्ड परी वज्रपातही सी आय गुरु के कोदंड खण्डिबेकी झनकार है ।।
चौंकि उठयो चारों ओर चित्त चलि दीन्ह्यो चट उपज्यो नवीन गुरुद्रोही को हमारा है ।
कीन्ह्यो जो अकाज छांड़ि देइ सो समाज आज कौन रघुराज कोशलेश को कुमार है ।।१।।

---

*कवित्त–छोटे छोटे छोहरा छबीले रघुवंशिनके करत कलोलैं यूथ निजनिजजोरिजोरि ।
एहो भृगुनाथ चलो अवध हमारे साथ देखो तहँ कैसे चहुँ खेलत हैं कोरि कोरि ।
रसिकविहारि ऐसी अमित कमाँन सदा आनैं गहितानै एक एकन ते छोरि छोरि ।।
कोउ झकझोरैं कोऊ पकरि मरोरैं याहि खोरि खोरि नितही वहावै बाल तोरि तोरि ।।१।।
**कवित्त–तूलको रहीकै काहू फूल की रही कै मृदुमूलकीरही कै धूल सानका सजाईती ।
सांक्ष की रहीकै सांची स्वच्छ माटी लाय कांची काहू कुशल कुलालते कराईती ।।
रसिकविहारी भृगुनाथ भाषिये तौ नेक शंकर समीप या कहांते किमि आईती ।

परशु०–दोहा–रे नृपबालक काल वश, बोलत तोहिं न सँभार ॥
धनुही सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥४५॥
ल०–लषण कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥१॥
का क्षति लाभ जीर्णधनु* तोरे । देखा राम नये के भोरे ॥२॥
छुवत टूटि रघुपतिहिं न दोषू । मुनिबिनुकाजकरियकतरोषू ॥३॥
पर०–बोले चितै परशुकी ओरा । रे शठ सुनेसि स्वभाव न मोरा ॥४॥
बालकजानि** बधौ नहिं तोहीं । केवल मुनि जड़ जानेसि मोहीं ॥५॥
दोहा–मातुपितहि जनि शोच वश, करसि महीप किशोर ।
गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अतिघोर ॥४६॥
ल०–विहँसि लषण बोले मृदुवानी । अहो मुनीश महाभटमानी ॥१॥
पुनि पुनि मोहिं दिखाव कुठारा । चहत उड़ावन फूँकि पहारा ॥२॥
यहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जो तर्जनि देखत मरिजाहीं ॥३॥

मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मण हँसे और परशुराम का तिरस्कार करते हुए बोले।।६।। हे भगवन्! लरिकाई में हमने बहुत सी धनुहीं तोड़ी थी पर कभी ऐसी रिस आपने न की।।७।। इस धनुष पर ममता कैसे है, यह सुनकर परशुराम क्रोधकर बोले।।८।। दोहार्थ–रे नृपबालक! कालवश तुझे बोलने की सम्भार नहीं है और धनुही के समान यह जगत् विख्यात शंकर का भी धनुष है।।४५।। चौ०–लक्ष्मण बोले–हे देव! हमारे जान तो सब धनुष समान ही

–हौं । तो यह जानौं अनुमान तेजुकोऊ बानख्याल हेतु धनु ही मृणाल की बनाईती ॥१॥
ऐसी ही कमान बालकेलिकी रुचै तो बहु होवेंगी विदेह गेह अबही मँगाऊँ मैं ।
रसिकविहारी जो तिहारी प्रीति याहि माहि तोपै दुहूँ खण्ड खैंचि वेगही चढ़ाऊँ मैं ॥
नीकी जियभावै भृगुनाथ तो निदेश दीजै हमेकी रचाय मणि माणिक मढ़ाऊ मैं ।
जोपै तुम्हें चाहिये कहो तौ द्विजराज अबै याहुते अनोखी चोखी अमितगढ़ाऊ मैं ॥२॥
* कवित्त–जैसे कोप कीजै तैषोदोष नहिं मेरे जान हानि लाभ का भयो पुरान धनुतोरेतै ।
छुवतहीं टूटचो नहिं जो हरचो राम नेकु अबै न नशान कछु जुरि जई जोरे ते ॥
केते तोरि डारे धनुष खेलत शिकारन में कबहू न कीन ऐसो कोप और छोर ते ।
रघुराजन् की रीति नहिं जानो विप्र करौ कहुँ जाय तप जानौं कहे थोरे ते ॥१॥

**कवित्त–बालक विचारि तेरे वधको बचाय देहूँ ऐसो विप्र हौं न जस जानै जड़मोहिरे ।
सुने रघुराज सूत क्षत्रिन निक्षत्रकर परम कठोर मोर परशुले जोहि रे ॥
शोच वस करै काहे मातु पितुहु को आज जाय यमपुर में वसेरो करे मोहिरे ॥
नातो कहे देत हौ कुठार कंठ देत बिना हेत सेत मेत काहे कालकरै होहिरे ॥१॥

हैं॥१॥ इस पुराने धनुष को तोड़ने से क्या हानि लाभ है! राम ने तो इसको नया समझकर देखा था॥२॥ छूते ही टूट गया इसमें रघुनाथजी का दोष नहीं है, हे मुनि! बिना प्रयोजन क्यों क्रोध करते हो॥३॥

कोटि कुलिश सम वचन तुम्हारा । वृथा धरहु धनुबाण कुठारा ॥४॥
पर०–कौशिकसुनहु मंद यह बालक।कुटिल कालवश निजकुलघालक॥५॥

परशुराम परशे की ओर देखकर बोले रे शठ! तू मेरा स्वभाव नहीं जानता॥४॥ मैं बालक जानकर तुझको नहीं मारता। हे मूढ़! केवल मुझे मुनि ही जानते हो?॥५॥ दोहार्थ–हे महीप किशोर! तुम अपने माता पिता को शोच के वशीभूत मत करो, यह मेरा घोर परशा गर्भों के बालकों को मारनेवाला है॥४६॥ चौ०–लक्ष्मण हँसकर बोले–हे मुनिराज! तुम महायोद्धाओं में अभिमान करते हो॥१॥ बांरबांर मुझे कुल्हाड़ा दिखाकर फूंक से पहाड़ उड़ाना चाहते हो॥२॥ सो यहां कोई पेठे की जैया नहीं जो तर्जनी अंगुली देखकर ही मर जाती है॥३॥ कोटि वज्र के समान तो तुम्हारा वचन है, धनुषबाण कुठार धारण करना वृथा है॥४॥ परशुराम बोले–विश्वामित्रजी! सुनो यह बालक बड़ा मंद कालवश अपने कुल का घालक है॥५॥

भानुवंश राकेश कलंकू । निपट निरंकुश अबुध अशंकू ॥६॥
कालकवरहोइहिं क्षणमाहीं । कहों पुकारि खोरिमोहिं नाहीं ॥७॥
ल०–लषणकहेउमुनिसुयश*तुम्हारा । तुमहिं अछत कोवरणैपारा ॥८॥
अपने मुख तुम आपनि करणी । बार अनेकभाँति बहु बरणी ॥९॥
नहीं सन्तोष तो पुनि कछु कहहू । जनि रिसरोंकि दुसरदुखसहहू ॥१०॥
वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा । गारीदेत न पावहु शोभा ॥११॥

दोहा–शूरसमर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आप ।
विद्यमान रण पाय रिपु, कायर कथहिं प्रलाप ॥४७॥

तुमतौ काल हाँकि जनुलावा । बारबार मोहिं लागि बुलावा ॥१॥
सुनत लषण के वचन कठोरा । पर्शुसुधार धरेउ करघोरा ॥२॥

–कवित्त–वेदपढ़ि जापै जप यज्ञ बड़ि पापपुण्य मढ़िजानै बहुबातें गढ़िजानै है ।
शांपवेमें जानै वरथापवेमें जानै दोषढापवेमें जानै तपतापवें में जानै हैं ।
खायजानै खूब और अजूब जाचिलाय जानै रसिकबिहारी बालहू पढ़ाय जानै है ।
एती पुनि औरहु अनेकरीति जानैं एक युद्धवरवीरताई विप्र नहिं जानै हैं ॥१॥

* कवित्त–बहुरि लषण बोल्यो सुयश तिहारो विप्र तुमसे अधिक नहीं दूसरो कहैया है।
कहत अघाने जो न होउ मुन भाषौ खूब रसना तिहारी कहौ कौन रोकवैया है ॥
कहत अघाने जो न होउ मुन भाषौ खूब रसना तिहारी कहौ कौन रोकवैया है ॥
भाटहीसों भाषौं यश गारी जनि दीजै हमैं नातौ नाहि रै है फेरि कीरति गवैया है ॥
रघुराज आज रघुवंशी कहवाय कोऊ तिलभरि भूमिते न भभरि भगैया है॥२॥

पर०–अबजनि देहिदोषमोहिंलोगू । कटुवादी बालक वधयोगू ॥३॥
बालविलोकि बहुत मैं बांचा । अब यह मरनहार भा सांचा ॥४॥

सूर्य वंश में चन्द्रमा के समान कलंकी अति स्वच्छंद मूढ़ और निःशंक है।।६।। अब यह क्षण में काल के गाल में हो जायगा, पुकारकर कहता हूं फिर मुझे दोष नहीं।।७।। लक्ष्मण बोले–हे मुनिराज! तुम्हारे होते तुम्हारा सुयश वर्णन कर कौन पार पा सकता है।।८।। अपने मुख से तुमने अपनी करणी अनेक बार वर्णन की।।९।। संतोष यदि नहीं है तो फिर कुछ कहो क्रोध रोककर महादुःख मत सहो।।१०।। वीर वृत्तिवाले धीरवान् क्षोभरहित तुम गाली देते शोभा नहीं पाते।।११।। दोहार्थ–जो शूर युद्ध में करणी करते हैं उसे जनाकर नहीं कहते, शत्रु को सन्मुख देखकर करना कायरपन है।।४७।। चौ०–तुम तो मानो काल ही हांक लाये और बारंबार मेरे निमित्त उसे बुलाते हो।।१।। यह लक्ष्मण के कठोर वचन सुन घोर परशा सुधारकर कंधे पर धार।।२।। अब कोई लोग मुझे दोष न दें, यह कटुवादी बालक मारने योग्य है।।३।। बालक जानकर मैं बहुत बचाया पर अब यह सत्य ही मरनहार हुआ।।४।।

कौशिक कहा क्षमिय* अपराधू । बालदोषगुणगनहिं न साधू ॥५॥
पर०–करकुठार मैं अकरन कोही । आगे अपराधी गुरु द्रोही ॥६॥
उतरदेत छाँड़ौ विनु मारे । केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥७॥
नतु इहिकाटि कुठार कठोरे । गुरुहि उऋण होतेउँ श्रम थोरे ॥८॥
ल०–कहेउलषणमुनिशीलतुम्हारा । कोनहिं जान विदित संसारा ॥९॥
मातुहि पितहि उऋणभै नीके । गुरुऋणरहा शोचबड़जीके ॥१०॥
सो जनु हमरे माथे काढ़ा । दिन चलिगये ब्याज बहु बाढ़ा ॥११॥
अब आनियव्यवहरिया बोली । तुरतदेव** मैं थैली खोली ॥१२॥
"सुनु कटुवचन कुठार सुधारा*** । हाहाकहि सबलोग पुकारा ॥१३॥

---

*सवैया–कह विश्वामित्र सुनो भृगुनायक आपतो दीह दया उर छाइये ।
जो लरिका लरिकाई करै तो क्षमा करके मनते बिसराइये ॥
श्रीरघुराज खड़े शरणागत आसु अभै करिकै अपनाइये ।
आप क्षमा से क्षमाधर है नहि बालक बातनमें चित ल्याइये ॥१॥

**सवैया–लक्ष्मण बोल्यो ततक्षण ही पितुको उऋण भये अर्जुन मारी ।
फेरिकै हाथे हमारेइ माथे लियो ऋण कासो कहौ तो उचारी ॥
लेहु अबै हम खोले खजाने विलब करो मत जो बल भारी ।
हैं करजीके नहीं गरजी रघुराज यही अरजी है हमारी ॥१॥

*** (यह टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें।)

विश्वामित्र बोले–अपराध क्षमा करो। साधू बालक के दोष गुण नहीं गिनते।।५।। परशुराम बोले–एक तो मेरे हाथ में कुठार, दूसरे मं बिना कारण ही क्रोधी, तीसरे गुरुद्रोही अपराधी संमुख है।।६।। तो उत्तर देते ही विना मारे नहीं छोड़ता। विश्वामित्र केवल तुम्हारे शील से छोड़ा है।।७।। नहीं तो इसको कुठार कुल्हाड़े से काटकर गुरु के ऋण से उऋण हो जाता।।८।। लक्ष्मण बोले–मुनिराज तुम्हारा शील संसार में कौन नहीं जानता।।९।। माता पिता से तो तुम भले उऋण हुए हो, गुरु का ऋण रहा इसका बड़ा सोच है।।१०।। सो जानो हमारे माथे काढ़ा है इसमें दिन अधिक बीते हैं, ब्याज भी बढ़ गया।।११।। अच्छा अब किसी व्यवहारवाले को बुला लाओ, मैं तुरत थैली खोलकर दे दूंगा।।१२।। यह कटु वचन सुन कुठार सुधारा, सब लोग हाहाकार करने लगे।।१३।।

ल०–मुनिवर परशु दिखावहु मोहीं । विप्रविचारि बचौं नृपद्रोही ।।१४।।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहि के बाढ़े ।।१५।।
दोहा–लषण उतर आहुतिसरिस, भृगुवर कोप कृशानु ।
बढ़तदेख जलसम वचन, बोले रघुकुल भानु ।।४८।।
राम०–नाथकरहु बालक पर छोहू । शुद्धदूधमुख करिय न कोहू ।।१।।
जोपै प्रभु प्रभाव कछु जाना । तौकि बराबरि करत अयाना ।।२।।
जो लरिका कछु अनुचित करहीं । गुरुपितु मातु मोद मन भरहीं ।।३।।
करिय कृपा शिशु सेवक जानी । तुम सम शील धीर मुनिज्ञानी ।।४।।
तिन नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी* मैं नाथ तुम्हारा ।।५।।

***विजय–बोरो सबै रघुवंश कुठारकी धारमें वारन बाजि सरत्थहिं ।
बाणकी वायु उड़ाइकै लक्षन लक्षि करौं अरिहासमरत्थहि ।।
रामहि बाम समेत पठै वन कोपमें भार में भूजो भरत्थहि ।
जो धनु हाथ धरैं रघुनाथ तो आज अनाथ करौं दशरत्थहि ।।१।।

*सवैया–रावरेके अपराधी हमै नहिं बंधु कियो धनुभंग तिहारो ।
दीजै यथोचित दंड उदंड न होत जो ठंढ है कोप अपारो ।।
हैं रघुराज न जानत हैं छल और कछू नहिं कीजै विचारो ।
आपतौ पाणि कुठार लिये प्रभु आगे धरो यह शीश हमारो ।।१।।
मैं तुम सेवक हौं मुनिनायक कोपको काम कछू नहिं जाने ।
क्रोध हरै मति क्रोध हरै तप क्रोध हि पापको मूल बखाने ।।
ये सिगरे शिशुजानै नहीं कछु रावरो देव बराबरी माने ।
बैठौ हतै करसों चहौं मींजन ठाढ़े रहे बहु पाउ पिराने ।।२।।

लक्ष्मण बोले–हे मुनिराज! मुझे परशा क्या दिखाते हो? हे नृपद्रोही! ब्राह्मण जानकर तुमसे बचता हूं।।१४।। कभी रण के बांके सुभट तुमको नहीं मिले, ब्राह्मण और देवता घर के ही बड़े होते हैं।।१५।। दोहार्थ–लक्ष्मण के उत्तर आहुति के समान परशुराम का क्रोध अग्नि के समान हुआ। उसको बढ़ता देखकर श्रीरामचन्द्र जल के समान वचन बोले।।४८।। चौ०–राम–हे नाथ! बालक पर कृपा करो, यह शुद्ध दूध का मुख है क्रोध न करो।।१।। जो तुम्हारा कुछ प्रभाव जानता तो अजानता से बराबरी नहीं करता।।२।। जो लड़के कुछ अनुचित करते हैं तो गुरु पिता माता मन में प्रसन्न होते हैं।।३।। इसको शिशुसेवक जानकर कृपा करो। तुम समान शीलवाले धीर मुनि ज्ञानी हो।।४।। और हे नाथ! इसने आपका कुछ कार्य नहीं बिगाड़ा। तुम्हारा अपराधी तो मैं हूं।।५।।

कृपाकोप वध बन्ध गुसाईं । मोपर करिय दासकी नाईं ।।६।।
कहिय वेग जेहि विधि रिसजाई । मुनिनायक सोइ करिय उपाई।।७।।
पर०–कहमुनिरामजायरिसकैसे । अजहुँ बन्धु तव चितव अनैसे* ।।८।।
इहिंके कंठ कुठार** न दीन्हा । तो मैं कहा कोप करिकीन्हा ।।९।।

हे गोसाईं! कृपा कोप वध बंध मुझ पर दास के समान करो।।६।। सो जिस प्रकार की आपकी रिस जाय सो शीघ्र कहिये, मुनिनायक जिससे उसका उपाय करें।।७।। मुनि बोले–हे राम! क्रोध कैसे जाय अब भी तुम्हारा भाई कुटिलता से देखता है।।८।। जो मैंने इसके कंठ में कुठारा न दिया तो क्रोध करके क्या किया।।९।। दोहार्थ–कुठार की घोरगति सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ भूमि पर गिर जाते हैं तब इस परशे के होते वैरी राजकुमार को जीता कैसे देख सकता हूँ।।४९।। चौ०–मेरा हाथ नहीं चलता, क्रोध से छाती जलती है, राजाओं को मारते मारते कुठार भी कुंठित हुआ है।।१।। आज देव ने बड़ा दुःख सहाया है, सुनकर लक्ष्मण ने हँसते हुए शिर नवाया।।२।। हे मुनिराज! जो कृपा से आपकी शरीर जलता है तो क्रोध होने पर विधाता ही शरीर रख सकता है।।३।।

---

*कवित्त–देखिये कुशिक यह राज को कुमार खोटो मेरे ओर देखत अनैसे नैन करि करि
कबहूँ सुनी न प्रभुताई मोरि काननमें शठ लरिकाईवश रीसै धनु धरि धरि ।।
मोहि उपजावै कोप लोप निज चाहे होन वेग ही बुझावो रघुराज छोह भरि भरि ।
नातो कहौं आजु मैं समाज में पुकारि मेरे कोप की कृशानु ह्वै है कीटहीसों जरि जरि ।।

**सवैया–राम कह्यो रघुराजहि देखिके आगे खड़ो गुरुद्रोही हमारो ।
भाइन के बल दर्प भरो यह भीतर बाहरहूँ अतिकारो ।।
कै पितु को बछिया सम आगे अहैं घतमें चह घात हमारो ।
तौलौं नहीं उऋणै गुरुको जबलौ नहिं देत हौं कंठ कुठारो ।।१।।

दोहा–गर्भस्रवहिं अवनिपरवनि, सुनि कुठार गतिघोर ।
परशु* अछत देखौं जियत, वैरी भूपकिशोर ।।४९।।

बहै न हाथ दहै रिसछाती । भा कुठार कुंठित नृपघाती ।।१।।
आजु दैव सुख दुसह सहावा । सुनि सौमित्रि विहँसि शिरनावा ।।२।।
ल०–जोपै कृपा जरै मुनिगाता । क्रोध भये तनु राखु विधाता ।।३।।

पर०–देखु जनक हठब लक एहू । कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ।।४।।
वेगि करहु किन आँखिन ओटा । देखत छोट खोट नृपढोटा ।।५।।
ल०–"विहँसेलषणकहामुनिपाहीं । मूँदिय आंख कतहुँ कोउ नाहीं"

दोहा–"परशुराम तब रामप्रति, बोले वचन सक्रोध ।
शम्भुशराशन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध ।।५०।।"

पर०–बंधुकहै कटु सम्मत तोरे । तूछल विनय करसि करजोरे ।।१।।
करु परितोष मोर संग्रामा । नाहिंत छांड़ि कहाउब रामा ।।२।।
"भृगुपति तमकि कुठार उठाये । मन मुसुकाहिं राम शिर नाये ।।"
रा०–राम कहा रिस तजिय मुनीशा । करकुठार आगे यह शीशा ।।
जोहि रिसजाय करिय सोइ स्वामी । मोहिजान आपन अनुगामी ।।

दोहा–प्रभुसेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोष ।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष ।।५१।।

क्षमहु चूक अनजानत केरी । चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ।।१।।
सब प्रकार हम तुम सन हारे । क्षमहु विप्र अपराध हमारे ।।२।।

परशुधर बोले–जनक इस बालक की हठ देखो, यह मूढ़ यमपुर में अपना घर करना चाहता है।।४।। इसे शीघ्र ही आँखों की ओट में करो, यह देखने में छोटा पर बड़ा ही खोटा है।।५।। लक्ष्मण ने हँसकर मुनिराज से कहा, आप आंख मीच लें तब कहीं भी कोई नहीं है।।६।। दोहार्थ–तब परशुराम श्रीराम से क्रोध कर वचन बोले–हे शठ! शिवधनुष तोड़कर अब हमारा प्रबोध करता

---

* अरे जनक–स०–गर्भ के अर्भक काठनको पटुधार कुठार कराल है जाको ।
सोईहौं बूझत राजसभा धनुके दलि हैं दलि है बलताको ।।
लघुआनन उत्तर देत बड़ो लरिहै मरिहै करिहै कछु शाको ।
गोरो गरूर गुमानभर्‍यो कहो कौशिक छोटो ढोटो है काको ।।

है।।५०।। चौ०–फिर पर०–तेरी सम्मति से ही तेरा बंधु कटु वचन कहता है, तू हाथ जोड़ छल से विनय करता है।।१।। संग्राम करके मुझे संतुष्ट कर नहीं तो रामनाम कहाना छोड़ दे।।२।। परशुराम ने तमककर कुठार उठाया, मन में मुसुकाये राम ने शिर नवाया।।३।। रामचन्द्र ने कहा–हे मुनिराज! जिस प्रकार रिस जाय सो करो, मुझे अपना अनुगामी जानो।।४।। दोहार्थ–हे विप्रवर! स्वामी और सेवक का संग्राम कैसा? आप क्रोध त्यागन करो, वेष विलोक कर ही कुछ कहो, बालक का दोष नहीं है।।५१।। चौ०–सो बिना जाने चूक क्षमा करो। ब्राह्मण के मन में बड़ी कृपा चाहिये।।१।। सब प्रकार हम तुमसे हार गये हैं हे विप्र! हमारे अपराध क्षमा करो।।२।।

प०–निपटहिद्विजकरिजानेसिमोहीं । मैं जस विप्र सुनावहु तोहीं ।।३।।
चापस्रुवा शर आहुति जानू । कोप मोर अतिघोर कृशानू ।।४।।
समिध सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भये पशु आई ।।५।।
मैं इहि परशु काटि बलिदीन्हा । समर यज्ञ जग कोटिन कीन्हा ।।६।।
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । बोलेसि निदरि विप्र के भोरे ।।७।।
रा०–राम*कहा मुनि कहहु विचारी।रिस अति बड़िलघु चूकहमारी ।।८।।

दोहा–जो हम निदरहिं विप्रवदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तो अस को जग सुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ ।।५२।।

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ।।१।।
जो रण हमहिं प्रचारै कोऊ । लरैं सुखेन काल किन होऊ ।।२।।

परशुराम बोले–मुझे निरा ब्राह्मण ही मत जानो, मैं जैसा ब्राह्मण हूं, तुमसे कहता हूं।।३।। मेरा धनुष स्रुवा, बाण आहुती हैं, मेरा क्रोध घोर अग्नि है।।४।। चतुरंगिनी सेना समिधा है, बड़े बड़े राजा इसमें पशु हुए हैं।।५।। मैंने इस परशे से काटकर उनकी बलि दी है, समरयज्ञ जो जगत में अनेक बार किया है।।६।। मेरे प्रभाव को तुम नहीं जानते, ब्राह्मण जानकर भूल से निरादर कर बोलते हो।।७।। रामचन्द्र बोले–मुनिराज विचारकर कहो रिस तो बहुत बड़ी है और चूक थोड़ी है।।८।। दोहार्थ–हे भृगुदेव! आप सत्य ही जानो जो हम ब्राह्मण जानकर आपका तिरस्कार करते हैं तो जगत में ऐसा योद्धा कौन है? जिसको भयवश शिर नवावैं।।५२।। चौ०–देवता, दैत्य, राजा, वीर, समान बल का वा अधिक बलवान् हो।।१। जो कोई युद्ध में हमको प्रचार कर बुलावै तो हम सुखी होकर युद्ध करें, काल ही क्यों न हो।।२।।

---

*कवित्त–विप्रजानिजोपै रावरेकी नहिं भीति मानैतो तो विश्ववीरकौन जाको जोहिडरिहैं
छत्री कुल जन्म पाय चापकर ल्याय रघुवशी कहवाय कालहूसो धाय लरि हैं ।
तुमहिं न सूझै कछु रघुराज बूझो हमैं समर डरानो ताहि शूर न उचरिहैं ।।
भूधर टरैंगे ध्रुव धामते टरैंगे धरणीहू टरिजाय भले हम नहिं टरिहैं ।।१।।

कहौं स्वभाव न कुलहि प्रशंसी । कालहु डरैं न रण रघुवंशी ।।३।।
विप्रवंश की असि प्रभुताई । अभय होय जो तुमहिं डराई ।।४।।
"सुनिमृदुगूढ़वचन रघुपतिके" । उघरे* पटल परशुधरमतिके ।।५।।
प०–राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु* मोर मिटै सन्देहू ।।६।।
'देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ । परशुराम मन विस्मय भयऊ ।।७।।

दोहा–जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात ।
जोरिपाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात ।।५३।।

पर०–जयरघुवंशवनजवनभानू । गहन दनुज कुल दहन कृशानू ।।१।।

मैं स्वभाव से कहता हूँ, कुल की प्रशंसा से नहीं, रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।।३।। ब्राह्मणवंशों की ऐसी प्रभुताई है जो तुमसे डरता है वह अभय हो जाता है।।४।। रघुराज के यह मृदु और गूढ़ वचन सुनकर परशुराम के हृदय के कपाट खुल गये।।५।। और बोले–हे राम रमापति! हाथ में धनुष लेकर इसे खैंचो, मेरा संदेह मिट जाय।।६।। चाप देते ही स्वयं चढ़ गया तब परशुराम के मन में बड़ा विस्मय हुआ।।७।। दोहार्थ–तब राम का प्रभाव जानकर शरीर पुलकायमान हुआ। हाथ जोड़कर वचन बोले–मन में प्रेम नहीं समाता।।५३।। चौ०–पर० रघुवंशरूप कमल के खिलाने को सूर्यरूप आपकी जय हो। दैत्यकुलरूप गहन वन के जलाने के आप अग्नि हो।।१।।

विप्र मानि अवलों मनायोंशिरनायोतोहिक्षमा कीन्ह्यो जौन तौन भयो अपकारो है ।
लषण भरत शत्रुशाल को निवार्‍यो हम नातो देखिलेते वलदर्प जो तिहारो है ।
हम रंघुराज हैं न द्विजराज जानो सुनो जो न कोई सत्यकाज सो हमारो है ।
राजन समाज गर्व गारि त्रिपुरारिजूको चाप तूरि डारो हम चाप तूरि डारो है।।२।।

*कवित्त–देखि राम रूप साजे सायक प्रचण्ड धनु भयो भृगुराम बिना विषके भुजंग है ।
ह्वैगो तेजहीन अतिदिन त्यों मलीन मुछछीनज्योंक्षितीश क्षिति दर्प भयो भंग है ।
मान्यो अतिशंक दुतिवासर मयंक कैसो कंपृत शरीर करे कौन अब जंग है ।
देखि दिनराज रघुराज को बढ़त तेज दीपसी बुझानी रणरङ्गकी उमंग है ।।१।।
छूटि पर्‍यो करते कठोरसो कुठार तहां शीरी भई अनख सुपीरी मुख छायगै ।
मन्दमन्द हेरै नैन बोलि नहिं आवै बैन हीय हहरानो हठि हुब्बहू हिरायगै ।।
रघुराज बांकुरो समर रघुवीर बल भानुके उअत सान सूरसी सुखायगै ।
क्षितिकी निक्षित्रताई कीरति कमाई जौन राम वीरताई बारि बुल्लासी बिलायगै ।।२।।
**छन्द दण्डक–सर्वपर सर्वहत सर्वगत सर्नरत सर्वमत पूज्य आनंदकारी ।
अखिलनायक अमल अखिल दायक सुयश अखिल भायक वपुष मोहहारी ।।
जयति रघुराज दिनराज कुल कमल रवि विप्रकृत काज धनु बाण धरी ।।
भूप दशरथ सुअन सकल भुवनाभरन करन अशरन शरन दुअनदारी ।।

जय सुरविप्र धेनु हितकारी । जयमदमोह कोह भ्रम हारी ।।२।।
करौं कहा मुख एक प्रशंसा । जय महेश मनमानस हंसा ।।३।।
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता । क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्राता ।।४।।
"कहि जयजयजयरघुकुलकेतू । भृगुपति गये बनहिं तपहेतू ।।५।।
दोहा–देवन दीन्हीं दुन्दुभी, प्रभुपर वर्षहिं फूल ।
हरषे पुरनरनारि सब, मिटा मोह भय शूल ।।५४।।
जनककीन्ह कौशिकहि प्रणामा । प्रभुप्रसाद धनुभंजेउ रामा ।।१।।"
ज०–मोहिंकृतकृत्यकीन्हदोउभाई । अब जो उचित सो कहिय गुसाईं ।।२।।
वि०–"कह मुनिसुनुनरनाहप्रवीना । रहा विवाह चाप आधीना ।।३।।
टूटतही धनु भयउ विवाहू । सुरनरनाग विदित सब काहू ।।४।।
दोहा–तदपि जाय तुम करहु अब, यथा वंश व्यवहार ।
बूझि विप्रकुल वृद्धगुरु, वेद विदित आचार ।।५५।।
दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनै नृप दशरथहि लिवाई ।।१।।
"मुदितराउ कहिभलेहि कृपाला । पठये दूत अवध तिहि काला ।।२।।

देवता ब्राह्मण, गौ के हितकारी आप की जय हो। मद, मोह, क्रोध, भ्रम हरनेवाले आपकी जय हो।।२।। एक मुख से क्या बड़ाई करूं, आप शिव के मन मानस के हंस हो, तुम्हारी जय हो।।३।। बिना जाने मैंने बहुत अनुचित कहा आप क्षमासागर दोनों भाई क्षमा करो।।४।। हे राम! तुम रघुकुल की ध्वजा हो, तुम्हारी बारंबार जय हो। यह कह भृगुपति वन में तप को गये।।५।। दोहार्थ–तब देवताओं ने बाजे बजाये। प्रभु पर फूल वरषे, पुर के नरनारी प्रसन्न हुए। मोह भय शूल मिट गये।।५४।। चौ०–जनक ने विश्वामित्र को प्रणाम कर कहा कि आप की कृपा से रघुराज ने धनुष तोड़ा है।।१।। मुझे दोनों भाइयों ने कृत-कृत्य कर दिया, हे गोसाईं! अब जो उचित हो सो करो।।२।। मुनि बोले–हे प्रवीण राजन्! सुनो व्याह तो धनुष के अधीन था।।३।। धनुष टूटते ही विवाह हो गया, यह बात सुर नर नाग सबको विदित है।।४।। दोहार्थ-तो भी अब तुम जाकर जो वंश में व्यवहार हो सो करो। ब्राह्मण कुलवृद्ध गुरु सबसे बूझकर वेदविदित आचार करो।।५५।। अयोध्या में दूत भेज दो वह महाराज दशरथ को बुला लावें।।१।। राजा ने प्रसन्न होकर कहा जो आज्ञा! और उसी समय अवधपुरी को दूत भेज दिये।।२।।

राजा–हे सेवको! तुम सब जाकर मण्डपादि सब रचना करो, विवाह की सामग्री एकत्रित करो।

सेवक–जो आज्ञा, हम अभी जाते हैं।

(सब गये)

इति नवम दर्शन

अथ दशम दर्शन

(स्थान अयोध्या)

(राजा दशरथ की सभा लग रही है, दूत आया है)

दूत-हे द्वारपाल! महाराज से कहो जनकपुर का दूत आया है और मिथिलेश का पत्र लाया है।

द्वा०-अभी जाता हूं (गया और फिर आया) हे दूत! चलो तुमको महाराज बुलाते हैं।

दूत-जो आज्ञा (भीतर गया और प्रणामकर पत्री दी)

"करिप्रणाम तिन्ह पाती दीन्हीं । मुदितमहीप आपु उठि लीन्हीं ।।।१।।
वारिविलोचन बाँचत पाती । पुलकिगात आई भरिछाती ।।२।।
पुनि धरिधीर पत्रिका बाँची । हरषी सभा बात सुनिसाँची ।।३।।
दश०-जादिनतेमुनिगयेलिवाई । तबते आजु साँचि सुधिपाई ।।४।।
भैया कहहु कुशल दोउ बारे । तुम नीके निज नैन निहारे ।।५।।
दूत-दोहा-सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुमसम धन्य न कोय ।
रामलषण जिनके तनय, विश्वविभूषण दोय ।।५६।।

(स्थान अयोध्या)

टीका-अयोध्या में दूत ने जाय प्रणामकर पत्री दी। राजा ने प्रसन्न होकर आप ही उठकर ली।।१।। पाती बाँचते नेत्रों में जल भर शरीर पुलकित हो छाती भरि आई।।२।। फिर धीरज धर के पत्री बांची। सत्य बात सुनकर सब सभा प्रसन्न हुई।।३।। कि जब से मुनि लिवा गये हैं तब से आज सत्य समाचार आये है।।४।। राजा बोले-भैया तुम दोनों बालकों की कुशल कहो, अपनी आंखों से तुमने दोनों को देखा है।।५।। दोहार्थ-हे नृपमुकुटमणि! तुम्हारे समान कोई धन्य नहीं जिनके राम लक्ष्मण दोनों पुत्र विश्व के भूषण हैं।।५६।।

जिनके यश प्रताप के आगे । शशि मलीन रवि शीतल लागे ।।१।।
सीय स्वयम्बर भूप अनेका । सिमिटे सुभट एकते एका ।।२।।
शंभु सरासन काहु न टारा । हारे सकल भूप बरियारा ।।३।।
सकै उठाय सुरासुर मेरू । सोउहिय हारि गयउ करफेरू ।।४।।
दोहा-जहां रामरघुवंशमणि, सुनिय महामहिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयासविनु, जिमिगज पंकज नाल ।।५७।।
मुनि सरोष भृगुनायक आये । बहुत भाँति तिन आँख दिखाये ।।१।।

देखि रामबल निजधनु दीन्हा । करि बहु विनय गवन बनकीन्हा ।।२।।
देव देखि तब बालक दोऊ । अवनि आँखतर आव न कोऊ ।।३।।
सभा समेत राउ अनुरागे । दूतहि देन निछावरि लागे ।।४।।

दोहा—तब उठि भूप वसिष्ठकहँ, दीन्ह पत्रिका जाय ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बुलाय ।।५८।।

सुनि बोले मुनि अतिसुखपाई । पुण्यपुरुष कहँ महिसुखछाई ।।१।।
वशि०—तुमकहँसर्वकालकल्याना । सजहु बरात बजाय निशाना ।।२।।

चौ०—जिनके यश प्रताप के आगे चंद्रमा मलीन और सूर्य शीतल लगते हैं।।१।। सीता के स्वयंवर में अनेक राजा इकट्ठे हुए जो एक से एक बली थे।।२।। पर शिव का धनुष किसी से नहीं टूटा।। सब राजा बलकर हार गये।।३।। जो सुर असुर सहित मेरुको उठा सकता है वह भी हृदयमें हारकर फेरा कर गया।।४।। दोहार्थ—हे महाराज! वहां रामचंद्र ने बिना प्रयास ऐसे धनुष को तोड़ा जैसे हाथी कमलनाल को तोड़ देता है।।५७।। चौ०—यह सुनकर बड़े क्रोध से परशुराम आये उन्होंने बहुत भांति से आंख दिखाई।।१।। परन्तु राम का बल देखकर अपना धनुष दिया और बहुत विनय करं वन को गमन किया।।२।। हे देव! तुम्हारे दोनों बालकों को देखकर इस भूमण्डल में कोई आंख तलें नहीं आता।।३।। यह सुन राजा सभासमेत प्रसन्न हो दूत को न्योच्छावर देने लगे।।४।। दोहार्थ—तब राजा ने उठकर वह पत्री वशिष्ठजी को दी और आदर से दूत को बुलाय सब कथा गुरु को सुनाई।।५८।। तब मुनि बड़ा सुख पाकर बोले—पवित्र पुरुष को पृथ्वी में सुख छा रहा है।।१।। तुमको सब समय कल्याण है, बाजे बजाय बरात सजाओ।।२।।

दोहा—चलेहु वेगि सुनि गुरुवचन, भलेहिनाथ शिरनाय ।।
भूपति गमने भवन तब, दूतहि वास दिवाय ।।५९।।

राजा सब रनिवास बुलाई । जनकपत्रिका बाँचि सुनाई ।।१।।
भूप भरत पुनि लिये बुलाई । हय गज स्यन्दन साजहु जाई ।।२।।
चलहु वेगि रघुवीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ।।३।।

दोहा—चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात ।
होत शकुन सुन्दर सबहि, जो जेहि कारज जात ।।६०।।

सुमरि राम गुरु आयसु पाई । चले महीपति शंख बजाई ।।१।।

बड़ी धूम से बरात चलती है, कौतुक होते हैं

(स्थान जनकपुरी)

(वार्ता)

दूत–महाराज! बरात बहुत निकट है।

जनक–जो अगौनी के लिये लोग जाँय और आदर से जनवासे में टिकावें और बड़ी भेंट दी जाय।

दूत–जो आज्ञा (यहीं सब हो जायगा)

(सब लोग परस्पर मिलते हैं, बरात टिकती है, रामलक्ष्मण पिता के समीप आकर मिलते हैं)

दूत–महाराज! लग्न का समय निकट है, सब चलें।

राजा–हम अभी आते हैं।

दोहार्थ–शीघ्र चलो, यह गुरु के वचन सुन राजा ने शिर नवाय कहा, यही होगा और दूत को निवास दे राजा रनिवास को गये।।५९।। चौ०–राजा ने सब रनिवास को बुलाय जनक की पत्री बाँचकर सुनाई।।१।। फिर राजा ने भरत को बुलाकर कहा–जाकर हाथी घोड़े सजाओ।।२।। शीघ्र रघुवर की बरात को चलो सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए।।३।। दोनों रथों के ऊपर चढ़कर नगर के बाहर बरात जुड़ने लगी और जो जिस कार्य को जाय उसे सुन्दर शकुन होने लगे।।६०।। राम का स्मरणकर गुरु की आज्ञा पाय राजा शंख बजाय चले।।१।।

(सब चलते हैं, श्रीराम घोड़े पर चढ़कर द्वार पर जाते हैं स्त्रीजन आरती उतारती हैं)

छन्द–को जानि केहि आनन्दवश सब ब्रह्मवर परिछन चलीं ।
कलगान मधुर निशान वर्षहिं सुमन सुर शोभा भली ।।
आनन्दकन्द विलोकि दूलह सकलहिय हरषित भई ।
अंभोज अम्बक अंब उमँगि सुअंग पुलकावलि छई* ।।१।।

नैन नीर हठि मंगल जानी । परिछन करहिं मुदित मन रानी ।।१।।
करिआरती अर्घ तिन्ह दीन्हा । रामगवन मण्डपमहँ कीन्हा ।।२।।
दशरथसहित समाज विराजे । विभव विलोकि लोकपति लाजे ।।३।।
समय विलोकि वसिष्ठ बुलाये । सादर शतानन्द मुनि आये ।।४।।
वेगि कुँवरि अब आनहु जाई । चले मुदित मन आयसु पाई ।।५।।

---

*मन में मंजु मनोरथ होरी ।
सो हर गौरी प्रसाद एकते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी ।
प्राण परिताप चाप चिता निशि सोच सँकोच तिमिर नहिं थोरी ।।
रविकुल रवि अवलोकि समासरहित चितवारिज वनविकस्योरी ।
कुँवर कुँवरि सब मंगल मूरति नृप दोउ धुरंधर धोरी ।।
राज समाज भूरि भागी निजलोचन लाहु लह्यो इक ठोरी ।।
ब्याह उछाह रामसीताको सुकृत सकल विरंचि रच्योरी ।।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जा उर वसत मनोहर जोरी ।।

(बरात चली)

छन्दार्थ–कौन जाने सब आनन्द में मग्न होकर उस ब्रह्मवर की आरती करने चलीं। मधुर मनोहर गान हो रहे, बाजे बज रहे, देवता फूल बरसा रहे, बड़ी शोभा हो रही। आनन्द के कन्द दूलह को देख मन में सब प्रसन्न हुई। उनके कमल से नेत्रों में जल भर आया। अंग में पुलकावलि छा गई।।१।। चौ०–नेत्रों में जल भरा तब मंगल का समय जानकर रानी प्रसन्न हो परछन करने लगीं।।१।। फिर आरती करके उन्होंने अर्घ्य दिया, राम ने मण्डप में गमन किया।।२।। सब समाजसहित दशरथजी विराजे उनका ऐश्वर्य देख लोकपति लज्जित हुए।।३।। समय जानकर वसिष्ठजी ने आदर से शतानन्द को बुलाया और शतानन्द मुनि आये।।४।। वसिष्ठजी बोले अब बहुत शीघ्र जाकर कुमारी को लाओ, तब मुनि आज्ञा पाय प्रसन्न हो चले।।५।।

सीय सँवारि समाज बनाई । मुदित मण्डपहि चलीं लिवाई ।।६।।
इहिविधि सीय मण्डपहि आई । प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई ।।७।।

शान्तिपाठ

ऋषि–ॐ स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाःस्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः ।। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।।१।। ॐ पयःपृथिव्यां पय ओषधीषुपयोदिव्यन्तरिक्षेपयोधाः पयस्वतीः प्रदिशःसन्तु मह्यम् ।।२।। ॐ विष्णोररराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोःस्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ।।३।। ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्योदेवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वदेवा देवता बृहस्पति दैवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।।४।। ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिपृथिवी शान्तिरापःशान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिः विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँशान्तिःशान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ।।५।।

गणपतिपूजनम्

ॐ गणानान्त्वा गणपति ँहवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ँहवामहे वसो मम आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम् । गणेशाय नमः

गौरीपूजनम्

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।

देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ।

धृतिःपुष्टिस्तथातुष्टिस्तथात्मकुलदेवता । षोडशमातृभ्योनमः ।।

नवग्रहपूजनम्

"ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शांतिकरा भवन्तु ।।"

सखी सीताजी को संभालकर समाज बनाय प्रसन्न हो मण्डप को लिवा ले चलीं।।६।। इस प्रकार सीता मंडप में आई, मुनिजन प्रसन्न हो शान्ति पढ़ने लगे।।७।।

कलशपूजनम्

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद वरुणाय नमः।।

"छन्द–आचार करि गुरु गौरी गणपति मुदित विप्र पुजावहीं ।
सुर प्रकट पूजा लेहिं देहिं अशीश अतिसुख पावहीं ।।
मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मनमें चहैं ।
भरे कनक कोपर कलशसब करलिये परिचारक* रहैं ।।१।।
वर कुँवर करतल जोर शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं ।
भयोपाणिग्रहण विलोकि विधि सुरमनुजमुनि आनंद भरैं ।।
सुखमूल दूलह देखि दम्पति पुलक तनु हुलसैं हिये ।
करि लोकवेद विधान कन्यादान नृप भूषण दिये ।।२।।

छन्दार्थ-आचार करिके ब्राह्मण गौरी और गणपति को प्रसन्न होकर पुजवाते हैं। देवता प्रगट होकर पूजा लेते और आशीश देते, जिससे सुख पाते हैं। मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जिस समय मुनि मन में चाहते हैं, सुवर्ण के पात्र और कलशों में भरे सब परिचारक लिये रहते हैं।।१।। वर और कुमारी का हाथ पकड़कर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करते हैं। पाणिग्रहण हुआ देख विधि सुर नर मुनि अत्यानन्द हुए दोनों स्त्री पुरुष सुखमूल दूलह को देख मन में प्रसन्न और पुलकित होते हैं। लोक वेद का विधानकर कन्यादान देकर राजा ने भूषण दिये।।२।।

---

* राग भूपाली–बन्योसिय प्यारी को वनरा । कि बरवस मोहिलेत मनरा ।।
मौरशिर सोनेकी भरी । विविधमणि चित्र चमत्कारी ।।
करन छबि महँदीकी भारी । महावर पगन चित्रकारी ।।
दोहा–कंकण की कमनीयता, कही कौनपै जाय ।
अलख झलख लख खलख अलि, पलक परत न सुहाय । गले गजमोतियन को गजरा।।

शाखोच्चार

शतानन्द

श्रीमत्पङ्कजविष्टरौ हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो-
भास्करवित्तपालवरुणाः क्षेत्राधिपाद्या ग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः
स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ।।१।।

किंगोत्रस्य किंप्रवरस्य किंशाखिनः किंवेदाध्यायिनः किंवर्म्मणः प्रपौत्राय किंगोत्रस्य किंप्रवरस्य किंशाखिनः किंवेदाध्यायिनः किंवर्मणः पौत्राय किंगोत्रस्य किंप्रवरस्य किंशाखिनः किंवेदाध्यायिनः किंवर्मणः पुत्राय आयुष्मते कन्यार्थिने विष्णुस्वरूपिणे किंनाम्ने वराय–

आशीर्वाद

वशिष्ठ–

गौरी श्रीकुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा ।
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती ।।
स्वाहा श्रीविधिरूपिणी च सुखदा दुःस्वप्नविध्वंसिनी ।
वेला चाम्बुनिधेः समीनमकरा कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ।।

शाखोच्चार

काश्यपगोत्रस्य काश्यपावत्सनैध्रुवेतित्रिप्रवरस्य यदुर्वेदस्य माध्यन्दिनीयशाखाध्यायिनः श्रीनाभागवर्मणः प्रपौत्राय काश्यपगोत्रस्य काश्यपावत्सनैध्रुवेतित्रिप्रवरस्य यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनीयशाखा-

---

चलन चितवन गति चितचोरी वचन की रचना लाज तोरी ।।
गरब तजि विविश भइ गोरी । धामके काम दाम छोरी ।।
दोहा–हँसन असी मुख म्यानते, सुधासुखी सितधार ।
काढ़ कामिनी कतल करि, दशरथ राजकुमार ।।
रंगीली अंखियन में कजरा ।।१।।
राग परज–बन्यो सखी दूलह अजब रंगीलो ।
दशरथ कुँवर सांवरी अद्‌भुत सोहत परम छबीलो ।।
अनव्याही व्याही सबव्याही देखत रूप ठगीलो ।
राम सखे अब लगत प्राण सम पियरो अवधनवीलो ।।२।।

ध्यायिनः श्रीराजाजवर्मणः पौत्राय काश्यपगोत्रस्य काश्यपावत्स-नैध्रुवेतित्रिप्रवरस्य श्रीमद्राजदशरथवर्मणः पुत्राय श्रीमते राम-चन्द्रनाम्ने विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिने वराय ।

प्रश्न—

किंगोत्रस्य किंप्रवरस्य किंशाखिनः किंवेदाध्यायिनः किंवर्मण प्रपौत्रीम्, किंगोत्रस्य किंवर्मणः पौत्रीम्, किंगोत्रस्य किं वर्मणः पुत्रीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं किंनाम्नीं कन्यामिति।

उत्तर—

आत्रेयगोत्रस्य आत्रेयशातातपसांख्येतित्रिप्रवरस्य माध्यन्दिनीयशाखिनः यजुर्वेदाध्यायिनः श्रीमद्राजनिमिवर्मणः प्रपौत्रीम् आत्रेयगोत्रस्य आत्रेयशातातपसांख्येतित्रिप्रवरस्य श्रीमद्राजमिथि वर्मणः पौत्रीम् । आत्रेयगोत्रस्य आत्रेयशातातपसांख्येतित्रिप्रवरस्य श्रीमद्राजजनकवर्मणः पुत्रीं आयुष्मतीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं सीतानाम्नीं कन्याम् ।

संकल्प—

जनक०—ॐ विष्णुः ३ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ॐ तत्सत् श्रीहंसस्य सच्चिदानन्दरूपिणो ब्रह्मणोऽनिर्वाच्यमायाशक्तिविजृम्भिता विद्या योगात्काल कर्मस्वभावा विर्भूतमहत्तत्त्वोदिताहंकारतृतीयोद्भूतवियदादिपंचकेन्द्रियदेवतानिर्मिताण्डकटाहे चतुर्दशलोकात्मकेलोके लीलया तन्मध्यवर्ति भगवतःश्रीनारायणस्याङ्गनाभिकमलोद्भूतेन सकललोकपितामहेन ब्रह्मणा सृष्टिं कुर्वता तदुद्धरणाय प्रजापतिप्रार्थितेन महापुरुषरूपिणा सितवाराहावतारेण ध्रियमाणायामस्यां भूर्लोकसंज्ञितायां धरित्र्यां सप्तद्वीपमण्डितायांक्षीराद्यब्धिद्विगुणद्वीपवलयीकृतलक्षयोजनविस्तीर्णेजम्बूद्वीपे भरतखण्डे स्वर्गस्थिताद्याशासितावतारे गङ्गादिसरिद्भिः पाविते निखिलजनपावने आर्यावर्ते पुण्यक्षेत्रे श्रीभगवन्मार्तण्डकृपापात्रज्योतिषाचार्यगणितायांपरार्द्धादिसंख्यायां श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धस्य द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्ते श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे त्रेतायुगे हेमन्ततौं मार्गशीर्षमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ

उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे अत्रिगोत्रोत्पन्नो जनकवर्मा समहिषीकोऽहं राजराजेश्वरश्रीनाभागवर्मण: प्रपौत्राय श्रीराजाजवर्मण:पौत्राय महाराजदशरथवर्मण (पुत्राय आयुष्मते विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिने श्रीरामचन्द्रनाम्ने वराय श्रीमद्राजस्वर्णरोमवर्मण: प्रपौत्रीं ह्रस्वरोमवर्मण:पौत्रीं जनकवर्मण: पुत्रीमायुष्मतीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं सीतानाम्नीं कन्यां यथाशक्त्यलंकृतां बहुयौतुकान्वितां समस्तफलप्राप्तिकाम: पितृन् पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये देवाग्निगुरुब्राह्मणसन्निधौ अग्निसाक्षिकतयासहधर्म चरणाय तुभ्यमहंसम्प्रददे ।।

श्लोक—"सीतां कन्यामिमां राजन् यथाशक्त्युपलंकृताम् ।
तुभ्यं काश्यपगोत्राय दत्तां राम समाश्रय ।।"

छन्द—हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहि हरिहि श्रीसागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समर्पी विश्व कल कीरति नई ।।
किमि करै विनय विदेह कीन्ह विदेहमूरति साँवरी ।
करि होम विधिवत गांठि जोरी होन लागा भाँवरी ।।३।।

"कुँवरि कुँवर कलभामरि देहीं । नैनलाभ* सब सादर लेहीं ।।१।।

छन्दार्थ—हिमालय ने जैसे शिवजी को पार्वती, सागर ने जैसे भगवान् को लक्ष्मी दी थी इसी प्रकार से जनक ने रघुनाथजी को सीता समर्पण की। विश्व में नई कीर्ति छा गई, विदेह किस प्रकार से विनती करै साँवरी मूर्ति ने विदेह कर डाला, विधिपूर्वक होम कर गाँठि जोड़ी और भाँवरी होने लगीं।।३।। कुमर और कुमारियों की भाँवरी दी जाती है सब आदर से नेत्रों का लाभ लेते हैं।।१।।

---

* राग कान्हरा—देखोरी छबि राम वदनकी ।
कोटि कोटि दामिनी दर्पन द्युति निन्दति कांति कपोल रदनकी ।।
नासा मृदु मुसकान माधुरी मंदकरी अतिघमंड मदनकी ।
फवरह्यो । क्रीट मुकुट अलकनपर मनोफास दृग मीन फमनकी ।।
चोरत चित्त भ्रुकुटि दृग शोभा कुण्डल झलक खोर चन्दनकी ।
राम सखे छबि कहि न जात जब शुध न रहत लख वदन वसन की ।।१।।
राग जंगला—लेहु री भर लोचन लाहु ।
पुष्पन वर्षत मुनिजन हर्षत सियारामको अजब विवाहू ।
मिथिला पुरकी सखी सयानी समझ २ सिख दे सबकाहू ।।

रामसीय सुन्दर परिछाहीं । जगमगात मणिखंभन माहीं ।।२।।
बहुरि वसिष्ठ दीन्ह अनुशासन । वर दुलहिन बैठे इक आसन ।।३।।
छन्द—तब जनक पाय वसिष्ठ आयसु व्याह साज सँभारिकै ।
माण्डवी श्रुतिकीर्ति उर्मिला कुँवरि लई हँकारिकै ।।
कुशकेतुकन्या प्रथम जो गुण शील सुखशोभा मई ।
सबरीति प्रीतिसमेत करि सो व्याह नृप भरतहि दई ।।१।।
जानकी लघुभगिनि सब सुन्दर शिरोमणि जानिकै ।
सो दीन्ह तनया व्याहिलषणहिं सकल विधि सन्मानिकै ।।
जेहिं नाम श्रुति कीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुण आगरी ।
सो दीन्ह रिपुसूदनहिं भूपति रूपशील उजागरी ।।२।।
कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कौशलरायसों ।
बोले मनोहर वैन सानि सनेह शील सुभायसों" ।।
जनक—सम्बन्ध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये ।
इह राज साज समेत सेवक जानिये विनु गथलये ।।३।।

राम और सीता की सुन्दर परिछाहीं मणिखंभों में जगमगाती हैं।।२।। फिर वसिष्ठ ने आज्ञा दी तब वर और दुलहिन एक आसन पर बैठे।।३।। छन्दार्थ— तब जनकजी वसिष्ठ की आज्ञा पाय व्याह का साजसंभार माण्डवी श्रुतिकीर्ति, उर्मिला इन तीनों कुमारियों को बुलालाये इनमें कुशकेतु की कन्या माण्डवी जो गुण शील सुख और शोभा की खान है, सो सब रीति प्रीति समेत भरतजी को व्याह दी।।१।। जानकीजी की छोटी बहन उर्मिला सबकी सुंदरता में शिरोमणि जानकर सब प्रकार के सन्मानसहित लक्ष्मणजी को व्याह दी, जिसका नाम श्रुतिकीर्ति सुलोचनी जो सुन्दरमुखवाली और सब गुणों में आगरी थी राजा ने रूपशील उजागरी का रिपुसूदन से व्याह कर दिया।।२।। फिर जनकजी हाथ जोड़कर बंधुसमेत कौशल राजा से मनोहर वचन शीलसनेह सने स्वभाव से बोले—हे राजन्! आपके सम्बन्ध से अब हम सब भाँति से बड़े हुए यह राजसाज समेत सब विना दाम के सेवक जानो।।३।।

यह दारिका परिचारिका करपालवी करुणामई ।
अपराध क्षमियो बोलि पठये बहुत हौ ढीठीदई ।।

फिर कब राम जनकपुर ऐहैं हम नहि नगर अयोध्या जाहू ।
तुलसिदास दोऊ मिलै परस्पर नृप दशरथ मिथिलापुर राऊ ।।

मिले जनक दशरथ अतिप्रीती । करिलौकिकवैदिकसबरीती ।।१।।

शतानन्द—श्लोक—वासो यस्य समस्तजीवननिधौरत्नाकरो भूषणं
यस्यास्ते हृदि कौस्तुभं सुविमलं यस्यास्तिलक्ष्मीर्वशे ।।
वाणी यस्य मुखारविन्दविदितानन्दा सदा नन्दते ।
तस्मै लोकविभूषणाय भवते किं देयमस्मद्विधैः ।।१।।

वसिष्ठ—धन्यो मेरुगिरिर्यदेकशिखरे ब्रह्मेन्द्ररुद्रादयः ।
स्वच्छन्दं निवसन्ति स क्षितितले क्वास्तीति न ज्ञायते ।।
तां धत्ते भुजगाधिपः स च करे शम्भोरभूत्कंकणम् ।
देवोऽसौ वसति त्वदीयहृदये त्वत्तो महान्कः परः ।।२।।

दोहा—सहित वधूटिन कुमर सब, तब आये पितुपास ।
शोभा मंगलमोदभरि, उमगेउ जनु रनिवास ।।६१।।

पुनि जिवनार भई बहुभाँती । पठये जनक बुलाय बराती ।।१।।
भाँति अनेक परे पकवाने । सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने ।।२।।

यह कन्या अपनी दासी समझकर करुणा करके पालन करनी, मेरा अपराध क्षमा करना कि, मैंने तुमको बुलाकर बड़ी ढीठता की है। जनक और दशरथ बड़े प्रेम से लोक वेद की सब रीति करके मिले।।१।।

श्लोकार्थ—संपूर्ण जीवन के निधि में जिनका निवास है और जिनके हृदय में निर्मल कौस्तुभमणि भूषण है तथा जिनके वश में लक्ष्मी है प्रसिद्ध है कि, जिनके मुखारविन्द में वाणी विदित है? जिनका खड्ग निरंतर आनन्द करता है उन लोक के भूषण आप सरीखों के लिये हम क्या दे सकते हैं।।१।। वसिष्ठजी बोले मेरुगिरि धन्य है जिसके एक शिखर में ब्रह्मा, रुद्र आदिक निवास करते हैं, भूमि पर वह कहां है सो भी नहीं जाना जाता उस भूमिको शेषजी धारण करते हैं और वह शेष शंकर के हाथ का कंकणरूप भूषण हुए हैं वह देवादिदेव तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं तुमसे अधिक कौन है।।२।।

दोहार्थ—फिर सब बहुओं सहित कुमर पिता के पास आये शोभा मंगल मोद में भरकर मानो रनिवास उमँग उठा।।६१।। फिर अनेक प्रकार से ज्योंनार हुई। जनक ने बरातियों को बुला भेजा।।१।। अनेक भाँति के पकवान अमृत के समान बखाने नहीं जाते जिमाये।।२।।

इहि विधि सबही भोजन कीन्हा । आदर सहित आचमन लीन्हा ।।

दोहा—देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज ।
जनवासे गमने मुदित, सकल लोक शिरताज ।।६२।।

इति दशम दर्शन

इस प्रकार से सबने भोजन किया आदर से आचमन लिया।।३।। दोहार्थ–फिर जनकजी ने पान देकर समाजसहित दशरथ का पूजन किया और फिर सब लोक के शिरताज प्रसन्न हो जनवासे को गये।।६२।।

इति दशमदर्शन

अथ ग्यारहवाँ दर्शन

राम-राउ अवधपुर चहत सिधाये । विदा होन हम यहाँ पठाये ।।१।।
मातु मुदितमन आयसु देहू । बालक जानि करब नित नेहू ।।२।।
"सुनत वचन विलखेउ रनिवासू । बोलि न सकहिं प्रेमवश सासू ।।३।।
हृदय लगाय कुँवरि सबलीन्हीं । पतिनसौंपविनती अतिकीन्हीं ।।४।।

सुनयना,छन्द–

करि विनय सिय रामहिं समर्पी जोरि करपुनि पुनि कहै ।"
बलिजाउँ राम सुजान तुमकहँ विदित गति सबकी अहै ।।
परिवार पुरजन मोहिं राजहिं प्राणप्रिय सिय जानवी ।
तुलसी सुसहज सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी ।।१।।

राम बिदा माँगत करजोरी । कीन्ह प्रणाम बहोरिबहोरी ।।१।।

टीका–रामचंद्र बोले-महाराजा अवधपुर चलना चाहते हैं हमको विदा होने को यहां भेजा है।।१।। हे माता! मन में प्रसन्न होकर आज्ञा दो और बालक जानकर सदा प्रेम करो।।२।। वचन सुनकर रनिवास व्याकुल हो गया सास प्रेम के कारण बोल नहीं सकतीं।।३।। सब कुमारियों को माता ने हृदय से लगाया पतियों को सौंप विनती की।।४।। छन्दार्थ–विनय करके राम को सीता समर्पण की और हाथ जोड़कर माता बारंबार कहने लगी-हे राम सुजान! मैं बलि जाऊं तुमको सबकी गति विदित है कुटुम्बी, पुरवासी मुझे और राजा को जानकी प्राणों के समान जाननी। तुलसीदास कहते हैं सहज सनेह देखकर अपनी दासी करके जाननी।।१।। चौ०–९–राम बारंबार बिदा माँगते हैं बारंबार प्रणाम किया।।१।।

पुनि धीरज धरि कुँवरि हँकारी । बारबार भेंटहि महतारी ।।२।।
बन्धुसमेत जनक तब आये । सीयविलोकि नैनजलछाये ।।३।।
लीन्ह राय उरलाय जानकी । मिटी महामर्याद ज्ञानकी ।।४।।

बारहिं बार सुता उर लाई । सजि सुन्दर पालकी मँगाई ।।५।।

दोहा–प्रेम विवश परिवार सब, जान सुलग्न नरेश ।
कुँवरि चढ़ाई पालकी, सुमिरे सिद्धगणेश ।।६३।।
कोशलपति समधी जनक, सन्माने सब भाँती ।
मिले परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति ।।६४।।
सुर प्रसून वर्षहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान ।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाय निशान ।।६५।।
बीच बीच वरवास करि, मग लोगन सुखदेत ।
अवधसमीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ।।६६।।

कौशल्यादि राम महतारी । प्रेमविवशतनु दशा विसारी ।।१।।

दोहा–इहि विधि सबही देत सुख, आये राजदुवार ।
मुदित मातु परिछन करहिं, वधुनसमेत कुमार ।।६७।।

फिर धीरज धर माता ने कुमारी बुलाई और बारंबार मिली।।२।। उसी अवसर में बंधुओं समेत जनकजी आये और सीता को देख नेत्रों में जल छा गया।।३।। राजा ने जानकी को हृदय से लगाया ज्ञान की महामर्यादा मिटी।।४।। बारबार पुत्री को हृदय से लगाया सुन्दर पालकी मँगाय सजाय।।५।। दोहार्थ–सब परिवार को प्रेमवश जानकर और सुन्दर लग्न जानकर सिद्धगणेश को ध्यानधर जानकी को पालकी पर चढ़ाया ।।६३।। महाराज दशरथजी ने अपने समधी का सब भाँति से सत्कार किया और परस्पर बड़ी विनय से मिले प्रीति हृदय में नहीं समाती।।६४।। देवता प्रसन्न हो फूल बरसाते हैं अप्सरा गान करती हैं महाराज दशरथ बाजे बजवाय प्रसन्न हो अयोध्या को चले।।६५।। बीच २ में सुन्दर निवासकर मार्ग के लोगों को सुख देते हुए पवित्र दिन में अवध के समीप बरात आ पहुँची।।६६।। कौशल्यादि राम की महतारी यह समाचार सुन प्रेमवश शरीर की दशा भूल गई।।१।। दोहार्थ–इस प्रकार सबको सुख देते भगवान् राजद्वार पर आये माता प्रसन्न हो बंधुओं समेत कुमारों को आरती करने लगीं।।६७।।

निगमरीति कुलरीति[1] कर, अर्घ्य पांवड़े देत ।

---

१ राग कान्हरा–भुजनपर जननि वारि फेरि डारी ।
क्यों तोरो कोमलकर कमलन शंभु शराशन भारी ।।
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी ।
मुनिप्रसाद मेरे रामलषणकी विधि सब करवर टारी ।।
चरण रेणुले नयनन लावति क्यों मुनिवधू उधारी ।।

वधुनसहित सुत परछि[१] सब, चलीं लिवाय निकेत ।।६८।।
इन सुखते शतकोटिगुण, पावहिं मातु अनन्द ।
भाइनसहित विवाह घर, आये रघुकुलचन्द ।।६९।।
सोरठा–सियरघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिनकहँ सदा उछाह, मगलायतन रामयश ।।७०।।

इति बाल काण्ड १

लोक वेद की रीति कर अर्घ्य पांवड़े देती हुई देवताओं को मनाय कुमार और बहुओं की आरती कर भवन में लिवा चलीं।।६८।। इन सुखों से भी कोटिगुण सुख और आनन्द माता पाती हैं भाइयों सहित व्याहकर रामचन्द्र घर आये ।।६९।। सोरठार्थ–सीता और राम का विवाह जो प्रेम से गावेंगे और सुनेंगे उनको सदा उछाह रहेगा राम का यश मंगल करनेवाला है।।७०।।

इति बालकाण्ड १

कहो धों तात क्यों जीत सकल नृप बरी विदेह कुमारी ।।
दुसह रोष मूरत भृगुपति अति नृपति निकर छैंकारी ।
क्यों सौंप्यो सांरग हारि हिय करत बहुत अनुहारी ।।
उमँग उमँग आनन्द विलोकति वधुन सहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम मगन महतारी ।
१ कालिंगड़ा-निरखत रूप सिया रघुवरको छबि नहिं जात बखानी ।
आरती करत कौशल्या रानी ।।टेक।।
कनक थार गज माणिक मुक्ता भरचो वेद विधआनी ।
मान्यो मान सकल भूपनको महिमा वेद बखानी ।।
तोरन धनुष जनक गुण पूरण तीन लोक में जानी ।
जनकरायकी लज्जा राखो परशुराम हित मानी ।।
सुरपुरनारि अवधपुरवासी करत विमल यश गानी ।
नचत नवल अपसरा मुदितमन वरष सुमन हर्षानी ।।
रत्नमंदिरमे रत्न सिंहासन बैठे सारंग पानी ।
मात कौशल्या करत आरती हर्ष निरख मुसकानी ।।
दशरथसहित अवधपुरवासी उचरत जैजैवानी ।
तुंलसिदास यह अविचल जोरी भक्त अभयपद दानी ।।

रामलीला–रामायण

अयोध्याकाण्ड २

अथ प्रथम दर्शन

(रामचन्द्र सिंहासन पर बैठे हैं, नारदजी आते हैं)

एक बार जानकी समेता । बैठे प्रभु निज रुचिर निकेता ।।१।।
त्यहि अवसर मुनिनारद आये । सुरहित लागि विरंचि पठाये ।।२।।
सादर निज आसन बैठारे । जनकसुता तब चरण पखारे ।।३।।
ना०–कहमुनि तव महिमा रघुराया । मैं जानौं कछु तुम्हरी दाया ।।४।।
ब्रह्मभवन मैं रह्यों कृपाला । गावत तब गुण दीनदयाला ।।५।।
अवध चलत विरंचि मोहिं जाना । कीन्हीं विनय लागि मम काना ।।६।।
ज्यहि हित लीन मनुज अवतारा । नाथ ताहि अब करिय सँभारा ।।७।।
राम कहहु तात ब्रह्महि समुझाई । कछु दिन गये देखिहैं आई ।।८।।
रामरूप उर धरि मुनिनारद । चले करत गुणगान विशारद ।।९।।

टीका–एक समय जानकी के सहित प्रभु आसन पर विराजमान थे।।१।। उसी अवसर में नारदजी आये और ब्रह्माजी ने उनको देवताओं के निमित्त भेजा था।।२।। आदर से नारदजी को अपने आसन पर बैठाया तब जानकी ने चरण धोये।।३।। मुनि बोले–हे राम! तुम्हारी दया से मैं कुछ तुम्हारी महिमा जानता हूं।।४।। हे भगवन्! मैं ब्रह्मलोक में तुम्हारे गुण गाते हुए स्थित था।।५।। जब ब्रह्माजी ने मुझको अयोध्या चलते जाना तो मेरे कानों में लगाकर विनय की।।६।। हे नाथ! जिस निमित्त मनुष्य अवतार लिया है अब उस पर विचार करो।।७।। राम बोले–हे तात! ब्रह्मा से समझाकर कहो कुछ दिन गये हम आनकर देखेंगे।।८।। मुनि नारद राम का रूप हृदय में धारणकर गुण गान करते चले।।९।।

(राजा दशरथ की सभा)

एक समय सब सहित समाजा । राजसभा रघुराज विराजा ।।१०।।
राउस्वभाव मुकुरकर लीन्हा । बदनविलोकिमुकुटसमकीन्हा ।।११।।
श्रवणसमीपभये सित केशा । मनहुँ चौथपन अस उपदेशा ।।१२।।
नृप युवराज रामकहँ देहू । जीवन जन्म सफल करि लेहू ।।१३।।

दोहा–असविचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ ।
तनु पुलकित मन मुदित अति, गुरुहि सुनायउ जाइ ।।१।।

द०–कहेउ भुआलसुनियमुनिनायक । भयेराम सबविधिसबलायक ।।१।।
अब अभिलाष एक मन मोरे । पूजहि नाथ अनुग्रह तोरे ।।२।।
नाथ राम कीजिय युवराजू । कहिय कृपा करिप्रिय समाजू ।।३।।
मोहिं अछत अस होउ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ।।४।।
पुनि न शोच तनु रहै कि जाऊ । ज्यहि न होइ पाछे पछिताऊ ।।५।।

वशि०–दोहा–वेगिविलम्बनकरियनृप, साजिय सबै समाज ।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं युवराज ।।२।।

एक समय सब समाज सहित राजसभा में महाराज दशरथ विराजमान थे।।१०।। राजा ने स्वभाव से ही हाथ में मुकुर (दर्पण) लिया और मुख देखकर मुकुट समान किया।।११।। कानों के समीप श्वेत केश हो गया मानो चौथेपन ने यह उपदेश दिया।।१२।। हे राजन्! तुम राम को युवराज देकर अपना जन्म सफल कर लो।।१३।। दोहार्थ–ऐसा विचारकर राजा ने भला दिन और भला अवसर पाकर शरीर से पुलकित हो प्रसन्नता से गुरु से सुनाया।।१।। चौ०–दशरथजी बोले–हे मुनिराज! अब राम सब विधि से सब लायक हुए।।१।। अब जो मेरे मन में अभिलाषा है सो आपके अनुग्रह से पूरी होगी।।२।। हे नाथ! राम को युवराज करो और कृपाकर समाज करने की आज्ञा दो।।३।। मेरे होते ऐसा उछाह हो और सब लोग आनन्द को देख नेत्र सफल करें।।४।। फिर शोच नहीं कि, शरीर रहै अथवा जाय जिससे फिर पीछे पछताना न पड़े।।५।। दोहार्थ–वसिष्ठजी बोले–राजन्! अब देर न करो। सब साज सजाओ। सुदिन सुमंगल तबही है जब राम युवराज होंय।।२।।

"मुदित महीपति मन्दिर आये । सेवक सचिव सुमन्त बुलाये ।।१।।"
दश०–प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू । रामहिं राजदेहु युवराजू ।।२।।

दोहा–कहेउ भूप मुनिराजकर, जो जो आयसु होइ ।
राम राज्य अभिषेकहित, वेगि करहु सोइ सोइ ।।३।।

'तब नरनाह वशिष्ठ बुलाये । राम धाम सिख देन पठाये ।।१।।
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा । द्वार आय नायउ पद माथा ।।२।।
गहे चरण सिय सहित बहोरी । बोले राम कमल कर जोरी ।।३।।
रा०–सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगलमूल अमंगलदमनू ।।४।।

यद्यपि उचित अस बोलि सप्रीती । पठइय नाथ काज अस नीती ।।५।।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आज मम गेहू ।।६।।
आयसु होय सो करिय गुसांई । सेवक लहै स्वामि सेवकाई ।।७।।

दोहा–"सुनिसनेहसानेवचन, मुनिरघुवरहि प्रशंस ।"
राम कस न तुम कहहु अस, हंस वंश तुमहिं अवतंश ।।४।।

भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुमहिं युवराजू ।।१।।
राम करहु सब संयम आजू । जो विधि कुशल निबाहै काजू ।।२।।

प्रसन्न हो राजा मंदिर में आये सेवक मंत्री और सुमंत को बुलाया।।१। राजा ने कहा प्रसन्न होकर मुझसे गुरुजी ने कहा है कि, राम को युवराज दो।।२।। दोहार्थ–मुनिराज की जो जो आज्ञा हो वह वह रामराज्य के अभिषेक के लिए शीघ्रता से करो।।३।। चौ०–तब राजा ने वशिष्ठजी को बुलाया, वह राम के स्थान में शिक्षा देने गये।।१।। गुरु का आगमन सुनते ही रामचंद्र ने द्वारे आनकर शिर नवाया।।२।। जानकी सहित चरण पकड़े और हाथ जोड़ के रामचंद्र बोले।।३।। सेवक के घर स्वामी का आना मंगल की मूल और अमंगल का दूर करनेवाला है।।४।। हे नाथ! उचित तो ऐसा है कि काम हो तो बुला भेजो, ऐसी नीति है।।५।। प्रभुता छोड़कर प्रभु ने कृपा की आज मेरा घर पवित्र हुआ।।६।। जो आज्ञा होय सो हे प्रभु! मैं करूं, सेवक स्वामी की सेवकाई पावै।।७।। दोहार्थ–यह सनेह वचन सुन मुनि ने रघुनाथ की प्रशंसा की। हे राम! तुम सूर्यकुल में उत्पन्न होकर ऐसा क्यों न कहो।।४।। राजा ने अभिषेक का समाज सजाया है, तुम्हे युवराज देना चाहते हैं।।१।। राम के आज सब संयम करो जो विधि कुशल से सब कार्य निबाहे।।२।।

'गुरु सिख देइ राउ पहँ गयऊ । रामहृदय अस विस्मय भयऊ ।।३।।

(मन्थरा फिरती है)

देखि मन्थरा नगर बनावा । मंगल मंजुल बाजु बधावा ।।४।।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलक सुनि भय उरदाहू ।।५।।
भरत मातुपहँगइ विलखानी । का अनमनि हँसिहँसिकहरानी ।।६।।

दोहा–सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल ।
भरतलक्ष्मण रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उरशाल ।।५।।"

मन्थरा–रामहिं छांड़िकुशल केहि आजू । ताहि नरेशदेतयुवराजू ।।१।।
भा कौशल्यहि विधि अतिदाहिन । देखत गर्वरहत उर नाहिन ।।२।।
देखहु कस न जाइ सब शोभा । जो अवलोकि मोर मनक्षोभा ।।३।।

पूत विदेश न शोच तुम्हारे । जानति हौ वश नाह हमारे ।।४।।
सुनि प्रियवचन कुटिलमनजानी । झुकी रानि अवरहु अरगानी ।।५।।
कै०–पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी । तौधरिजीहकढ़ावौं तोरी ।।६।।
दोहा–काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ।।६।।

गुरु शिक्षा देकर राजा पर गये। राम के हृदय में बड़ा विस्मय हुआ कि बिना भरत के यह बात उचित नहीं।।३।। इधर मन्थरा ने देखा कि नगर बना है, अच्छे बाजे बज रहे हैं।।४।। लोगों से पूछा कि "यह क्या उछाह है" लोग बोले–रामराज्य का उछाह है। राम का तिलक सुनकर मन में दाह हुआ।।५।। और व्याकुल भरत की माता पै गई रानी हँसकर बोली, कैसे अनमनी हो रही है।।६।। दोहार्थ–जब न बोली तब कैकेयी भयभीत हो बोली–कहती नहीं कि राम और राजा प्रसन्न हैं, भरत लक्ष्मण प्रसन्न हैं, यह सुन कुबरी के मन में दुःख हुआ।।५।। चौ०–मन्थरा बोली–आज राम को छोड़ किसके कुशल है जिनको राजा युवराज देते हैं।।१।। कौशल्या को विधाता बड़ा दाहिना हुआ देखकर गर्व मन में नहीं रहता।।२।। सब शोभा तुम क्यों न जाकर देखो जो देखकर मेरे मन में क्षोभ हुआ है।।३।। पूत विदेश में है तुमको शोच नहीं है, जानती हो कि, राजा हमारे वश में हैं।।४।। यह वचन सुन कुबरी का मन कुटिल जानकर रानी क्रोधकर बोली–चुप हो।।५।। हे घर फोरी! जो फिर ऐसा कहेगी तो तेरी जीभ कढ़ा लूंगी।।६।। दोहार्थ–काने खोरे कुबड़े कुटिल कुचाली होते हैं, उनमें स्त्री हो तो विशेषकर कुटिल होगी और चेरी हो तो कहना ही क्या यह कह भरत की माता मुसुकाई ।।६।।

प्रियवादिनि शिष दीन्हचउँ तोहीं । स्वप्नेहुतोपर कोप न मोहीं ।।१।।
सुदिन सुमंगलदायक सोई । तोर कहा फुर जा दिन होई ।।२।।
जेठस्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुलरीति सुहाई ।।३।।
रामतिलक जो सांचेहु काली । मांगु देउँ मनभावत आली ।।४।।
"कौशल्यासम सब महतारी । रामहिं सहजस्वभाव पियारी ।।५।।"
मोपर करहिं सनेह विशेषी । मैं करि प्रीति परीक्षा देखी ।।६।।
जो विधि जन्म देइ करि छोहू । होहिं राम सिय पूत पतोहू ।।७।।
प्राणते अधिक राम सिय मोरे । तिनके तिलक क्षोभकस तोरे ।।८।।
दोहा–भरतशपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव ।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाव ।।७।।
मंथरा–एकहिबार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीहकरिदूजी ।।१।।
फौरे योग कपार अभागा । भलौ कहत दुख रौरेहु लागा ।।२।।

कहइँ झूँठ फुर बात बनाई । सो प्रिय तुमहि करुइ मैं माई ।।३।।
हमहूँ कहब अब ठकुर सुहाती । नाहिं तो मौन रहब दिनराती ।।४।।

चौ०–हे प्रियवादिनि! यह मैंने तुमको शिक्षा दी पर स्वप्न में भी मेरा तुझ पर कोप नहीं है।।१।। मंगलदायक वही सुदिन होगा तेरा कहना जिस दिन पूरा हो।।२।। जेठे भाई स्वामी और छोटे भाई सेवक यह सूर्यकुल की सदा की रीति है।।३।। हे आली! जो सत्य ही राम को कल तिलक है तो मांग मैं तुझको मन इच्छित दूंगी।।४।। राम को सब महतारी कौशल्या के समान स्वभाव से प्यारी हैं।।५।। और मुझ पर बड़ा प्रेम करते हैं, मैंने प्रीति परीक्षाकर देखा है।।६।। जो विधाता कृपाकर फिर जन्म दे तो रामसीता से पूत पतोहू मिलैं।।७।। मुझे राम प्राण से अधिक पियारे हैं उनके तिलक में तुझको कैसे क्षोभ हुआ।।८।। दोहार्थ–तुझे भरत की सौगन्ध है, सत्य कह। कपट दुराव छोड़ दे। हर्ष के समय विस्मय करती है इसका कारण मुझे सुना।।७।। चौ०–मन्थरा बोली–एक ही बार में सब आशा पूज गई अब तो दूसरी जीभ धर के कुछ कहा जायगा।।१।। हमारा कपार फोड़ने योग्य है जो भला कहने में तुमको दुःख लगा।।२।। जो झूंठी सच्ची बात बनाकर कहे वही तुमको प्यारी है, मैं तो कड़वी हूं।।३।। हम भी अब ठकुरसुहाती कहैंगी नहीं तो दिन रात मौन रहूंगी।।४।।

करि कुरूप विधि परवश कीन्हा । वाचाशाल हमैं तिन्ह दीन्हा ।।५।।
कोउ नृप होउ हमें का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।।६।।
जारै योग स्वभाव हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।।७।।
ताते कछुक बात अनुसारी । क्षमव देवि बड़चूक हमारी ।।८।।
तुम पूँछहु मैं कहत डराऊँ । धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ ।।९।।
प्रिय सियरीम कहै तुमरानी । रामहिंतुमप्रियसोफुरवानी ।।१०।।
रहै प्रथम अब सो दिन बीते । समयपाइरिपुहोहिं पिरीते ।।११।।
जर तुम्हारि चहसवति उपारी । रूंधहु करिउपाइ वरवारी ।।१२।।

दोहा–तुमहिं न शोच सुहाग बल निजवश जानहु राव ।
मंनमलीन मुँह मीठ नृप, राउर सरल स्वभाव ।।८।।

चतुर गँभीर राम महतारी । बीच पाइनिजबात सँभारी ।।१।।
पठये भरत भूप ननि औरे । राम मातु मत जानव रौरे ।।२।।
सेवहिं सकल सवति मोहिं नीके । गर्वित भरत मातु बलपीके ।।३।।

विधाता ने कुरूप कर परवश कर दिया और हमको वाचाशालादि किया।।५।। कोई राजा हो हमारी क्या हानि है, चेरी छोड़कर मैं रानी थोरेई हूंगी।।६।। हमारा स्वभाव जराने योग्य है,

तुम्हारा अनभल देखा नहीं जाता।।७।। इससे कुछ बात निकाली थी हे देवि! हमारी चूक क्षमा करो।।८।। तुम पूछती हो, मैं कहने से डरती हूं कि मेरा नाम घरफोरी धरा है।।९।। हे रानी! तुमने सीताराम को प्यारा कहा, तुम राम को प्रिय हो सो सब सत्य है।।१०।। सो यह पहली बात थी। अब वे दिन बीत गये, समय पर शत्रु भी प्यार करते हैं।।११।। पर सौत तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है, तुम उपायकर भली प्रकार चल सींचकर इसे रोको।।१२।। दोहार्थ–तुम्हें सुहाग के बल से शोच नहीं है, राजा को अपने वश जानती हो, राजा मन के मलीन मुख के मीठे हैं, तुम्हारा स्वभाव सरल है।।८।। चौ०–राम की महतारी चतुर और गंभीर है। समय पाकर उसने अपना काम सँभारा है।।१।। राजा ने भरत को नाना के घर भेजा है इसमें भी तुम राम की माता का मत जानना।।२।। कि सब सौत मेरी भलीभांति सेवा करें, भरत की माता पिया के बल से गर्वित है।।३।।

शाल तुम्हार कौशिलहि माई । चतुर कपट नहिं परत लखाई ।।४।।
राजहिं तुम पर प्रीति विशेषी । सवतिस्वभाव सकै नहिं देखी ।।५।।
रचि प्रपंच भूपहि अपनाई । रामतिलक हित लग्न धराई ।।६।।
भये पाख दिन सजत समाजू । तुम सुधि पायहु मोसन आजू ।।७।।
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोष हमारे ।।८।।
रामहिं तिलक कालिजो भयऊ । तुमकंहँविपति बीजविधिबयऊ ।।९।।
रेखा खैचिं कहौं बलभाषी । भामिनि भइउ दूध की माखी ।।१०।।
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ।।११।।

दोहा–कद्रू विनतहि दीन दुख, तुमहिं कौशला देव ।
भरत बंदिगृह सेइहैं, रामलषण करनेव ।।९।।

चौ०–सुन मंथरा बातफुरतोरी । दहिन आँख नित फरकत मोरी ।।१।।
दिनप्रति देखौं राति कुसपना । कहौं न तोहिं मोहवश अपना ।।२।।
कहा कहौं सखि शुद्धस्वभाऊ । दहिन वाम नहिं जानौं काऊ ।।३।।
नैहर जन्म भरव बरुजाई । जियत न करब सवति सेवकाई ।।४।।

हे माई! कौशल्या को तुम्हारा बड़ा शाल है पर उसकी चतुराई से कपट नहीं दीखता।।४।। राजा की तुम पर बड़ी प्रीति है सो सौत के स्वभाव से नहीं देख सकती।।५।। प्रपंच रचकर राजा को अपनाय राम के तिलक के निमित्त लग्न धराई ।।६।। इस समाज को सजते एक पखवारा हो गया, तुमने मुझसे आज समाचार पाये हैं।।७।। तुम्हारे राज्य में हमने खाया पहरा है, सत्य कहने से दोष नहीं है।।८।। जो कल राम को तिलक हो गया तो तुमको विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया।।९।। मैं रेखा खैंच बल से कहती हूं कि तुम दूध की मक्खी हुई हो।।१०।। जो पुत्र सहित सेवा

करोगी तो घर रह सकोगी अन्यथा नहीं।।१।। दोहार्थ–कद्रू ने जैसे विनता को दुःख दिया वैसे तुमको कौशल्या देगी, भरत बन्दीघर में पड़ेंगे, राम के लक्ष्मण अधिकारी होंगे।।९।। कैकेयी बोली–मंथरा तेरी बात सत्य है, मेरी दाहिनी आँख नित्य फरकती है।।१।। प्रतिदिन रात को कुस्वप्न देखती हूँ पर अपने मोह के कारण तुझसे नहीं कहती।।२।। क्या कहूँ सखी मेरा तो सूधा स्वभाव है, मैं तो दाहिना वाम कुछ नहीं जानती।।३।। चाहे मायके जाकर अपना जन्म गँवा दूं पर जीते जी सौत की सेवा न करूंगी।।४।।

अरि वश दैव जिआवे जाही । मरण नीक त्यहि जियबन चाही ।।५।।
मंथरा–भामिनि करहु तौ कहौं उपाऊ । हैं तुम्हरे सेवावशराऊ ।।६।।
कैकेयी–दोहा–परोंकूप तव वचन पर, सकौं पूत पति त्याग ।
कहसि मोर दुख देख बड़, कस न करब हित लाग ।।१०।।
मन्थरा–दुइ वरदान भूप सन थाती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ।।१।।
सुतहिं राज रामहिं वनवासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ।।२।।
भूपति राम शपथ जब करई । तब माँगहु जेहि वचन न टरई ।।३।।
होइ अकाज आज निशि बीते । वचन मोर प्रिय मानहु जीते ।।४।।
दोहा–बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु ।
काज सँवारहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ।।११।।

इति प्रथम दर्शन

विधाता जिसे शत्रु के वश जियावै तो उसका मरना ही अच्छा है, जीना लाभ नहीं है।।५।। मन्थरा बोली–भामिनि करो तो एक उपाय कहूँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं।।६।। दोहार्थ–कैकेयी बोली–मैं तेरे वचन से कूप में गिर पडूंगी, पूत पति त्याग दूंगी, जब तू मेरा दुःख देख ऐसा कहती है तो क्यों न हित के निमित्त करूंगी।।१०।। चौ०–मन्थरा बोली–थाती रखे हुए दोनों वरदान राजा से माँगकर छाती ठंडी करो।।१।। एक से पुत्र को राज्य दूसरे से राम को वनवास माँगकर सब सौतों का हुलास छीन लो।।२।। जब राजा राम की सौगन्ध खाँय, तब माँगियों जिससे वचनों से न टर जायँ।।३।। आज रात के बीतते ही अकाज हो जायगा। मेरा वचन सत्य मानो।।४।। दोहार्थ–इस प्रकार पातकिन ने बड़ी कुघात करके कहा कोपभवन में जाओ और सावधानी से काम सँभारकर सहसा किसी से मत पतियाना।।११।।

इति प्रथम दर्शन

अथ द्वितीय दर्शन

(कोप भवन)

(कैकेयी भूषण बसन उतारे भूमि पर पड़ी है, राजा आते हैं)

दोहा-सांझ समय सानन्द नृप, गये कैकेयी गेह ।
गमन निठुरता निकट किय, जनुधरिदेहसनेह ।।१।।
कोप भवन सुनि सकुचे राऊ । भयवश आगे परै न पाऊ ।।१।।
राजा-जाइनिकटनृपकहमृदुवानी । प्राणप्रिया केहिंहेतु रिसानी ।।२।।
छन्द-केहि हेतु रानि रिसानि परसत पाणि पतिहि निवारई ।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि विषम भांति निहारई ।।
दोउ वासना रसना दशन वर मर्म ठाहर देखई ।
तुलसी नृपति भवितव्यता वश काम कौतुक लेखई ।।१।।
राजा-अनहिततोरप्रियाकेहिकीन्हा । केहिदुइशिरकेहियमचलीन्हा ।।१।।
कहु क्यहिं रंकहि करौं नरेशू । कहु क्यहि नृपहि निकारौं देशू ।।२।।
सकौ तोर अरि अमरहु मारी । कहा कीट बपुरे नर नारी ।।३।।
जो कछू कहों कपट करि तोहीं । भामिनि राम शपथ शत मोहीं ।।४।।

(कोप भवन)

दोहार्थ-सांझसमय आनन्द से राजा कैकेयी के घर गये मानो स्नेह से देह धारण कर निठुरता के घर गमन किया।।१।। चौ०-रानी को कोपभवन में सुन राजा बोले-हे प्राणप्रिया! क्यों रिसाई हो।।२।। छन्दार्थ-हे रानी! क्यों रिसानी हो। हाथ छूते ही निवारण करने लगी मानो क्रोध करके सर्पिणी विषमता से निहारती है। दो वासना दोनों जीभे हैं। दोनों वर दांत है, मर्मस्थान देख रही है। राजा होनहार के वश काम कौतुक देखते हैं।।१।। चौ०-हे प्यारी! तुम्हारा अनहित किसने किया है, किसके दो शिर हुए और यमराज किसको लेना चाहते हैं।।१।। कहो किस कंगाल को राजा कर दूं, किस राजा को देश से निकाल दूं।।२।। अमर भी तुम्हारा शत्रु मार सकता हूं, कीट समान अन्य बापुरे नरनारियों की तो बात क्या है।।३।। हे भामिनि! जो इसमें कपटकर कहूं तो मुझे राम की सौ शपथ हैं, बात क्या है?।।४।।

विहँसि मांगु मनभावति बाता । भूषण साजु मनोहर गाता ।।५।।
भामिनि भयउ तोर मनभावा । घर घर बजत अनन्द बधावा ।।६।।

रामहिं देउँ काल्हि युवराजू । सजहु सुलोचनि मंगल साजू ।।७।।
कैकेयी दोहा–मांगु २ पै कहहु पिय, कबहूं देउ न लेहु ।
देन कहेउ वरदान दुइ, त्यउ पावत संदेहु ।।१२।।
राजा–झूठहिं दोष हमहिं जनि देहू । दुइ के चार मांगि किन लेहू ।।१।।
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाइँ बरु वचन न जाई ।।२।।
कै०–सुनहु प्राणपति भावतिजीका । देहु एक वर भरतहि टीका ।।३।।
दूसर वर मांगौं कर जोरी । नाथ मनोरथ पुरवहु मोरी ।।४।।
तापस वेश विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम वनवासी ।।५।।
सुनि तिय वचन भूप उरशोकू । शशि कर छुवत विकल जिमिकोकू ।।६।।
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनुधरि शोचलागुजनुशोचन ।।७।।
कैकेयी—भरत कि राउर पूर न होहीं । आनेहु मोल विसाहि कि मोहीं ।।८।।
जो सुनि शर सब लाग तुम्हारे । काहे न बोलहु वचन सँभारे ।।९।।

हँसकर मनभावती बात मांग मनोहर शरीर पर भूषण सजा।।५।। हे भामिनि! तेरा मनभावा हुआ घर घर आनंद बधाये बजते हैं।।६।। राम को कल युवराज दूंगा। हे सुलोचनि! मंगल साज सजाओ।।७।। दोहार्थ–कैकेयी बोली–प्रीतम मांग मांग तो कहते हो पर कभी लेते देते नहीं। दो वरदान देने कहे उनके पाने में भी सन्देह है।।१२।। चौ०–राजा बोले–हमको झूंठ दोष मत दो, दो के चार क्यों न माँग लो।।१।। रघुकुल की रीति सदा चली आई हैं, प्राण जायँ पर वचन नहीं जाते।।२।। कैकेयी बोली–हे प्राणपति! मेरे जी की भावती सुनो, एक वर तो यह कि, भरत के टीका दो।।३।। दूसरा वर हाथ जोड़कर मांगती हूं, नाथ मेरे मनोरथ पूरे करो।।४।। तपस्वियों का वेष धारण विशेष उदासी रूप से राम चौदह वर्ष वनवासी हों।।५।। स्त्री के वचन सुन राजा के मन में शोक हुआ जैसे चंद्रकिरण छूकर चकवा चकई व्याकुल होते हैं।।६।। माथे पर हाथ धर दोनों नेत्र मूंद मानो शोच ही तनु धरकर शोच करने लगा।।७।। रानी बोली–क्या भरत तुम्हारे पूत नहीं हैं क्या मुझे मोलबिसहि कर लाये हो।।८।। सुनकर तुमको बाणों के समान लगा, फिर सँभालकर वचन क्यों नहीं बोले।।९।।

देहु उतर अस कहहु कि नाहीं । सत्य सिंधु तुम रघुकुल माहीं ।।१०।।
देन कह्यउ वर अब जनि देहू । तजहु सत्य जग अपयश लेहू ।।११।।
सत्य सराहि कह्यउ वर देना । जान्यहु लेइहि मांगि चबेना ।।१२।।
शिबिदधीचिबलि जो कछु भाषा । तनुधनतजेउबचनपनराखा ।।१३।।

बोले राउ कठिन करि छाती । वाणी विनय न ताहि सुहाती ।।१४।।
राजा–मोरे भरत राम दोउ आंखी । सत्य कहौं करि शंकर साखी ।।१५।।
प्रिया वचन कस कहसि कुभांती । प्रीति प्रतीति रीति करि घाती ।।१६।।
अवशि दूत पठउब मैं प्राता । ऐहैं वेगि सुनत दोउ भ्राता ।।१७।।
सुदिन साधि सब साज सजाई । दैहौं भरतहि राज्य बजाई ।।१८।।

दोहा–लोभ न रामहिं राज्यकर, बहुत भरतपर प्रीति ।
मैं बड़छोट विचार करि, करत रहेउँ नृप नीति ।।१३।।

राम शपथ शत कहौं स्वभाऊ । राममातु मोहिं कहा न काऊ ।।१।।
मैं सब कीन्ह तोहिं बिन पूंछे । ताते परेउ मनोरथ छूंछे ।।२।।
रिस परिहरि अब मंगल साजू । कछु दिन गये भरत युवराजू ।।३।।

या उत्तर दो वा नाहीं करो तुम रघुकुल में सत्यसन्ध, हो।।१०।। वर जो देने कहा अब मत दो, सत्य त्यागकर जगत् में अपयश लो।।११।। सत्य सराहकर वर देने को कही सो जाना कि, यह चबेना ही माँग लेगी।।१२।। राजा शिवि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा तन प्राण त्याग करके भी अपना प्रण रखा।।१३।। राजा कठिन छाती करके बोले परन्तु विनय की बाणी उसको नहीं सुहाती।।१४।। कि, मेरे भरत और राम दोनों पुत्र हैं शंकर को साखीकर सत्य कहता हूं।।१५।। हे प्रिये! कुभाँति के वचन क्यों कहती हो जो प्रीति प्रतीत में घात करनेवाले हैं।।१६।। अवश्य ही मैं प्रभात समय दूत भेजूंगा सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आवेंगे।।१७।। सुदिन साध साज और समाज बनाकर भरत को राज्य मंगलपूर्वक दूंगा।।१८।। दोहार्थ- राम को राज्य का लोभ नहीं भरत पर बहुत प्रीति है मैं तो बड़े छोटे का विचार कर राजनीति करता रहा।।१३।। चौ०–मैं राम की सौ शपथ कर स्वभाव से कहता हूं राम की माता ने मुझे कुछ नहीं कहा।।१।। पर मैंने यह सब तुझसे बिना पूंछे किया इससे मेरे मनोरथ छूछे पड़ गये।।२।। क्रोध को छोड़कर अब मंगल साजो कुछ दिन बीतने पर ही भरत को युवराज होगा।।३।।

एकहि बात मोहिं दुख लागा । बर दूसर असमंजस मांगा ।।४।।
अजहूँ हृदय दहत त्यहिं आंचा । रिसपरिहास कि सांचहु सांचा ।।५।।
कहु तजि रोष राम अपराधू । सब कोउ कहत राम सुठि साधू ।।६।।

दोहा–प्रिया हास रिसि परिहरहु, मांगु विचारि विवेक ।
ज्यहि देखों अब नयन भरि, भरतराज्य अभिषेक ।।१४।।

जियै मीन वरुवारि विहीना । मणि विनु फणिक जियै दुखदीना ।।१।।
कहौं स्वभाव न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ।।२।।

समुझि देखु तैं प्रिया प्रवीना । जीवन राम दरस आधीना ।।३।।
कै-कहहु करहु किन कोटि उपाया । इहां न लागिहि राउरि माया ।।४।।
देहुकि लेहु अयशकरि नाहीं । मोहिं न बहु परपंच सुहाहीं ।।५।।
राम साधु तुम साधु सुजाना । राम मातु तुम भलि पहिंचाना ।।६।।
जस कौशला मोर भल ताका । तस फल देउँ उन्हैं करि शाका ।।७।।

दोहा–होत प्रात मुनि वेष धरि, जो न राम वन जाहिं ।
मोर मरण राउर अयश, नृप समझहु मन माहिं ।।१८।।

पर एक बात का ही मुझे दुःख लगा है दूसरा वर असमंजस मांगा है।।४।। अब तक उसकी आंच से मन जलता है वह रिसमें वा हँसी में सत्य कहा है।।५।। क्रोध त्यागकर राम का अपराध कह, सब कोई कहते हैं कि, राम बड़े साधु हैं।।६।। दोहार्थ–हे प्रिया! हास और रिस छोड़कर विवेक से विचार कर मांगो जिससे जीतेजी भरत के राज्य का अभिषेक देख लूं।।१४।। चौ०–चाहै जलके बिना मछली तथा मणि बिना सर्प जी जाय ।।१।। पर स्वभाव से कहता हूं मेरे मन में छल नहीं है राम के बिना मेरा जीवन नहीं है।।२।। हे प्रवीण प्रिया! तू यह समझ देख कि मेरा जीवन राम के दर्शन के अधीन है।।३।। कैकेयी बोली चाहै कोटि उपाय कहो करो पर यहाँ आपकी माया न लगेगी ।।४।। या दो या नहीं करके अपयश लो मुझे बहुत प्रपंच अच्छे नहीं लगते।।५।। राम भी साधु तुम भी सुजान भले हो राम की माता भली है तुमने उसे भली भाँति पहचाना है।।६।। जैसा कौशल्या ने मेरा भला ताका है वैसा फल शाका करके उनको दूंगी।।७।। दोहार्थ–प्रभात होते ही मुनि का वेष धारणकर जो राम वन को न गये तो मेरा मरण और आपका अपयश होगा। यह मन में जान लो।।१५।।

जो अन्तहु अस करतब रहेऊ । मांगु मांगु केहि केवल कहेऊ ।।१।।
छांड़हु वचन कि धीरज धरहू । जनि अबलाइव करुणा करहू ।।२।।

दोहा–मर्म वचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर ।
लाग्यउ तोहिं पिशाच जनु, काल कहावत मोर ।।१६।।

राजा–चहत न भरत भूपपद भोरे । विधिवश कुमति बसी उर तोरे ।।१।।
सो सब मोर पाप परिणामू । कछु न बसाइ भयो विधि वामू ।।२।।
सुबस बसहि पुनि अवध सुहाई । सब गुणधाम राम प्रभुताई ।।३।।
करिहैं भाइ सकल सेवकाई । होई है तिहुँ पुर राम बड़ाई ।।४।।
तोर कलंक मोर पछिताऊ । मुयहु मेटि नहिं जाइहि काऊ ।।५।।
अब तोहिं नीक लागु कर सोई । लोचन ओट बैठ मुख गोई ।।६।।

जौलौं जियौ कहौं करजोरी । तौलौं जनि कछु कहसि बहोरी ।।७।।
फिर पछितैहसि अन्त अभागी । मारसि गाय नाहरू लागी ।।८।।
दोहा–द्वारभीर सेवक सचिवं, कहहिं उदय रवि देखि ।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारण कवन विशेषि ।।१७।।

(मूर्च्छित होते हैं)

जो अंत में तुम्हारा यही कर्तव्य था तो मांग मांग किसके बल से कहा।।१।। या वचन छोड़ो या धीरज धरो स्त्री के समान रुदन मत करो।।२।। दोहार्थ–यह मर्म वचन सुन राजा बोले–इसमें तेरा कुछ दोष नहीं है तुझे एक पिशाच लिपटा है जो मेरा काल कहाता है।।१६।। चौ०–राजा-भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते प्रारब्ध के वश से तेरे मन में कुबुद्धि वसी है।।१।। सो सब मेरे पाप का परिणाम है कुछ बसाता नहीं विधाता वाम हो गया है।।२।। फिर अयोध्या सुवस बसेगी सब गुणों के धाम राम की प्रभुताई होगी।।३।। सब भाई सेवा करेंगे तीनों पुर में राम की प्रभुताई बड़ाई होगी।।४।। तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरे से भी न मिटेगा न जायगा।।५।। अब तुझे जो अच्छा लगे सो कर नेत्रों की ओट में मुख छिपा बैठ।।६।। अब मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि, जब लों जियों तबलों फिर कुछ मत कह।।७।। हे अभागी फिर अन्त में पछतायगी नाहरू के निमित्त गाय मारती है।।८।। यह कह राजा (मूर्च्छित हुए) दोहार्थ–द्वारे पर सेवक सचिवों की भीर है सूर्य का उदय देख कहते हैं क्या कारण है जो अभी तक राजा नहीं जागे।।१७।।

मंत्री आदि–जाहु सुमंत जगावहु जाई । कीजिय काज रजायसु पाई ।।१।।
गै सुमंत नृप मंदिर माहीं । देखि भयानक जात डराहीं ।।२।।
कहि जयजीव बैठि शिर नाई । देखि भूप गति गयउ सुखाई ।।३।।
सचिव सभीत सकहि नहिं पूछी । बोली अशुभ भरी शुभ छूछी ।।४।।
कैकेयी–दोहा–परी न राजहिं नींद निशि, मर्मजानु जगदीश ।
राम राम रट भोर किय, हेतु न कहेउ महीश ।।१८।।
आनहु रामहिं वेगि बुलाई । समाचार तब पूछहु आई ।।१।।
चल्यउ सुमन्त राउ रुखजानी । लखी कुचाल कीन्ह कछु रानी ।।२।।
समाधान मनकर सबहीका । गये जहां दिनकर कुलटीका ।।३।।
राम सुमंतहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता सम लेखा ।।४।।
निरख वदन कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहि चलेउ लिवाई ।।५।।

(रामचन्द्र पिता के समीप जाते हैं)

राम–कहु मोहिं मातु तात दुख कारण । करिय यतन ज्यहि होइ निवारण ।।
कैकेयी–सुनहु राम सब कारण एहू । राजहिं तुम पर बहुत सनेहू ।।७।।

चौ०–जाओ सुमन्त जगाओ आज्ञा पाय काज करो।।१।। सुमन्त राजमंदिर में गये भयानक देख जाने में डरते हैं।।२।। जयजीव कह शिर नवाय बैठ गये राजा की गति देखकर सूख गये।।४।। दोहार्थ–कैकेयी–रात राजा को नींद नहीं परी जगदीश्वर ही इसका हेतु जानता है, राम राम रटकर सबेरा किया पर मर्म नहीं कहा है।।१८।। चौ०– तुम राम को शीघ्र बुलाकर लावो तब समाचार पूछना।।१।। राजा का रुख जानकर सुमन्त चले और जाना कि रानी ने कुछ कुचाल की है।।२।। सबका मन सावधानकर सुमन्त राम के निकट गये।।३।। राम ने सुमन्त को आता देख पिता के समान जान आदर किया।।४।। मुख देख राजा की आज्ञा सुनाय राम को लिवा ले चला।।५।। राम जाकर बोले हे माता! मुझे पिता के दुःख का कारण कहो वह यत्न करें जिससे निवारण हो।।६।। कैकेयी बोली–सुनो राम! सब कारण यह है कि राजा का तुम पर बहुत प्रेम है।।७।।

देन कह्यउ मोहिं दुइ वरदाना । मांगेउ जो कछु मोहिं सुहाना ।।८।।
सो सुनि भयउ भूप उर शोचू । छांड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ।।९।।
दोहा–सुतसनेह इत वचन उत, संकट परउ नरेश ।
सकहु तो आयसु शीशधरि, मेटहु कठिन कलेश ।।१९।।
"सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई । बैठी जनु तनु धरि निठुराई ।।१।।"
रा०–सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु वचन अनुरागी ।।२।।
तनय मातु पितु पोषणहारा । दुर्लभ जननी यह संसारा ।।३।।
दोहा–मुनिगण मिलन विशेष वन, सबहि भांति भल मोर ।
तेहिमहँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ।।२०।।
भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू । विधिसबविधि मोहिं सन्मुख आजू ।।१।।
जो न जाहुँ वन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहिं मूढ़ समाजा ।।२।।
अम्ब एक दुख मोहिं विशेषी । निपट विकल नरनायक देखी ।।३।।
थोरहि बात पितहि दुखभारी । होत प्रतीति न मोहिं महतारी ।।४।।
कै–शपथ तुम्हारि भरत कै आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ।।५।।

मुझे दो वरदान देने कहे थे जो मुझे अच्छे लगे सो मैंने मांगे ।।८।। सो सुनकर राजा के मन में

सोच हुआ तुम्हारा संकोच छोड़ नहीं सकते हैं।।९।। दोहार्थ–इधर पुत्र का स्नेह उधर वचन राजा को संकट पड़ा है यदि कर सको तो शिर पर आज्ञाधर राजा का कठिन क्लेश मेटो।।१९।। चौ०–सब प्रसंग राम को सुनाकर मानो निठुराई ही अपना शरीर धर बैठी है।।१।। रामचंद्र बोले–सुनो माता वही पुत्र बड़भागी है जो पिता माता के चरणों में प्रेम करता है।।२।। हे माता! माता-पिता का पोषण करनेवाला पुत्र इस संसार में बड़ा दुर्लभ है।।३।। दोहार्थ–विशेषकर वन में मुनियों के समूह मिलेंगे, मेरा सबही भांति से भला होगा उसमें पिता की आज्ञा और फिर माता तुम्हारी संमति है।।२०।। चौ०–प्राणप्रिय भरत को राज्य मिले मुझे तो आज सब प्रकार विधाता दाहिना है।।१।। जो ऐसे काम को भी वन में न जाऊं तो मूढ़ समाज में मुझे प्रथम गिनो।।२।। पर माता मुझे एक यही विशेष दुःख है कि, राजा बहुत व्याकुल हैं।।३।। थोरी बात और पिता को भारी दुःख है. हे माता! मुझे प्रतीति नहीं होती।।४।। कैकेयी बोली तुम्हारा सौगन्ध भरत की आन है मैंने दूसरा हेतु कुछ नहीं जाना है।।५।।

तुम अपराध योग नहिं ताता । जननी जनकबन्धु सुखदाता ।।६।।
पितहि बुझाइ कहौ बलि सोई । चौथेपन अघ अयश न होई ।।७।।
दोहा–गै मूर्च्छा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह ।।२१।।
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरण परत नृप राम निहारे ।।१।।
लिये सनेह विकल उरलाई । गै मणि फणिक बहुरि जिमि पाई ।।२।।
रामहिं चितै रहे नरनाहू । चला विलोचन वारि प्रवाहू ।।३।।
राम–तात कहौं कछु करौं ढ़िठाई । अनुचित क्षमब जानि लरिकाई ।।४।।
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहे न मोहिं कहि प्रथम जनावा ।।५।।
दोहा–मंगल समय सनेह वश, शोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हर्षि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ।।२२।।
धन्य जन्म जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुन जासू ।।१।।
चारि पदारथ करतल जाके । प्रिय हितु मातु प्राणसम जाके ।।२।।

हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो माता पिता बन्धुजनों को सुख देते हो।।६।। मैं बलि जाऊँ तुम पिता को बुझाकर वही करो जिससे चौथे पथ में उनका अपयश न हो पाप न लगे।।७।। दोहार्थ–इसी समय मूर्च्छा जाने से राम को स्मरण कर राजा ने करवट ली और मन्त्री ने राम का आगमन कह समयानुसार विनय की।।२१।। चौ०–मन्त्री ने संभार के राजा को बैठाया और राजा ने राम को चरणों में पड़ता देखा।।१।। स्नेह से व्याकुल हो हृदय से लगाया मानों सर्प ने गई हुई मणि फिर पाई ।।२।। राजा रामचन्द्र को देखते रहे नेत्रों से जल का प्रवाह बह चला।।३।। राम

बोले–हे पिताजी! कुछ ढ़िठाई कर कहता हूं, लरिकाई जानकर अनुचित क्षमा करना।।४।। अति छोटी बात के निमित्त दुःख पाया है मुझे पहिले ही क्यों न कह दिया।।५।। दोहार्थ–हे पिता! यह मंगल का समय है स्नेह के वश शोच त्याग करो मन में प्रसन्न हो आज्ञा दो यह कह प्रभु का शरीर पुलकित हुआ।।२२।। पृथ्वी में उसका धन्य जन्म है जिसका चरित्र सुनकर पिता को आनन्द हो।।१।। उसके हाथ में चारों पदार्थ हैं जिसको माता पिता प्राणों के समान प्रिय हैं।।२।।

आयसु पालि जन्मफल पाई । ऐहौं बेगहि होहु रजाई ।।३।।
बिदा मातु सन आवौं मांगी । चलिहौं बनहि बहुरि पगलागी ।।४।।
असकहि रामगमन तब कीन्हा । भूपशोकवशउतर न दीन्हा ।।५।।

इति द्वितीय दर्शन

आज्ञा पाल जन्म का फल पाय शीघ्र आऊंगा आज्ञा हो।।३।। माता से बिदा मांग जाऊँ फिर चरणों को प्रणाम कर वन जाऊंगा।।४।। यह कह रामचन्द्र गये राजा ने शोक के मारे उत्तर न दिया।।५।।

इति द्वितीय दर्शन

अथ तृतीय दर्शन

राम का माता और जानकी से सम्वाद

(कौशल्यादि बैठी हैं रामचन्द्र आनकर प्रणाम करते हैं)

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नायउ माथा ।।१।।
दीन्ह अशीश लाइ उरलीन्हें । भूषणवसन निछावर कीन्हें ।।२।।
कौ०–कहहु तात जननी बलिहारी । कबहिं लग्न मुदमंगलकारी ।।३।।
दोहा–ज्यहि चाहत नर नारि सब, अति आरत इहिभाँति ।।४।।
जिमि चातकिचातक तृषित, वृष्टि शरदऋतु स्वाति ।।२३।।
तात जाऊँ बलि बेगि अन्हाहू । जो मनभाव मधुर कछुखाहू ।।१।।
पितु समीप तब जायहु भैया । भइ बड़ि बार जायबलि मैया ।।२।।

राम का माता से बिदा होना

(कौसल्या बैठी हैं रामचन्द्र माता के पास आते हैं)

रघुनाथजी ने दोनों हाथ जोड़ प्रसन्न हो माता के चरणों में शिर नवाया ।।१।। माता ने आशीश दे हृदय लगाया भूषण वस्त्र निछावर किये।।२।। और बोली कहो पुत्र मैं बलिजाऊं वह

तुम्हारी मंगलकारी लग्न कब हैं।।३।। दोहार्थ–जिसको सब नरनारी इस प्रकार चाहते हैं जैसे शरदऋतु में चातक स्वाति बून्द चाहता है।।२१।। हे तात! बलिजाऊँ स्नान कर लो मन भावित कछु मधुर खाओ।।१।। तब पिता के समीप दोनों भैया जैयो बड़ी देर हो गई माता बलिहारी जाती है।।२।।

राम–पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।३।।
दोहा–वर्ष चारिदश विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान।
आय पाँय पुनि देखिहौं, मनजनि करसि मलान।।२४।।
धरि धीरज सुतवदन निहारी। गदगदवचन कहति महतारी।।१।।
कौ०–तात पितहि तुम प्राण पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।।२।।
राज्य देन यह शुभ दिनसाधा। कह्योउजान वनकेहि अपराधा।।३।।
तात सुनावहु मोहीं निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृशानू।।४।।
दोहा–निरखि राम रुख सचिवसुंत, कारण कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक गति, दशा वरणि नहिं जाइ।।२५।।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्म्मकटीका।।१।।
दोहा–राज्य देनकह दीन्ह वन, मोहिं न दुख लवलेश।
तुमविन भरतहि भूपतिहि, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश।।२६।।
जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहजानि बड़ि माता।।१।।
जो पितु मातु कहैं वन जाना। तौ कानन शत अवध समाना।।२।।

रामचंद्र बोले पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहां सब भांति से मेरा बड़ा काज होगा।।३।। दोहार्थ–चौदह वर्ष वन में बस पिता के वचन मान फिर आकर तुम्हारे पगदर्शन करूंगा मन में दुःखी न होना।।२४।। चौ०–कौशल्या धीरज धर पुत्र का मुख देख गद्गद वचन बोली।।१।। हे पुत्र! तुम पिता को प्राणपियारे हो तुम्हारे चरित्र वे सदा देख प्रसन्न रहे।।२।। राज्य देने को अच्छा दिन साधा अब किस अपराध से वन जाने को कहते हैं।।३।। हे तात! मुझे तो इसका कारण सुनाओ सूर्यवंश में कौन अग्नि हुआ।।४।। दोहार्थ–राम का रुख देखकर मन्त्री सुत ने सब कारण समझाकर कहा, यह प्रसंग सुनकर मौन हुई दशा नहीं कही जाती।।२५।। चौ०–और बोली पुत्र बलिजाऊँ अच्छा किया पिता की आज्ञा सब धर्म से अधिक है।।१।। दोहार्थ–राज्य देने को कहकर वन दिया इसका मुझे तनक दुःख नहीं परन्तु तुम्हारे बिना भरत, राजा और प्रजा को बड़ा क्लेश होगा।।२६।। हे तात! जो केवल पिता की आज्ञा है तो माता को बड़ी जान मत जाओ।।१।। और जो पिता माता दोनों ने वन जाना कहा है तो वन सौ अवध के समान है।।२।।

पितु वनदेव मातु वनदेवी । खग मृग चरण सरोरुहसेवी ।।३।।
अन्तहु उचित नृपहि वनवासू । वय विलोकि हिय होत हरासू ।।४।।
बड़भागी वन अवध अभागी । जो रघुवंशतिलक तुम त्यागी ।।५।।
जो सुत कहौ संग मोहि लेहू । तुम्हारे हृदय होइ संदेहू ।।६।।
पुत्र परमप्रिय तुम सबहीके । प्राण प्राणके जीवन जीके।।७।।
ते तुम कहहु मात वन जाऊँ । मैं सुनिवचन बैठि पछिताऊँ ।।८।।

दोहा—यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ ।
मानि मातु के नात बलि, सुरति विसरि जनि* जाइ ।।२७।।

देव पितर सब तुमहि गुसाईं । राखहिं पलक नयनकी नाईं ।।१।।
अस विचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहि भेंटहु आई ।।२।।

पिता वनदेव और माता वनदेवी हैं खग मृग चरणकमलों के सेवी हैं।।३।। अन्त में भी राजा को वनवास उचित है पर अवस्था देखकर मन हिरासा होता है।।४।। वन बड़ भागी अवध बड़ा अभागी है। हे रघुवंशतिलक! जो तुमने उसको त्यागन किया।।५।। हे पुत्र! जो मैं कहूँ कि मुझे भी संग ले चलो तो तुम्हारे मन में संदेह होगा।।६।। हे पुत्र! तुम सबके परमप्रिय प्राण के प्राण और जीवन के जीवन हो।।७।। वे तुम कहते हो हे माता! मैं वन जाता हूं और मैं यह वचन सुन बैठकर पछिताऊं।।८।। दोहार्थ—यह विचार झूँठा स्नेह बढ़ाकर हठ नहीं करती मैं बलिजाऊँ। कहीं माता के नाते की सुरत मत भुला देना।।२७।। चौ०—हे पुत्र! सब देवता पितर तुमको पलक जैसे नेत्रों को रखते हैं ऐसे रखें।।१।। ऐसा विचारकर वह उपाय करो कि, सबसे जीते जिससे आनकर मिलो।।२।।

जाहु सुखेन वनहि बलिजाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ।।३।।

राग सोरठा—राम हौं कौन जतन घररहिहौं ।।टेक।।
बारबार भरि अंक गोदमें ललन कौनसों कहिहौं ।
इहि आंगन विहरत मेरे बारे तुम जो संग शिशु लीन्हें ।
कैसे प्राण रहत अब तुम विन बड़ विनोद सुत कीन्हें।।रामहौं०।।
जिन श्रवणनि कल वचन तिहारे सुनति रहौं अनुरागी ।
तिन श्रवणन वनगमन सुनति हौं मोते कवन अभागी।।रामहौं०।।
युगसम निमिष जाहिं रघुनन्दन वदनकमल विनु देखे ।
जो तनु रहै अवधिबीते बलि कहा प्रीति इहिलेखे।।रामहौं०।।
तुलसीदास प्रेमवश श्रीहरि देखि विकल महतारी ।
गद्गद कंठ नैन जल भर फिरि आवन कह्यो मुरारी।।रामहौं०।।

यहि बिधि विलपि चरण लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ।।४।।
राम उठाय मातु उर लावा । कहिमृदुवचन बहुत समुझावा ।।५।।

दोहा–समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय ।
जाइ सासु पग कमल युग, बंदि बैठि शिर नाय ।।२८।।

मंजु विलोचन मोचति वारी । बोली देखि राम महतारी ।।१।।
कौ०–तात सुनहु प्रिय अति सुकुमारी । सासु श्वशुर परिजनहिंपियारी ।।२।।

दोहा–पिता जनक भूपालमणि, श्वशुर भानुकुल भान ।
पतिरविकुल कैरव विपिन, विधु गुणरूप निधान ।।२९।।

मैं पुनि पुत्रवधू प्रियपाई । रूप राशि गुणशील सुहाई ।।१।।
नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई । राखेउँप्राण जानकिहि लाई ।।२।।
पलँग पीठ तजिगोद हिंडोरा । सियन दीनपगु अवनि कठोरा ।।३।।
जिवनमूरि जिमि जुगवति रहेऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहेऊं ।।४।।
सो सिय चलन चलत वन साथा । आयसु काह होय रघुनाथा ।।५।।

सुख से वन को जाओ बलिजाऊँ यहां के कुटुम्बी जन परिजन गांव को अनाथ करो।।३।। इस प्रकार विलापकर चरणों में लिपट गई अपने को परम अभागिनी जाना ।।४।। राम ने माता को उठाय हृदय से लगाया कोमल वचन कह बहुत समझाया।।५।। दोहार्थ–उसी समय समाचार सुन जानकी व्याकुल हो उठी और जाकर सास के दोनों पदकमलों में शिर नवाय बैठी।।२८।। चौ०–उज्ज्वल नेत्रों से जल त्यागने लगी सो देखकर राम की महतारी बोली–हे तात! सुनो जानकी बड़ी सुकुमारी है, सास श्वसुर कुटुम्बियों को प्यारी है।।२।। दोहार्थ–राजाओं में शिरोमणि जनक पिता हैं, भानुकुलभानु श्वशुर हैं, सूर्यकुलके कुमुद वन के खिलानेवाले पति रूपगुणनिधान तुम हो।।२९।। चौ०–मैंने प्रिय पुत्रवधू पाई है जो रूप की राशि गुण शील में सुहाई है।।१।। नेत्रों की पुतली के समान प्रीति बढ़ाई और प्राणों के समान जानकी समझी।।२।। पलंग चौकी गोदी हिंडोरा छोड़कर जानकी ने कभी कठोर भूमि पर पग नहीं दिया।।३।। जीवन मूरि के समान देखती रही, कभी दीवे की बत्ती उसकाने को भी न कहा।।४।। वह जानकी वन को तुम्हारे संग चलना चाहती है, हे राम! क्या आज्ञा है।।५।।

सियवन वसहि तात केहि भांती । चित्रलिखित कपि देखि डराती ।।६।।
अस विचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई ।।७।।
जो सिय भवन रहै कह अम्बा । मोकहँ होय प्राण अवलम्बा ।।८।।

दोहा–"कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगट विपिन गुणदोष ।।३०।।

राम–राजकुमारि सिखावन सुनहू । आनभांति जियजनि कछु गुनहू ।।१।।
आपन मोर नीक जो चहहू । वचन हमार मान घर रहहू ।।२।।
आयसु मोर सासु सेवकाई । सबविधि भामिनि भवन भलाई ।।३।।
यहिते अधिक धर्म नहिं दूजा । सादर सासु श्वशुर पद पूजा ।।४।।
जब जब मातु करिहिं सुधिमोरी । होइहि प्रेमविकलमति भोरी ।।५।।
तब तब तुम कहि कथा पुरानी । सुंदरि समझायहु मृदुवानी ।।६।।
कहौं स्वभाव शपथ शत मोहीं । सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं ।।७।।

दोहा–गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल, पाइय विनहिं कलेश ।
हठ वश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश ।।३१।।

हे तात! जानकी वन में किस प्रकार रह सकती है, वह तो तस्वीर में लिखे कपियों को देखकर डरती है।।६।। ऐसा विचारकर जो आज्ञा हो मैं जानकी को वही शिक्षा दूँगी।।७।। जो सीता घर में रहेगी तो मुझे प्राणों का अवलम्ब होगा।।८।। दोहार्थ–रामचन्द्र ने विवेक भरे वचन कहकर माता को समझाया और वन के गुण दोष कहते जानकी को समझाने लगे।।३०।। चौ०–हे राजकुमारि! सिखावन सुनो अन्य भाँति से मन में मत मानना।।१।। जो मेरा और अपना भला चाहो तो हमारे वचन मानकर घर रहो।।२।। मेरी आज्ञा है सास की सेवा करो हे भामिनी! सब विधि से घर में रहना भला है।।३।। इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं है कि आदरपूर्वक सास श्वसुर के पद की पूजा करो।।४।। जब जब माता मेरी सुधि करे और प्रेम से उनकी मति व्याकुल हो जाय।।५।। हे सुन्दरि! तब तब तुम पुरानी कथा कह कोमल वाणी से उनको समझाना।।६।। मैं सौ शपथकर स्वभाव से कहता हूँ–हे सुमुखि! मैं तुमको माता के ही निमित्त रखता हूं।।७।। दोहार्थ–गुरु और वेद सम्मत धर्म का फल इससे बिना क्लेश मिलता है हठ करने से गालव और नहुष राजा ने बड़े संकट सहे हैं।।३१।।

मैं पुनि करि प्रमाण पितु वानी । वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी ।।१।।
दिवस जात नहिं लागहि बारा । सुंदरि सिखवनि सुनहु हमारा ।।२।।
जो हठ करहु प्रेमवश वामा । तौ तुम दुख पाउब परिणामा ।।३।।
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर घाम हिमवारि बयारी ।।४।।
कुश कंटक मग कंकर नाना । चलब पयादेहि विनुपत्रत्राना ।।५।।
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमि धर भारे ।।६।।
कन्दर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ।।७।।
भालु बाघ वृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ।।८।।

दोहा–भूमि शयन वलकल, वसन, असन कंद फल मूल ।
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, समय २ अनुकूल ।।३२।।

नर अहार रचनीचर करहीं । कपटवेषविधि कोटिन धरहीं ।।१।।
लागै अति पहारकरपानी । विपिन विपति नहिं जातबखानी ।।२।।
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये ।।३।।
रहहु[१] भवन अस हृदय विचारी । चन्द्रवदनि दुख कानन भारी ।।४।।

चौ०–हे सुमुखि सयानी! मैं भी पिता की आज्ञा मान शीघ्र लौटूँगा।।१।। दिन जाते देर नहीं लगती, हे सुन्दरी! हमारी सीख मानो।।२।। हे प्रिये! जो प्रेमवश तुम हठ करेगी तो परिणाम में दुःख पाओगी।।३।। वन बड़ा कठिन और भयंकर है, कड़ी धूप बड़ा जाड़ा और बड़ी हवा चलती है।।४।। मार्ग में कुश कांटे और कंकर होते हैं, पादत्रानके विना पयादे चलना होगा।।५।। तुम्हारे चरणकमल बड़े कोमल उज्ज्वल हैं, मार्ग बड़े अगम पर्वतों से व्याप्त हैं।।६।। कंदर, खोह, नदी, नद, नाले बड़े अगम अगाध हैं निहारे नहीं जाते।।७।। रीछ सिंह, भेड़िये हाथी बड़ा शब्द करते हैं जिसे सुन धीरज भागता है।।८।। दोहार्थ–पृथ्वी पर सोना, बल्कल वस्त्र पहरना, खाने को कन्द मूल फल और वह भी क्या सब दिन मिलेंगे समय समय पर मिलेंगे।।३२।। चौ०–राक्षस मनुष्यों का आहार करते हैं कोटिभांति से कपटवेष धरते हैं।।१। पहाड़ का पानी बहुत लगता है वन की विपत्ति बखानी नहीं जाती।।२।। इस गहन वन की सुधि आने से धीर भी डर जाते हैं, हे मृगलोचनि! तुम स्वभाव से ही डरनेवाली हो।।३।। ऐसा मन में विचार घर रहो। हे चन्द्रवदनि! वन में बड़ा दुःख है।।४।।

"वरवसरोकि विलोचन वारी । धरि धीरज उर अवनिकुमारी ।।५।।
लागि सासु पद कह कर जोरी । क्षमब मातुबड़ अविनय मोरी ।।६।।
सी०–दीन प्राणपति मोहिंसिखसोई । जेहिविधिमोर परम हित होई ।।७।।
मैं पुनि समुझि दीखमनमाहीं । पियवियोग समदुख जगनाहीं ।।८।।

दोहा–प्राणनाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुमबिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ।।३३।।

जहँ लगि नाथ नेह अरुनाते । पियविनु तियहि तरणिते ताते ।।१।।
तन धनधाम धरणि पुरराजू । पतिविहीन सब शोकसमाजू ।।२।।
प्राणनाथ तुमबिनु जगमाहीं । मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ।।३।।

---

१ रहहु भवन हमारे कहे कामिनि ।
सादर सासुचरण सेवहु नित जा तुम्हरे अतिहित गृहस्वामिनि ।।

दोहा–खग मृग परिजन नगरवन, वलकल वसन दुकूल ।
नाथसाथ सुरसदनसम, पर्णशाल सुख मूल ।।३४।।
वनदेवी वनदेव उदारा । करिहैं सास श्वसुर सम सारा ।।१।।

यह वचन सुन वरवस नेत्रों का जल रोक जानकी मन में धीरज धर।।५।। सास के चरणों को प्रणाम कर हाथ जोड़ बोली–हे देवि! मेरी बड़ी अविनय क्षमा करनी।।६।। प्राणपति ने मुझे वह शिक्षा दी जिससे मेरा परमहित हो।।७।। मैंने भी मन में यह समझ देखा है कि, जगत् में पियवियोग के समान और दुःख नहीं है।।८।। दोहार्थ–हे प्राणनाथ हे सुन्दर हे सुखद हे चतुर हे रघुकुल कैरव को खिलाने वाले चंद्र! तुम्हारे बिना सुरपुर नरक के समान है।।३३।। चौ०–हे नाथ! जहां तक नेह और नाते जगत् में हैं, पति विना स्त्री को सूर्य से अधिक सन्ताप देनेवाले हैं।।१।। तन, धन, धाम, धरणी, पुर, राज्य प्रीतम के बिना सब शोक समाज हैं।।२।। प्राणनाथ! तुम्हारे बिना जग में मुझे कोई सुखदाई नहीं है।।३।। दोहार्थ–खग मृग कुटुम्बीजन होंगे वन मुझे नगर वल्कल ही रेशमी वस्त्र होंगे तुम्हारे साथ में पर्णशाला इन्द्र भवन के समान सुखमूल होगी।।३४।। चौ०–वन के देवी देवता सास श्वशुर के समान प्यार करेंगे।।१।।

कुश किशलय साथरी सुहाई । प्रभुसँग मंजु मनोज तुराइ ।।२।।
कंद मूल फल अमिय अहारू । रहिहौं मुदित दिवस जिमिकोकी ।।३।।
क्षणक्षण प्रभुपद कमल विलोकी । अवधसहस सुख सरिस पहारू ।।४।।
दोहा–राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान[1] ।।३५।।
मोहिमग चलत न होइहि हारी । क्षणक्षण चरण सरोज निहारी ।।१।।
सबहिभाँति पियसेवाकरिहौं । मारगजनित सकलश्रम हरिहौं ।।२।।

–राजकुमारि कठिन कंटक मग क्यों चलिहौ मृदुपद गजगामिनि ।
दुसहबात वर्षा हिम आतप किमि सहिहौ अगणित दिन यामिनि ।
हौं पुनि पितु आज्ञा प्रमाणकरि ऐहौं वेग सुनहु द्युतिदामिनि ।
तुलसिदास प्रभु विरह वचन सुनि सह न सकी मुरछित भइ भामिनि ।।

१ कृपानिधान सुजान प्राणपति संग विपिन हो आवोंगी ।
गृहते कोटिगुणित सुख मारग चलत साथ सचुपावोंगी।।१।।
थाके चरणकमल चापोंगी श्रमभये वायु डोलावोंगी ।
नयन चकोरनि मुखमयक छवि सादर पान करावोंगी।।२।।
जो हठि नाथ न रखिहौं मोकहँ तो संग प्राण पठावोंगी ।
तुलसिदास प्रभु विनु जीवनरहि क्यो फिरि वदन देखावोंगी।।३।।

पांव पखारि बैठितरु छांहीं । करिहौंवायु मुदित मनमाहीं ।।३।।
श्रमकण सहितश्याम तन देखे । का दुखसमय प्राणपति पेखे ।।४।।
सम महितृण तरुपल्लवडासी । पाँयपलोटिहि सब निशिदासी ।।५।।
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताप बयारि न मोही ।।६।।

कुश और कोमल पत्तरों की सेज आपके संग उज्ज्वल तोसक होगी।।२।। कन्द मूल फल अमृत के समान भोजन होगा, पहाड़ में सहस्त्र अवध के समान सुख होगा।।३।। क्षण क्षण में प्रभु के चरणकमलों को देखकर दिन में चकवी के समान प्रसन्न रहूँगी।।४।। दोहार्थ–और जो चौदह वर्ष तक आप मेरे प्राण रहते जाने तो अवध में रहने दो। हे दीनबन्धु! सुन्दर सुख देनेवाले शील स्नेह के घर ।।३५।। चौ०–क्षण २ आपके पदकमल निहार मुझे मार्ग चलते में हार न होगी।।१।। हे प्रीतम! मैं सब प्रकार तुम्हारी सेवा करूंगी और मार्ग चलने के श्रम को दूर करूंगी।।२।। पांव धोय वृक्ष की छाया में बैठ प्रसन्न हो तुम्हें पवन करूंगी।।३।। पसीने की बून्दों सहित तुम्हारा श्याम शरीर देखकर प्राणपति के होते मुझे क्या दुःख होगा।।४।। समान भूमि में तृण और वृक्ष के पत्ते बिछाय दासी सब रात पांव दाबेगी।।५।। बार बार कोमल मूर्ति देखते हुए मुझे ताप और पवन बाधा न देगी।।६।।

को प्रभुसँगमोहि चित वनहारा । सिंहवधुहि जिमिशशक सियारा ।।७।।
मैं सुकुमारि नाथ वनयोगू । तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ।।८।।

दोहा–ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान ।
तो प्रभु विषमवियोग दुख, सहिहें पामर प्रान ।।३६।।

राम कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा । परिहरिशोच चलहु वन साथा ।।१।।
नहिंविषाद कर अवसर साजू । वेगिकरहुवन गमन समाजू ।।२।।
कहिप्रिय वचन प्रियहि समुझाई । लगे मातुपद आशिषपाई ।।३।।
कौ०–वेगिप्रजादुखमेटब आई । जननी निठुर बिसरिजनिजाई।।४।।
फिरिहि दशा विधि बहुरिकिमोरी । देखिहौं नयनमनोहरजोरी ।।५।।
सुदिन सुघरी तात कब होई । जननी जियतवदन बिधुजोई ।।६।।

दोहा–बहुरि वच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ।
कबहिं बुलाय लगाय उर, हर्षि निरखिहौं गात ।।३७।।

सी०–तब जानकी सासु पगलागी । सुनिय मातु मैं परम अभागी ।।१।।
सेवा समय दैव वन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ।।२।।

प्रभु के संग मुझे कौन देखनेवाला है सिंह की वधू को खरगोश वा गीदड़ क्या देख सकता

है।।७।। मैं सुकुमारी हूं और आप क्या वन के योग्य हैं तुमको तप और मुझको क्या भोग उचित है?।।८।। दोहार्थ–ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जो हृदय नहीं बिलगाता तो प्रभु के कठोर दुःख को पामर प्राण सहेंगे।।३६।। चौ०–तब रघुनाथजी ने कहा जो ऐसी इच्छा है तो शोच को त्याग वन को चलो।।१।। अब विषाद का समय नहीं है शीघ्र वनगमन का समाज करो।।२।। प्रिय वचन कह जानकी को समझाया फिर माता के पग लागे आशीर्वाद पाया ।।३।। शीघ्र ही आनकर प्रजा का दुःख मेटना निठुर जननी को मत भूल जाना।।४।। हे विधाता! क्या कभी मेरी दशा फिरेगी जो मनोहर जोरी नेत्रों से देखूँगी?।।५।। हे तात! सुदिन सुघरी कब होगी जो माता जीते जी फिर तुम्हारा मुखचन्द्र देखेगी?।।६।। दोहार्थ–फिर बच्छ लाल रघुपति रघुवर ऐसा कहकर कब बुलाय हृदय से लगाय प्रसन्न हो देखूँगी?।।३७।। चौ०–तब जानकी सास के चरणों में लगी और बोली सुनो माता मैं परम अभागी हूं।।१।। सेवासमय दैव ने वन दिया मेरा मनोरथ सफल न किया।।२।।

सुनिसियवचन सासु अकुलानी । दशाकौन विधि कहौं बखानी ।।३।।

दोहा–सीतहि सासु अशीष सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पद्म शिर, अतिहित बारहिबार ।।३८।।

समाचार जब लक्ष्मण पाये । व्याकुल विलखिवदन उठिधाये ।।१।।
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा । गहे चरण अतिप्रेम अधीरा ।।२।।
राम–तात प्रेमवशजनिकदराहू । समुझि हृदय परिणामउछाहू ।।३।।

दोहा–मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करहि सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरुजन्मजगजाय ।।३९।।

असजिय जानिसुनहु सिख भाई । करो मातु पितुपद सेवकाई ।।१।।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं । राववृद्ध मम दुख मनमाहीं ।।२।।
मैं वन जाऊँ तुमहिं लै साथा । होइहि सब विधि अवध अनाथा ।।३।।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परैदुसहदुखभारू ।।४।।
रहहु कहहुसबकर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ।।५।।
जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवशि नरक अधिकारी ।।६।।

यह जानकी के वचन सुन सास अकुलाई वह दशा किस प्रकार बखान कर कहूं।।३।। दोहार्थ–सीता को सास ने अशीष और सीख अनेक प्रकार से दी फिर चरणकमल में बारम्बार हित से शिर नवाय जानकी चली।।३८।। चौ०–जब लक्ष्मण ने समाचार पाये तब व्याकुल हो दुःख करते शीघ्र आये ।।१।। शरीर कम्पित रुवें खड़े हुए प्रेम से अधीर हो चरण पकड़े।।२।। रामचन्द्र बोले हे तात! प्रेम से मत घबराओ मन में समझो परिणाम भला होगा।।३।। दोहार्थ–माता पिता

गुरु स्वामी की सीख जो स्वभाव से शिरपर धारण करते हैं उन्होंने ही जन्म का लाभ लिया नहीं तो जन्म वृथा गया।।३९।। चौ०–हे भाई! ऐसा जी में जानकर सीख सुनो माता पिता के चरणों की सेवा करो।।१।। घर में भरत शत्रुघन नहीं हैं राजा वृद्ध हैं और मन में मेरा दुःख है।।२।। जो मैं तुम्हें साथ ले वन में जाऊं तो सब प्रकार अवध अनाथ होगी।।३।। गुरु पिता माता प्रजा परिवार सब पर बड़ा दुःख पड़ेगा।।४।। इससे यहां रहकर सबका परितोष करो–हे तात! नहीं तो बड़ा दोष होगा।।५।। जिसके राज्य में प्रिय प्रजा दुखारी है वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है।।६।।

रहहु तात अस नीति बिचारी । सुनत लषण भये व्याकुल भारी ।।७।।
दोहा–"उतर न आवत प्रेमवश, गहे चरण अकुलाय ।"
लक्ष्म०–नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाय ।।४०।।
गुरु पितु मातु न जानौ काहू । कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू ।।१।।
मोरे सबै एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तर्यामी ।।२।।
मन क्रम वचन चरणरति होई । कृपासिन्धु परिहरियकिसोई ।।३।।
दोहा–करुणासिन्धु सुबन्धुके, सुनि मृदुबचन विनीत ।
समझाये उर लाय प्रभु, जानि सनेह सभीत ।।४१।।
राम–मांगहु बिदामातुसन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ।।१।।
हर्षित हृदयमें मातु पहँ आये । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ।।२।।
पूछेउ मातु मलिनमन देखी । लषण कहेउ सब कथा विशेखी ।।३।।
दोहा–समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील सुभाव ।
नृपसनेह लखि धुनेउ शिर, पापिन कीन्ह कुदाव ।।४२।।
धीरज धरचउकुअवसर जानी । सहजसुहृदबोली मृदुबानी ।।१।।

हे तात! ऐसी नीति विचार कर रह जाओ। यह सुनकर लक्ष्मण बड़े व्याकुल हो गये।।७।। दोहार्थ–उत्तर नहीं आया प्रेमवश व्याकुल होकर चरण पकड़कर बोले–हे नाथ! मैं दास और तुम स्वामी हो, छोड़ दोगे तो मेरा क्या वश है।।४०।। चौ०–हे नाथ! स्वभाव से कहता हूं विश्वास करिये मैं गुरु पितामाता किसी को नहीं जानता हूँ।।१।।हे स्वामी! मेरे तो सब कुछ एक तुम्हीं हो। दीनबन्धु और अन्तर की जानते हो।।२।। मन वचन कर्म से जो चरणों में प्रीति करे हे कृपासिन्धु! क्या वह त्यागा जाता है।।३।। दोहार्थ–कृपासागर ने भाई के यह नम्र वचन सुन स्नेह से भीत देख हृदय लाय समझाया।।४१।। चौ०–राम–जाओ माता से विदा मांग आओ और शीघ्र वन को चलो।।१।। तब लक्ष्मण प्रसन्न हो माता के पास आये, मानो अंधे ने फिर नेत्र पाये।।२।। मलीन मन देख माता ने पूछा, लक्ष्मण ने सब कथा विशेषरूप से कही।।३।। दोहार्थ–सुमित्रा ने राम और

सीता को स्मरण कर रूप शील स्वभाव को स्मरण कर और राजा का स्नेह देख शिर धुना कि पापिनीने कुदांव किया।।४२।। चौ०–कुअवसर जानकर धीरज धरा सहज सौहार्द से कोमल वाणी बोली।।१।।

सुमि०–तात तुम्हार मातु वैदेही । पिता राम सब भांति सनेही ।।२।।
अवध तहां जहँ राम निवासू । तहां दिवसजहँ भानुप्रकाशू ।।३।।
जौपैं राम सीय वन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ।।४।।
दोहा–भूरिभाग्य भाजन भयउ, मोहिं समेत बलि जाउँ ।
जो तुम्हरे मन छांड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ ।।४३।।
पुत्रवती युवती जग सोई । रघुवर भक्त जासु सुत होई ।।१।।
नतरु बाँझि भलिवादिबियानी । रामविमुख सुतते हितहानी ।।२।।
तुम्हारे भाग्य राम वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।।३।।
सकलसुकृत कर फल सुत येहू । रामसीयपद सहज सनेहू ।।४।।
राग रोष ईर्षा मद मोहू । जानि स्वप्नेहु इनके वश होहू ।।५।।
सकल प्रकार विकार विहाई । मन क्रम वचन करहु सेवकाई ।।६।।
तुम कहँ वन सब भाँति सुपासू । सँग पितुमातु रामसियजासू ।।७।।
जेहि न राम बन लहहिं कलेशू । सुत सोइ करहु मोर उपदेशू ।।८।।

सु०–हे तात! जानकी तुम्हारी माता और सब भांति से स्नेही रामचंद्र तुम्हारे पिता हैं।।२।। जहां राम का निवास है वही अवध है दिन वही है जहां सूर्य का प्रकाश है।।३।। जहां राम और सीता वन में जाते हैं तो अवध में तुम्हारा कुछ काम नहीं है।।४।। दोहार्थ–तुम मुझ समेत बड़े भाग्यवान् हुए। बलिहारी जाऊं हूं जो तुम्हारे मन में छल छोड़कर राम के चरणों ने निवास किया है।।४३।। चौ०–जगत् में वही स्त्री पुत्रवती है कि जिसका पुत्र रामचंद्र का भक्त हो।।१।। वृथा बियाई से तो बांझ स्त्री ही भली है कि जिसका पुत्र से हित की हानि है।।२।। तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जाते हैं हे तात! दूसरा कारण कुछ नहीं है।।३।। हे पुत्र! सब पुण्यों का फल यह है कि सीताराम के चरणों में स्नेह हो।।४।। राग, रोष, ईर्षा, मद, मोह, स्वप्न में भी इनके वशीभूत मत हो।।५।। सब प्रकार से विकार को छोड़ मन वचन कर्म से सेवा करो।।६।। तुमको वन में सब भांति आनन्द है जिसके संग पिता माता रामसीता।।७।। जिस प्रकार वन में राम को क्लेश न हो हे पुत्र! वही करना यह उपदेश है।।८।।

छन्द–उपदेश यहि जेहि तात तुमते राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन विसरावहीं ।।

तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु देइ पुनि आशिष दई ।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुवीर पद नित नित नई ।।१।।

चले लषण जहँ जानकिनाथा । भे मनमुदित पाइ प्रियसाथा ।।१।।
वन्दि राम सिय चरण सुहाये । चले संग नृप मंदिर आये ।।२।।
सचिव उठाय राम बैठारे । कहि प्रिय वचन राम पगुधारे ।।३।।

दोहा–सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि २ अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेहवश, राउ लिये उर लाइ ।।४४।।

नाइ शीश पद अति अनुरागा । उठि रघुनाथ बिदा तब मांगा ।।१।।
रा०–पितु अशीश आयसु मोहिं दीजै । हर्ष समय विस्मय कत कीजै ।।१।।
सुनि सनेह वश उठि नरनाहू । बैठारे रघुपति गहि बाहू ।।२।।
राजा–सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं । राम चराचर नायक अहहीं ।।

दोहा–और करै अपराध कोउ, और पाव फलभोग ।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जाने योग ।।४५।।

छन्दार्थ–वही उपदेश देना जिससे तुम्हारे रामसीता सुख पावैं पिता माता प्यार परिवार की सुरत वन में विसरावें इस प्रकार पुत्र को सीख दे अशीश दी कि सीताराम के चरणों में नित्य नई प्रीति हो।।१।। चौ०–जहां रामचंद्र थे वहां लक्ष्मण गये और प्रिय साथ पाकर प्रसन्न हुए।।१।। राम सीताके सुन्दर चरणों को प्रणाम कर चले और राजमंदिर में आये।।२।। मंत्री ने उठाकर राजाको बैठाया और यह प्रिय वचन कहे कि रामने पग धारण किया है।।३।।दोहार्थ–सीतासहित दोनों पुत्रों को देखकर राजा व्याकुल हो उठे और बारंबार स्नेह के वश से राजा ने हृदय से लगा दिया।।४४।। चौ०–चरणों में शिर नवाय बड़े प्रेम से उठकर रघुनाथजी ने बिदा मांगी।।१।। हे पिता! मुझे आशीश और आज्ञा दो हर्ष के समय विस्मय क्यों करते हो।।२।। सुनकर राजा ने प्रेमवश हो बांह पकड़ रामचन्द्र को बैठाया और बोले।।३।। सुनो तात! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चरअचर के नायक हैं।।४।। दोहार्थ–और कोई अपराध करै और कोई फल पावै विधाता की गति बड़ी विचित्र है कौन जान सकता है।।४५।।

राउ राम राखन हित लागी । बहुत उपाय कीन्ह छल त्यागी ।।१।।
तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं । अतिहित बहुतभाँति सिख दीन्हीं ।।२।।
सीय सकुच वश उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेयी ।।३।।
मुनिपट भूषण भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुवानी ।।४।।
कै०–नृपहि प्राणप्रिय तुम रघुवीरा । शील सनेह न छांड़हि भीरा ।।५।।

सुकृत सुयश परलोक नशाऊ । तुमहिं जानवन कहहि न राऊ ।।६।।
अस विचारि सोइ करौ जो भावा । रामजननि सिख सुनि सुखपावा ।।७।।

(राजा मूर्च्छित होते हैं)

दोहा–"सजि वनसाज समाज सब, बनिता बन्धु समेत ।
वंदि विप्र गुरु चरण प्रभु, चले करि सबहि अचेत ।।४६।।"

राम–सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहिते रहैं भुआल सुखारी ।।१।।

दोहा–मात सकल मोरे विरह, जेहि न होंहि दुखदीन ।
सो उपाय तुम करब सब, पुरजन परम प्रवीन ।।४७।।

गणपति गौरि गिरीश मनाई । चले अशीश पाइ रघुराई ।।१।।

चौ०–राजा ने राम के रखने के निमित्त छल त्याग अनेक उपाय किये।।१।। तब राजा ने जानकी को हृदय लगाय अति हित से बहुत भांति शिक्षा दी।।२।। सीता सङ्कोच के मारे उत्तर नहीं देती सो सुनकर कैकेयी तमक उठी ।।३।। मुनियों के पट भूषण और पात्र लाय आगे धर कोमलवाणी बोली।।४।। हे रघुवीर! तुम राजा को प्राणों से प्यारे हो तुम्हारा शील नहीं छोड़ सकते।।५।। चाहे सुकृत सुयश और परलोक नाश हो जाय राजा तुम्हें जाने को न कहेंगे।।६।। ऐसा विचार जो भला लागै सो करो, राम ने माता की सीख सुन सुख पाया ।।७।। दोहार्थ–वन का सब साज समाज सजाय प्रभु वनिता और बन्धुसमेत विप्र गुरु के चरणों को प्रणाम कर सबको अचेतकर चले और बोले।।४६।। चौ०–राम वही सब भाँति मेरा हितकारी है जिससे राजा प्रसन्न रहें।।१।। दोहार्थ–सम माता मेरे विरह में जैसे दुःख से दीन न हों हे परम प्रवीण पुरवासियो तुम वही उपाय करना।।४७।। चौ०–इस प्रकार गणपति, गौरी, गिरीश को मनाय रामचन्द्र अशीश पाय चले।।१।।

(चैतन्य होकर)

राजा–राम चले वन प्राण न जाहीं । केहि सुख लागि रहे तनुमाहीं ।।२।।
पुनि धरि धीर कहहिं नरनाहू । लै रथ संग सखा तुम जाहू ।।३।।

दोहा–सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाय दिखराय वन, फिरहु गये दिन चारि ।।४८।।

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसिन्धु दृढ़व्रत रघुराई ।।१।।
तौ तुम विनय करहु करजोरी । फेरिय प्रभु मिथिलेश किशोरी ।।२।।
जब सिय कानन देखि डराई । कहेउ मोरि सिख अवसर पाई ।।३।।
सासु श्वसुर अस कहेउ सँदेशू । पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेशू ।।४।।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी । रहेउ जहां रुचि होइ तुम्हारी ।।५।।
अस कहि मूर्च्छि परे महिराऊ । रामलषण सिय आनि दिखाऊ ।।

दोहा–पाय रजायसु नाइ शिर, रथ अति रुचिर बनाय ।
गयउ जहां बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाय ।।४९।।

तब सुमंत नृप वचन सुनाये । करि विनती रथ राम चढ़ाये ।।१।।
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हर्षि अवधहिं शिर नाई ।।२।।

राजा बोले–राम वन को चले और हमारे प्राण नहीं जाते किस सुख के लिये शरीर में स्थित हो रहे हैं।।२।। फिर राजा धीर धरकर बोले–हे सखा! तुम रथ को लेकर जाओ।।३।। दोहार्थ–दोनों कुमार कोमल हैं और जनकसुता बड़ी कोमल है इन्हें रथपर चढ़ाय वन दिखाय चौथे दिन लौट आओ।।४८।। चौ०–जो दोनों भाई शीघ्र न फिरें जो सत्य के सागर दृढ़व्रत रघुराई हैं।।१।। तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना हे प्रभु! जानकी को तो लौटा दो।।२।। जब सीता वन को देखकर डरै तब अवसर पाय मेरी सीख कहना कि।।३।। सास श्वशुर ने ऐसा संदेशा कहा है हे पुत्री! फिरो वन में बड़ा क्लेश है।।४।। पिता के घर कभी कभी ससुराल में जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ रहो।।५।। यह कह राजा मूर्च्छित हो गये और भूमि पर गिरे कि राम लक्ष्मण जानकी को लाकर दिखाओ।।६।। दोहार्थ–आज्ञा पाय शिर नवाय रुचिर रथ बनाय नगर के बाहर जहाँ दोनों भाई सीता समेत थे तहाँ गये।।४९।। चौ०–तब सुमन्त ने राजा के वचन सुनाये और विनती करके रथ पर राम को चढ़ाया।।१।। रथ पर चढ़ सीता सहित दोनों भाई प्रसन्न हो अवध को शिर नवाय चले।।२।।

दोहा–बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ।।५०।।

रघुपति प्रजा प्रेमवश देखी । सदय हृदय दुख भयउ विशेषी ।।१।।
कहि सप्रेम मृदुवचन सुहाये । बहु विधि राम लोग समुझाये ।।२।।
किये धर्म्म उपदेश घनेरे । लोग प्रेमवश फिरहिं न फेरे ।।३।।

(लोग सोते हैं)

दोहा–राम लषण सिय यान चढ़ि, शंभु चरण शिर नाय ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराय ।।५१।।

इति तृतीय दर्शन

बालक और वृद्धजनों को घर छोड़कर शेष सब लोग साथ चले पहले दिन राम ने तमसा नदी के किनारे निवास किया।।५०।। चौ०–रघुपति ने जब प्रेमवश प्रजा देखी तो उनके दयावाले हृदय में

बड़ा दुःख हुआ।।१।। प्रेम से कोमल सुहाये वचन कहकर बहुत प्रकार से राम ने लोगों को समझाया।।२।। और बड़े धर्म के उपदेश किये। लोग प्रेम के वश हो फेरे से नहीं फिरते हैं।।३।। दोहार्थ–तब लोगों को सोया देख शिव के चरणों में शिर नवाय मन्त्री ने इधर उधर खोज दुराकर अपना रथ चलाया।।५१।।

इति तृतीय दर्शन

अथ चतुर्थ दर्शन

(रामचंद्र का निषाद से मिलना)

"सीता सचिव सहित दोउ भाई । श्रृंगवेरपुर पहुँचे जाई ।।१।।
यह सुधि गुह निषाद जब पाई । मुदित लिये प्रियबंधु बुलाई ।।२।।
लै फल फूल भेंट भरिभारा । मिलन चल्यो हिय हर्ष अपारा ।।३।।

(रामचन्द्र का निषाद से मिलन)

टीका–सीता और सुमन्त के सहित दोनों भाई श्रृङ्गवेरपुर में जाकर पहुँचे ।।१।। जब निषाद ने यह समाचार पाये तब प्रसन्न हो अपने बन्धुजनों को बुलाया।।२।। फल फूल और भेंट लेकर मन में प्रसन्न हो चला।।३।।

करि दण्डवत भेंट धरि आगे । प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे ।।४।।
सहज सनेह विवश रघुराई । पूछेउ कुशल निकट बैठाई ।।५।।
नि०–कृपाकरिय पुरधारिय पाऊ । थापि यजन सब लोग सिहाऊ ।।
रा०–कहउ सत्य सब सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ।।
दोहा–वर्ष चारिदश वास वन, मुनिव्रत वेष अहार ।
ग्रामवास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयो दुखभार ।।५२।।
"गुह सँवारि साथरी बनाई । कुशकिसलय मृदु परम सुहाई ।।१।।
शुचि फलमूल मृदुल मधु जानी । दोना भरिभरि राखेसि आनी ।।२।।
दोहा–सिय सुमन्त भ्रातासहित, कन्दमूल फल खाइ ।।
शयन कीन्ह रघुवंशमणि, पाँय पलोटत भाइ ।।५३।।
उठे लछन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहिं सोवनमृदुवानी ।।१।।
कछुक दूरि सजि बाण शरासन । जागन लगै बैठि वीरासन ।।२।।
गुह बुलाय पाहरू प्रतीती । ठांव ठांव राखे अति प्रीती ।।३।।
आप लषण पहँ बैठेउ जाई । कटि भाथा शर चाप चढ़ाई ।।४।।

दंडवत् कर आगे भेंट धरकर बड़े प्रेम से प्रभु को देखने लगा।।४।। रघुनाथ ने सहज प्रेम के वश हो निकट बैठाया कुशल पूछी।।५।। तब निषाद बोला कृपाकर पुर में चलकर जन को सनाथ करो लोग प्रसन्न हों।।६।। रामचन्द्र बोले हे सुजान सखा! तुमने सत्य कहा परन्तु पिता ने मुझे और ही आज्ञा दी है कि ।।७।। दोहार्थ–चौदह वर्ष वन में निवास कर मुनियों के से व्रत वेष आहार करूंगा मुझे ग्राम का वास उचित नहीं यह सुनकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ।।५२।। चौ०–निषाद ने सँवारकर साथरी बनाई जो कुश कोमल पत्तों की परम सुहाई थी।।१।। अच्छे फल मूल कोमल और मधुर जानकर दोना भर भरकर आगे लाकर धरे।।२।। दोहार्थ–सीता सुमन्त भ्राता सहित कन्द मूल फल खाकर रघुनाथजी ने शयन किया भाई पाँव पलोटने लगे।।५३।। चौ०–प्रभु को सोता जान लक्ष्मण उठे और कोमलवाणी से मन्त्री को सोने के निमित्त कहा।।१।। और आप कुछ दूर पर धनुष बाण सजाय वीरासन पर बैठ जागने लगे।।२।। निषाद ने विश्वासी पहरुए बुलाकर स्थान स्थान पर रखे।।३।। आप भी कमर में तरकस लगाय धनुष पर बाण चढ़ाय लक्ष्मण के पास जा बैठा।।४।।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादा । भयउ प्रेमवश हृदय विषादा ।।५।।
तनु पुलकित लोचन जल बहई । वचन सप्रेम लषण सन कहई ।।६।।”
निषाद–भूपति भवन सुसहज सुहावा । सुरपतिसदन न पटतर आवा।।७।।
मणिमय रचित चारु चौवारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ।।८।।
दोहा–शुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुवास ।
पलँग मंजुमणि दीप जहँ, सब विधि सकलसुपास ।।५४।।
तहँ सियराम शयन नित करहीं । निज छबि रति मनोजमद हरहीं ।।
ते सिय राम साथरी सोये । श्रमित बसन बिन जाहिं न जोये ।।२।।
बोले लषण मधुर मृदुवानी । ज्ञान विराग भक्ति रस सानी ।।३।।
ल०–कोन काहु दुखसुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।।४।।
अस विचार नहिं कीजिय रोषू । काहुइवादि न देइय दोषू ।।५।।
कहत राम गुण भा भिनुसारा । जागे जगमंगल दातारा ।।६।।
सकल शोच करि राम अन्हाये । सुचिसुजान वटक्षीर मँगाये ।।७।।

निषाद प्रभु को सोता देख प्रेमवश हृदय में विषादयुक्त हुआ।।५।। शरीर पुलकायमान नेत्रों से जल बहने लगा, प्रेमपूर्वक लक्ष्मण से कहने लगा।।६।। जो राजभवन स्वाभाविक ही शोभायमान है जिसके समान इन्द्रभवन भी नहीं है।।७।। जिसके सुन्दर चौवारे मणियों से रचित हैं मानो कामदेव ने अपने हाथ से सँवारे हैं।।८।। दोहार्थ–जो पवित्र विचित्र भोगमय हैं जो फूलों की गन्ध से सुवासित हैं, ऐसे उज्ज्वल पलंग मणियों के दीपक जहां सब प्रकार से विश्राम है।।५४।। चौ०–वहां

सीताराम रात्रि को शयन करते हैं अपनी छबि से रति और काम का मद हरते हैं।।१।। वे सीता और राम साथरी पर सोये हैं और श्रमित वस्त्र के बिना देखे नहीं जाते।।२।। लक्ष्मणजी मधुर मृदुवाणी बोले जो ज्ञान वैराग्य भक्ति रस में सनी थी।।३।। कोई किसी को सुख दुःख देनेवाला नहीं है हे भाई! सब अपना किया सुख दुःख भोगते हैं।।४।। ऐसा विचार रोष मत करो, वृथा किसी को दोष मत दो।।५।। राम के गुण कहते सुनते सवेरा हो गया तब जगत् में मंगल करनेवाले जागे।।६।। सब शौच कर स्नान किया और फिर रामचन्द्र ने वट का क्षीर मँगाया।।७।।

अनुजसहित शिरजटा बनाये । देखि सुमंत्र नयन जल छाये ।।८।।
सुमं०—नाथ कहेउ अस कोशलनाथा । लै रथ जाहुर राम के साथा ।।९।।
वन दिखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनहु वेगि फेरि दोउ भाई ।।१०।।
लषण राम सिय आनहु फेरी । संशय सकल सँकोच निवेरी ।।११।।

दोहा—नृप अस कह्यउ गुसाइँ जस, कहिय करौ बलि सोइ ।
कहि विनती पाँयन परच्यउ, दीन बाल जिमि रोइ ।।५५।।

तात कृपाकर कीजिय सोई । जाते अवध अनाथ न होई ।।१।।
राम—मंत्रिहिराम उठाइ प्रबोधा । तात धर्म मग तुम सब शोधा ।।२।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धर्मधरेउ सहि संकट नाना ।।३।।
धर्म न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुराण बखाना ।।४।।

दोहा—पितुपद गहि कहि कोटि विधि, विनय करब कर जोरि ।
चिन्ता कवनिहुँ बातकी, तात करिय जनि मोरि ।।५६।।

सबविधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुख न पाव नृप शोच हमारे ।।१।।
"कह सुमन्त पुनि भूप सँदेशू । सहि न सकहि सिय विपिनकलेशू ।।२।।

अनुज सहित शिर पर जटा बनाये देखकर सुमन्त के नेत्रों में जल भरि आया।।८।। हे नाथ! कौशलराज ने कहा है कि रथ लेकर राम के साथ जाओ।।९।। वन दिखाय गंगा न्हवाय फिर दोनों भाइयों को फेर लाओ।।१०।। वन दिखाय लक्ष्मण राम को फेर लाओ, सब सन्देह और संकोच दूर करो।।११।। दोहार्थ—हे प्रभो! राजा ने ऐसा कहा है, अब जो कहो सो करूं, विनती करके पांवों में पड़ गया, बालक के समान रो दिया।।५५।। चौ०—हे तात! कृपाकर सोई करो जिससे अवध अनाथ न हो।।१।। राम ने मंत्री को उठाकर समझाया—हे तात! तुमने धर्ममार्ग सब शोधा है।।२।। रन्तिदेव बलिराजा ने जो कुछ कहा सो करा और धर्म के निमित्त अनेक संकट सहे।।३।। सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं यह आगम निगम पुराणों में बखाना है।।४।। दोहार्थ—पिता के चरणगह कोटि विधि से हाथ जोड़कर विनय करना हे तात! किसी बात की मेरी चिन्ता मत करो।।५६।। चौ०—तुम को सब प्रकार से सोई कर्तव्य है कि राजा मेरे शोच से दुःख न पावें।।१।। फिर सुमन्त ने राजा का सन्देश कहा कि जानकी वन का क्लेश न सह सकेंगी उन्हे भेज दो।।२।।

पितु संदेश सुनि कृपानिधाना । सियहि दीन्ह शिष कोटि विधाना ।।३।।
सुनि पतिवचन कहति वैदेहु । सुनहु प्राणपति परम सनेही ।।४।।
सो०-प्रभुकरुणामय परम विवेकी । तनु तजिछांह रहत किमि छेकी ।।५।।
प्रभा जाय कहँ भानु विहाई । कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ।।६।।
विनु रघुपति पद पद्म परागा । मोहिं कोउ सपनेहु सुखद न लागा ।।७।।
"मेटि जाय नहिं राम रजाई । कठिन कर्म्मगति कछु न बसाई ।।८।।
दोहा-रथ हांके हय राम तन, हेरि हेरि हिहनाहिं ।
देखि निषाद विषादवश, शिर धुनि धुनि पछिताहिं।।५७।।

वरवश राम सुमन्त पठाये । सुरसरि तीर आपु चलि आये ।।१।।
केवट-"मांगी नाव न केवट आना । कहै तुम्हार मर्म मैं जाना ।।२।।
चरणकमल रज कहँ सब कहहीं । मानुषकरणि मूरि कछु अहहीं ।।३।।
छुवत शिला भइ नारि सुहाई । पाहनते न काठ कठिनाई ।।४।।
तरणिउ मुनि घरनी होइ जाई । बाट परै मेरि नाव उड़ाई ।।५।।
यहि प्रतिपालों सब परिवारू । नहिं जानो कछु और कबारू ।।६।।

पिता का संदेश सुनकर कृपानिधान ने सीता को अनेक शिक्षाएं दी।।३।। पति के वचन सुन जानकी बोली-परम सनेही प्राणपति! सुनो।।४।। प्रभु करुणामय परमविवेक हो शरीर छोड़कर कैसे छाहँ रह सकती हैं।।५।। सूर्य को छोड़कर प्रभा कहां जाय और चन्द्रमा को छोड़कर चांदनी कहां जाय?।।६।। बिना रघुपति के चरण कमल के मुझे कोई स्वप्न में भी सुखदाई नहीं लगा।।७।। राम की आज्ञा नहीं मेटी जाती, कर्मगति पर कुछ नहीं वसाती ।।८।। दोहार्थ-सुमन्त ने रथ हांका, घोड़े राम की ओर देख देखकर हिनहिनाते हैं, देखकर निषाद विषादवश से शिर धुन धुन पछताते हैं।।५७।। चौ०-राम ने सुमन्त को बरबस भेजा और आप गंगा के किनारे आये।।१।। नाव मांगने पर केवट नहीं लाया कि मैंने तुम्हारा मर्म जाना है।।२।। चरण कमल की रज को सब कहते हैं कि मनुष्य करने की कुछ जड़ी है।।३।। छूते ही शिला स्त्री हो गई। कुछ पत्थर से तो काठ अधिक कठिन नहीं है।।४।। जो यह नाव भी स्त्री हो जाय तो मेरी नाव भी उड़ जाय, बाट पड़ जाय।।५।। इसी से सब कुटुम्ब पालता हूं, कुछ और कबार नहीं जानता हूं।।६।।

जो प्रभु अवशि पार गा चहहू । तो पदपद्म पखारन कहहू ।।७।।
छन्द-पदपद्म धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।।
मोहिं राम राउरि आन दशरथ शपथ सब सांची कहौं ।।

वरु तीर मारहिं लषण पै जब लगि न पांव पखारिहौं ।।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं ।।१।।
सो०–मुनि केवट के वयन प्रेम लपेटे अपपटे ।
विहँसे करुणा अयन, चितै जानकी लषणतन' ।।१।।
राम–कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करहु जेहिं नाव न जाई ।।१।।
बेगि आनि जल पांव पखारू । होत विलम्ब उतारहु पारू ।।२।।
"केवट राम रजायसु पावा । पानि कठवता भरिले आवा ।।३।।
अतिआनन्द उमँगि अनुरागा । चरण सरोज पखारन लागा ।।४।।
दोहा–पद पखारि जल पान करि, आपसहित परिवार ।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार ।।५८।।
उतरि ठाढ़भये सुरसरि रेता । सीय राम गुह लषण समेता ।।१।।
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा । प्रभुसकुचेकछु यहि नहिं दीन्हा ।।२।।

हे प्रभु! जो शीघ्र पार जाना चाहो तो चरणकमल धोने दो।।७।। छन्दार्थ–चरण कमल धोकर नाव पर चढ़ाकर हे नाथ! उतराई नहीं चाहता, हे राम! मुझे आपकी आन और दशरथ की शपथ है, मैं सत्य कहता हूं, चाहै लक्ष्मण तीर मारै पर जब तक पाँव न धो लूंगा तब तक हे कृपानाथ! मैं पार नहीं उतारूंगा।।१।। सोरठार्थ–यह प्रेम के लपेटे अटपटे वचन केवट के सुन लक्ष्मण जानकी की ओर देख रामचन्द्र हँसे।।१।। चौ०–हँसकर कृपासिन्धु बोले–सोई करो जो तुम्हें सुहावै, नाव जिससे न जाय।।१।। जल्दी जल लाकर पाँव धोओ, देर होती है पार उतारो।।२।। केवट राम की आज्ञा पाय कठौता पानी से भर लाया।।३।। बड़े आनन्द से अनुराग में उमंग कर चरणकमलों को धोने लगा।।४।। दोहार्थ–चरण धोकर और परिवार सहित जलपान कर पितर पारकर फिर प्रसन्नता से प्रभु को पार ले गया।।५८।। चौ०–उतरकर गंगा की रेती में खड़े हुए सीताराम निषाद और लक्ष्मण समेत उतरे।।१।। केवट ने उतरकर दंडवत की, प्रभु सकुचाये कि इसको कुछ नहीं दिया।।२।।

पियहियकी सिय जाननहारी । मणिमुँदरीमन मुदित उतारी ।।३।।
कहेउ कृपालु लेहु उतराई । केवट चरण गहेउ अकुलाई ।।४।।
केवट–नाथ आजुहमकाहनपावा । मिटे दोष दुखदारिददावा ।।५।।
अमितकाल मैं कीन्ह मजूरी । आजु दीन्ह विधि सब भरिपूरी ।।६।।
फिरतिबार जो कछुमोहिं देवा । सो प्रसाद मैं शिरधरिलेवा ।।७।।

दोहा–"बहुत कीन्ह हठ लषण प्रभु, नहिं कछु केवट लेय ।
बिदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमलवर देय ।।५९।।

अपने प्रीतम के हृदय की सीता ने जानकर प्रसन्न हो मणि मुंदरी उतारी।।३।। रघुनाथजी बोले उतराई लो, केवट ने प्रसन्न हो चरण पकड़े।।४।। हे नाथ! आज हमने क्या नहीं पाया, दोष दुख दरिद्र मिट गये।।५।। बहुत काल तक मैंने मजूरी की। आज विधाता ने भरपूर दे दी।।६।। फिरती बार जो कुछ मुझे दोगे सो प्रसाद मैं शिर धरकर लूंगा।।७।। दोहार्थ–बहुत ही रामचन्द्र और लक्ष्मण ने हठ की, केवट ने कुछ नहीं लिया। तब भगवान् ने उज्ज्वल भक्ति का वर देकर बिदा किया। निषाद ने कहा–एक से रुजगार वाले परस्पर काम की मजूरी नहीं लेते, मेरा आपका एक ही काम है। मेरे घाट पर आप आये मैंने पार कर दिया, जब मैं आपके घाट पर जाऊं तुम मुझे पार कर देना। भगवान् ने यह सुन परमभक्ति का वर दिया।।५९।।

इति चतुर्थ दर्शन

अथ पञ्चम दर्शन

प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराज दीख प्रभु जाई ।।१।।
तब प्रभु भरद्वाजपहँ आये । करत दण्डवत मुनि उरलाये ।।२।।
मुनि मन मोद न कछु कहिजाई । ब्रह्मानन्दराशि जनु पाई* ।।३।।

टीका–प्रातःकाल ही प्रातःकृत्य करके रामचन्द्र ने तीर्थराज का दर्शन किया।।१।। तब प्रभु भरद्वाज पै आये। दण्डवत करते देख मुनि ने हृदय से लगाये।।२।। मुनि के मन में जो आनन्द हुआ सो कहा नहीं जाता मानों ब्रह्मानन्द की राशि पाई है।।३।।

दोहा–दीन अशीश मुनीश उर, अति आनन्द अस जानि ।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आनि ।।६०।।

कन्द मूल फल अंकुरनी के । दिये आनि मुनिमनहुँ अमीके ।।१।।

---

* राग बिलाबल–नृपति कुँवर राजत मग जात ।
सुन्दर वंदन सरोरुह लोचन मरकत कनक वरणन मृदु गात ।।
असन चाप तूण कटि मुनिपट जटामुकुट विच नूतन पात ।
फेरत पाणि सरोजन सायक चोरत चिंतहिं सहज मुसकात ।।
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजत बिन भूषण नवसात ।
सुखमा निरखि ग्राम वनितनके नलिन नयन विकसत मानो प्रात ।।
अंग अंग अगणित अनंग छवि उपमा कहत सुकवि सकुचात ।
सियसमेत नित तुलसिदासचित बसत किशोर पथिक दोउ भ्रात ।।१।।

सिया लषण जन*सहित सुहाये । अतिरुचि राम मूल फल खाये ।।२।।
दोहा—राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग अन्हाइ ।
चले सहित सिय लषनजन, मुदित मुनिहि शिरनाइ ।।६१।।

दोहार्थ—मुनि ने अशीश दी। हृदय में अति आनन्द हुआ मानों विधाता ने नेत्रों के सन्मुख पुण्यों का फल प्राप्त कर दिया।।६०।। चौ०—कन्द मूल फल नीके अंकुर अमृत के समान जानकर दिये।।१।। सीता लक्ष्मण सहित रामचन्द्र ने कन्द मूल फल खाये।।२।। दोहार्थ—राम रात्रि में विश्रामकर प्रातःकाल प्रयाग में स्नानकर मुनि को प्रेमसहित शिर नवाय सीता लक्ष्मणसहित चले।।६१।।

देखत** वनसर शैल सुहाये । वाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ।।१।।
दोहा—शुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हर्षे राजिवनैन ।
सुनि रघुवर आगमन मुनि, आग आये लैन ।।६२।।
कन्द मूल फल मधुर मँगाये । सिय सौमित्र राम फल खाये ।।१।।
तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले वचन श्रवण सुखदाई ।।२।।

---

* राग कल्याण—पूंछत ग्रामवधू मृदुवानी ।
गौर श्याम सुभगतनु सुंदर यह तुम्हरेको लगत सयानी ।
शील स्वभाव लषण लघु देवर करशर धनुष सुमंजुल पानी ।
पियतन चितहि दृष्टि नीचे करि सखिन विलोकि सिया मुसुकानी ।
को तुम कौन देश के आये जिहिपुर बसो सो मंगलखानी ।
चलत पियादे पांवत्रान विन राजकुंवर किमि करौ बखानी ।
यह दोउ कुंवर अवधपति के सुत मैं विदेहतनया जगजानी ।
ठान कुमति उरबसी सजोती राजसमय वन दीनो रानी ।
सिया वचन सुन सभी दुखित भई पल छिन मानो विरह गलानी ।
एक कहै भल भूप न कीनो वन नहिं दीनो कीनो हानी ।
राम लषण सिया पंथ कथा सुन जाके हृदय बसी छिन आनी ।
सो भवसिन्धु तरै गोपद जिमि जन तुलसी यह करत बखानी ।।२।।

** राग बिलावल—कहौ सो विपिन है धौं केतिक दूरि ।।टेक।।
जहां गमन कियो कुँवर अवधपति बूझत सिय पिय पतिहि विसूरि ।
प्राणनाथ परदेश पयादेहि चले सुख सकल तजे तृणतूरि ।
करौं बयारि विलम्ब विटपतरि झरिहौं चरण सरोरुह धूरि ।
तुलसिदास प्रभु प्रियावचन सुनि नीरज नयन नीर आये पूरि ।
कानन कहां अबहिं सुनु सुन्दरि रघुपति फिर चितये हितभूरि ।।

राम–देखि पाँयमुनिराय तुम्हारे । भयेसुकृत सब सफल हमारे ।।३।।
अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उद्वेग न पावहिं कोई ।।४।।
असजियजानि कहिय सो ठाऊँ । सियसौमित्रिसहिततहँजाऊँ ।।५।।
तहँ रचि रुचिर पर्णतृणशाला ।। वासकरौं कछुकालकृपाला ।।६।।
"सहज* सरल सुनि रघुवर वानी । साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी ।।७।।
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक । आश्रम कहौं समय सुखदायक ।।८।।

चौ०–वन सरोवर शैलसुहावन देखते हुए वाल्मीकि के आश्रम में प्रभु आये।।१।। दोहार्थ–सुन्दर आश्रम देखकर भगवान् प्रसन्न हुए और राम का आगमन सुनकर मुनि आगे लेने आये।।६२।। चौ०–कन्द मूल फल मीठे मीठे मँगाये। सीता लक्ष्मण रामचन्द्र ने मीठे फल खाये।।१।। तब श्रीराम हाथ जोड़कर कानों को सुखदाई वचन बोले।।२।। हे मुनिराय! तुम्हारे चरण देख हमारे सुकृत सब सफल हुए।।३।। अब जहां आपकी आज्ञा हो और कोई मुनि उद्वेग न पावें।।४।। सो स्थान बताओ जहां सीता लक्ष्मण सहित जाकर निवास करूं।।५।। वहां पत्तों की पर्णशाला रचकर हे कृपालु! कुछ दिनों तक निवास करूं।।६।। रामचन्द्र की स्वाभाविक सीधी बानी सुनकर मुनि ने धन्य धन्य कहा।।७।। मुनि बोले–हे भानुकुलनायक! सुनो समयानुसार सुखदायक आश्रम कहता हूं।।८।।

वा०–चित्रकूटगिरिकरहुनिवासू । तहँतुम्हारसबभांति** सुपासू ।।९।।
शैल सुहावन कानन चारू । करि केहरि मृगविहँगविहारू ।।१०।।
नदी पुनीत पुराण बखानी । अत्रितिया निजतपबल आनी ।।११।।
सुरसरिधारनाममन्दाकिनि । जो सब पातक पोत कडाकिनि ।।१२।।
अत्रि आदि मुनिवर तहँ बसहीं । करहिं योगतप जप तनु कसहीं ।।१३।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू । रामदेहु गौरव गिरिवरहू ।।१४।।

---

* घनाक्षरी–मनमें मुनीन के कवीनमें सुवैवन के नेहिन के नैनन में प्राण में पुरारी के अवध निवासिन के मिथिला बिलासिन के परम उपासिन के सत्यव्रत धारी के ।। ज्ञानी गुणमन्तन के सज्जन अनंतन के सांच शुचि संतन के पर उपकारी के । राम अभिराम सीता लषण समेत सदा हृदय निवास करौ रसिकविहारी के।।१।।

** घनाक्षरी–सकल सुपास पासवास मुनिमंडलीको लायकविलासथलदायक हुलास को कन्द मूल सरस अतूल फल फूल मृग सरिता विशाल गिरि विपिन विकास को ।। रसिकविहारी सो निहारी छबि भारी ताहि भावै ना अनूपरूप अमर निवासको । चित्रकूट विशद विचित्र है पवित्र तहां ठाम अभिराम राम रावरे निवास को ।।१।।

दोहा–"चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाय ।
आइ अन्हाने सरितवर, सीयसहित दोउ भाय ॥६३॥
लषणजानकीसहित प्रभु, राजत * पर्ण निकेत ।
सोह मदनमुनिवेष जनु, रतिऋतुराज समेत ॥६४॥"

इति पञ्चम दर्शन

वा०–चित्रकूटपर्वत में निवास करो वहां सब भाँति से आनन्द रहेगा॥९॥ बहुत शोभायमान वन है हाथी सिंहादि मृग पक्षी विहार करते हैं॥१०॥ पुराण की बखानी हुई बड़ी पवित्र नदी है। अत्रि की स्त्री अनसूया उसे अपने तप के बल से लाई हैं॥११॥ वह गंगा की धारा मन्दाकिनी नाम है जो सब पातकरूप बालकों को डाकिनी है॥१२॥ अत्रि आदि मुनिजन वहां निवास करते हैं। योग जप करके शरीर को कसते हैं॥१३॥ चलकर सब का श्रम दूर करो और पर्वत को गौरव दो॥१४॥ दोहार्थ–चित्रकूट की बड़ी महिमा मुनिराज ने कही, सीतासहित दोनों भाई नदी में आकर नहाये॥६३॥ और लक्ष्मण जानकी सहित प्रभु पर्णकुटी में आकर विराजे मानो कामदेव और रति, वसन्त सहित शोभायमान हो रहे हैं॥६४॥

इति पञ्चम दर्शन

अथ षष्ठ दर्शन

स्थान अयोध्या·

(मन्त्री का लौटकर आना)

दोहा–"देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेसि दण्डप्रणाम ।
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमंत कहँ राम ॥६५॥
रा०–रामकुशलकहुसखासनेही । कहँ रघुनाथ लषण वैदेही ॥१॥
आनेहु फेरि कि बनहिसिधाये । सुनतसचिवलोचनजलछाये ॥२॥

---

* रागबिलावल—फिर फिर राम सिया तन हेरत ।
तृषित जान जल लेन लषण गये भुज उठाय ऊँचे चढ़ टेरत ॥
अवनि कुरंग विहंग द्रुम डारन रूप निहारत पलन न फेरत ।
मगन न डरत निरखकरकमलन सुभग शरासन सायक फेरत ॥
अवलोकत मग लोक चहूँ दिशि मनो चकोर चन्द्रमहि घेरत ।
ते जन भूरि भाग्य भूतलपर तुलसी राम पथिक पद जे रत ॥

शोक विकल पुनिपूछ नरेशू । कहु सिय रामलषण संदेशू ।।३।।
राम रूप गुण शील स्वभाऊ । सुमिरिसुमिरिउरसोचन राऊ ।।४।।
राजा–राज्यसुनाय दीन वनवासू । सुनिमन भयउनहर्षहरासू ।।५।।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी जगमोहिं समाना ।।६।।
दोहा–सखा राम सिय लषण जहँ, तहां मोहिं पहुँचाउ ।
नाहित चाहत चलन अब, प्राण कहौं सतभाउ ।।६६।।

(स्थान अयोध्या)

दोहार्थ–मंत्री ने देख जयजीव कह दण्डप्रणाम किया सो सुनकर राजा व्याकुल हो उठे, हे सुमन्त! राम कहां।।६५।। चौ०–हे सखासनेही! राम की कुशल कह सीता राम लक्ष्मण कहां हैं।।१।। फेरकर लाये कि वन को चले गये, सुनकर मंत्री के नेत्रों में जल भरा।।२।। शोक से व्याकुल हो फिर राजा पूछने लगे सीता राम लक्ष्मण का सन्देश कहो।।३।। राम का रूप गुण शील स्वभाव सुमिर सुमिर कर राजा शोचते हैं।।४।। राज्य सुनाकर वनवास दिया यह सुनकर मन में हर्ष विषाद नं हुआ।।५।। वह पुत्र बिछुड़ने में प्राण न गये मेरे समान कौन पापी है।।६।। दोहार्थ–हे सखा! जहां राम लक्ष्मण सीता हैं वहां मुझे पहुँचाओ नहीं तो अब प्राण चलना चाहते हैं, मैं सतभाव से कहता हूं।।६६।।

मंत्रो–दोहा–प्रथम वास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर ।
न्हाय रहे जल पान करि, सियासहित दोउ वीर ।।६७।।
केवट कीन्ह बहुत सेवकाई । सो यामिन शृंगवेर गँवाई ।।१।।
होत प्रात वटक्षीर मँगावा । जटामुकुट निज शीश बनावा ।।२।।
रामसखा तब नाव मँगाई । प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ।।३।।
लषण धरे धनुबाण बनाई । आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ।।४।।
विकल विलोकि मोहिं रघुवीरा । बोले मधुर वचन धरि धीरा ।।५।।
तात प्रणाम तातसन कहेऊ । बार बार पदपंकज गहेऊ ।।६।।
सोइ सब भांति मोर हितकारी । जाते रह नरनाह सुखारी ।।७।।
कहब संदेश भरतके आये । नीतिन तजब राज्य पद पाये ।।८।।
तेहि अवसर रघुबर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ।।९।।
रघुकुलतिलक चले इहि भांती । देखउँ ठाढ कुलिशधरिछाती ।।१०।।
मैं आपन किमि कहउँ कलेशू । जियत फिरेउ लै राम सँदेशू ।।११।।

असकहिसचिव वचन रहि गयऊ। हानिगलानि शोचवश भयऊ ।।१२।।

सुमन्त ने कहा–पहला निवास तमसा तट दूसरा गंगा के किनारे हुआ। जल पानकर सीता सहित दोनों वीर स्नान कर रहे हैं।।६७।। केवट ने बहुत सेवा की, वह रात शृंगवेरपुर में बिताई।।१।। प्रभात होते ही वट का क्षीर मंगाय जटाओं का मुकुट अपने शिर पर बनाया।।२।। रामसखा ने तब नाव मँगाई और सीता को चढ़ाकर पीछे आप चढ़े।।३।। लक्ष्मण ने धनुष बाण धरे और प्रभु की आज्ञा पाकर आप चढ़े।।४।। रामचन्द्र मुझे व्याकुल देख धीर धर मधुर वचन बोले।।५।। हे तात! पिता से प्रणाम कहना बारबार चरणकमल पकड़ना।।६।। वही सब प्रकार से मेरा हितकारी है जिससे राजा प्रसन्न रहे।।७।। भरत के आने पर सन्देश कहना, राजपद पाकर नीति न त्यागैं।।८।। उसी समय राम का रुख पाय केवट ने पार जाने को नाव चलाई ।।९।। इस प्रकार से रामचन्द्र चले और छाती पर वज्र धर मैं देखता रहा।।१०।। मैं अपना क्लेश क्या कहूं। राम को संदेश लेकर जीता फिरा।।११।। यह वचन कह मंत्री रह गया हानि गलानि शोचवश आ।।१२।।

धरि धीरज उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त कहँ राम कृपालू ।।१३।।
रा०–कहां लषण कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदेही ।।१४।।
हा जानकी लषण हा रघुवर। हा पितुहित चित चातक जलधर ।।१५।।
हा रघुनन्दन प्राण पिरीते। तुमबिन जियत बहुत दिनबीते ।।१६।।
दोहा–राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवरविरह, राउ गये सुरधाम ।।६८।।

फिर राजा धीरज धरकर उठ बैठे। कहा–सुमंत! कृपासागर कहां है।।१३।। कहां लषण कहां स्नेही रामचंद्र प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहां है।।१४।। हा जानकी! हा लक्ष्मण! हा रघुवर! पिता के हितकारी चित चातक के मेघ! ।।१५।। हा प्राणप्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन बीत गये।।१६।। दोहार्थ–छः बार राम राम कहकर राम के वियोग में शरीर त्यागकर महाराज स्वर्गलोक को गये।।६८।।

इति षष्ठ दर्शन

अथ सप्तम दर्शन

(भरत आगमन)

(वसिष्ठ दूतों को बुलाते हैं)

वसिष्ठ–धावहु बेग भरत पहँ जाहूँ। नृपसुधिकतहुँ कहहु जनिकाहू ।।१।।

इतनहि कहउ भरत सन जाई । गुरु बुलाइ पठये दोउ भाई ।।२।।

दोहा-"इहि विधि शोचत भरतमन, धावन पहुँचे जाइ ।
गुरुअनुशासन श्रवण सुनि, चले गणेश मनाइ ।।६९।।

(भरत आगमन)

चौ०-वसिष्ठ बोले-हे दूतो! जल्दी से भरतपुर जाओ और राजा का समाचार कहीं किसी से मत कहो।।१। भरत से इतना जाकर कहना कि, गुरु ने दोनों भाइयों को बुला भेजा है।।२।। दोहार्थ-इधर भरतजी शोच करते थे कि धावन जाकर पहुँचे और गुरु की आज्ञा श्रवण से सुनकर गणेश मनाय चले।।६९।।

आवत सुतसुनि कैकयिनन्दनि । हरषी रविकुल ज़लरुहचन्दनि ।।१।।
साजि आरती मुदित उठिधाई । द्वारहि भेंटि भवन लै आई ।।२।।
सुतहि सशोच देखि मन मारे । पूछति नैहर कुशल हमारे ।।३।।
सकल कुशल कह भरत सुनाई । पूछी निजकुल कुशल भलाई ।।४।।
भर०-कहुकहँ तात कहाँ सबमाता । कहँसियरामलषण प्रिय भ्राता ।।५।।
कै०-तात बात मैं सकल सँवारी । भइ मंथरा सहाय बिचारी ।।६।।
कछुक काज विधि बीच बिगारेउ । भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ।।७।।
तात राउ नहिं शोचन योगू । बड़इसुकृत यश कीन्हेउ भोगू ।।८।।
अस अनुमानि शोच परिहरहू । सहितसमाज राजपुरकरहू ।।९।।

(सब कथा सुनाती हैं)

भू०-जोपै कुरुचि रही असि तोहीं । जनमत काहे न मारेसि मोहीं ।।१०।।
पेड़ काटि तैं पल्लव सींचा । मीन जियन हित वारि उलीचा ।।११।।

दोहा-हंस वंश दशरथ जनक, राम लषण से भाय ।
जननी तू जननी भई, विधि से काह बसाय ।।७०।।

चौ०-पुत्र को आता हुआ सुनकर कैकेयी सूर्यकुल कमल को मलीन करने को चांदनी रूप प्रसन्न हुई।।१।। पुत्र को आया सुन प्रसन्न हो उठ धाई और द्वार पर भेंटकर घर में ले आई।।२।। पुत्र को मन मारे और शोच करता देख पूछने लगी कि हमारे मायके में कुशल है।।३।। सब कुशल कहकर भरत ने सुनाई और अपने कुल की कुशल भलाई पूछी।।४।। कहो पिता और सब माता कहां हैं और सीता राम लक्ष्मण प्रियभ्राता कहां हैं।।५।। हे तात! मैंने सब बात सँवारी बिचारी मन्थरा सहाय हुई।।६।। कुछ ही काम विधाता ने बीच में बिगाड़ दिया कि राजा सुरपुर को गये।।७।। हे पुत्र! राजा शोच करने योग्य नहीं हैं, बड़े ही सुकृत से यह भोग प्राप्त होते हैं जो उन्होंने

किये।।८।। ऐसा मन में मानकर शोच त्यागन करो। समाजसहित पुर का राज्य करो।।९।। भरत बोले–जो तेरे मन में ऐसी कुरुचि रही तो मुझे जन्मते ही क्यों न मार दिया।।१०।। पेड़ को काटकर तैंने पत्ते सींचे, मच्छी के जीने के निमित्त जल उलीचा।।११।। दोहार्थ–सूर्यवंशी दशरथ से पिता जनक से श्वसुर राम लक्ष्मण से भाई और तू उस कुल की जननी हुई, विधाता से क्या बसाता है।।७०।।

जब ते कुमति कुमति मनठयऊ। खण्डखण्ड होइ हृदय न गयऊ ।।१।।
वर माँगत मन भइ नहिं पीरा। जरि न जीह मुँह परे न कीरा ।।२।।
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं। मरणकाल विधिमति हरिलीन्हीं ।।३।।
विधिहु न नारिहृदय गति जानी। सकलकपट अघ अवगुण खानी ।।४।।
सकलसुशील धर्मरत राऊ। सो किमि जानहिं तीयस्वभाऊ ।।५।।
अस को जीवजंतु जगमाहीं। जेहि रघुनाथ प्राणप्रिय नाहीं ।।६।।
जो हसि सो हसि मुहँमसिलाई। आँखि ओट उठि बैठहु जाई ।।७।।

दोहा–राम विरोधी हृदयते, प्रगट कीन्ह विधि मोहिं।
मो समान को पातकी, वादि कहौं कछु तोहिं ।।७१।।

भरत दयानिधि मन दुख पाई। कौशल्या पहँ गे दोउ भाई ।।१।।
देखत भरत विकल भये भारी। परे चरणतनु दशा बिसारी ।।२।।
भ०–मातु तात कहँ देहु दिखाई। कहँ सिय राम लषण दोउ भाई ।।३।।
कैकयि कत जनमी जगमाँझा। जो जनमी तो भई किन बाँझा ।।४।।
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही। अपयश भाजन प्रिय जनद्रोही ।।५।।

चौ०–हे कुमति! जबसे तेरे मन में कुमति हुई तब से तेरा हृदय खण्ड खण्ड न हो गया।।१।। वर माँगते समय मन में पीर न हुई, जीभ न जली, मुख में कीड़े न पड़े।।२।। महाराज ने तेरा विश्वास कैसे किया। मरण समय विधाता ने मति हर ली।।३।। उस विधाता ने भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जानी। यह सब कपट पाप और अवगुण की खान होती हैं।।४।। सब प्रकार से सुशील धर्म में प्रीति करनेवाले राजा स्त्री का स्वभाव कैसे जानें।।५।। ऐसा कौन जगत् में जीव जन्तु है जिसको राम प्राणों के समान प्यारे नहीं।।६।। तू जो हो सो हो, मुख में मसि लगाय नेत्रों की ओट में जा बैठ।।७।। दोहार्थ–विधाता ने मुझे राम के विरोधी हृदय से प्रगट किया है। मेरे समान कौन पातकी है तुझे कुछ कहना वृथा है।।७१।। चौ०–यह कह दोनों भाई कौशल्या पहँ गये।।१।। और देखकर भरत बहुत व्याकुल हुए। शरीर की दशा भुलाय चरणों में पड़े।।२।। हे माता! तात को दिखा दो। सीता राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं।।३।। कैकेयी जगत् में क्यों उत्पन्न हुई और हुई भी तो बाँझ क्यों न हुई।।४।। जिसने मुझ कुल के कलंकी को प्रकट किया जो मैं अपयश का भाजन और प्रियजनों का द्रोही हुआ।।५।।

कोत्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी । गतिअसतोरि मातु जेहिलागी ।।६।।
पितु सुरपुर वन रघुकुल केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ।।७।।
धिक् मोहिं भयउँ वेणुवन आगी । दुसह दाह दुख दूषण भागी ।।८।।
"माता भरत गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे ।।९।।"
कौ०–अजहुँबच्छबलिधीरजधरहू । कुसमयमुझिशोक परिहरहू ।।१०।।
जनि मानहु जियहानि गलानी । कालकर्म्मगति अघटित जानी ।।११।।
काहुहि दोष देहु जनि ताता । भा मोहिं सबविधि वाम विधाता ।।१२।।
जो ऐसेहु विधि मोहिं जियावा । अजहुँ को जानै का तेहि भावा ।।१३।।

दोहा–पितु आयसु भूषण वसन, तात तजे रघुवीर ।
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे वल्कल चीर ।।७२।।

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू । सबकर सबविधि करि परितोषू ।।१।।
चलोविपिन सुनि सियसंग लागी । रही न रामचरण अनुरागी ।।२।।
सुनतहि लषण चले लगि साथा । रहे न यतन किये रघुनाथा ।।३।।
तब रघुपति सबही शिरनाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ।।४।।

तीनों भुवन में मेरे समान अभागा कौन है हे माता! जिसके निमित्त यह तेरी गति हुई।।६।। पिता सुरपुर में और राम वन में और सब अनर्थों का हेतु मैं यहां।।७।। मैं इस वेणुवन में आगरूप मुझे धिक्कार है, दुसह दाह दुख और दूषण का भागी हुआ।।८।। तब माता भरत को गोद में बैठाय आंसू पोंछकर कोमल वचन उचारे।।९।। हे पुत्र! बलि जाऊं। अब भी धीरज धरो। कुसमय समझकर शोक का त्याग करो।।१०।। कालकर्म की गति अघटित जानकर मन में हानि ग्लानि मत मानो।।११।। हे पुत्र! किसी को दोष मत दो। मुझे ही सब प्रकार विधाता वाम हुआ है।।१२।। जो ऐसी अवस्था में भी उसने मुझे जिवाया है तो अब भी कौन जाने उसे क्या भाता है।।१३।। दोहार्थ–हे तात! पिता की आज्ञा से राम ने भूषण वसन त्याग दिये और हृदय में हर्ष विषाद के बिना वल्कल वसन धारण किये।।७२।। चौ०–मुख प्रसन्न मन में राग रोष कुछ नहीं। सबका सब भांति से परितोष कर।।१।। वन को चले, सुनकर जानकी संग लगी और राम के चरणों के अनुराग के कारण न रह सकी।।२।। सुनते ही लक्ष्मण भी साथ चले और राम के यत्न करने पर भी न रहे।।३।। तब रघुनाथजी सबको शिर नवाय सीता लक्ष्मण सहित चले।।४।।

रामलषण सिय वनहिं सिधाये । गई न संग न प्राण पठाये ।।५।।
यह सब भाइन आंखिन आगे । तउ न तजत तनु जीव अभागे ।।६।।
मोहिं न लाज निज नेह निहारी । रामसरिस सुत मैं महतारी ।।७।।

जिये मरे भल भूपति जाना । मोरहृदय शत कुलिश समाना ॥८॥
छल विहीन शुचि सरल सुवानी । बोले* भरत जोरि युगपानी ॥९॥
भरत जे अघ मातु पिता गुरु मारे । गाइगोठ महि सुरपुरजारे ॥१०॥
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥११॥
जे पातक उपपातक अहहीं । कर्म वचन मन भवकवि कहहीं ॥१२॥
ते पातक मोहि होउ विधाता । जो यह होइ मोर मत माता ॥१३॥

दोहा—जो परिहंरि हरि हर चरण, भजहिं भूतगण घोर ।
तिन्हकी गतिमोहिं देउ विधि, जो जननी मत मोर ॥७३॥

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं । पिशुन पराव पाप कहि देहीं ॥१॥

राम लक्ष्मण सीता वन को गये। मैं न संग गई न प्राण भेजे॥५॥ यह सब इन नेत्रों के आगे हुआ तो भी शरीर से प्राण पृथक् नहीं होते॥६॥ मुझे अपना देह देखकर लाज भी नहीं है कि रामचंद्र से तो पुत्र और मुझसी महतारी॥७॥ जीना मरना तो राजा ने भली प्रकार जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है॥८॥ छलविहीन पवित्र सीधी वाणी भरतजी हाथ जोड़ बोले॥९॥ जो पाप माता पिता गुरु के मारने से होता है, गोशाला ब्राह्मण और पुर जलाने से होता है, जो पाप स्त्री और बालक के वध करने से होता है॥१०॥ जो मीत और राजा को विष देने से पाप होता है॥११॥ जो और पातक उपपातक हैं, कर्म वचन और मन के पाप हैं, जो कवि कहते हैं॥१२॥ हे माता! जो इसमें मेरा मत होय तो यह सब पातक मुझे लगें॥१३॥ दोहार्थ—जो विष्णु और शंकर के चरण छोड़कर घोर भूतगणों का भजन करते हैं तो विधाता मुझे उनकी गति दे जो माता इसमें मेरा मत हो॥७३॥ जो वेद को बेचते धर्म को दुहते चुगली कर पराया पाप कह देते हैं॥१॥

लोभी लम्पट लोल लबारा । जे ताकहिं परधन परदारा ॥२॥
पावउँ मैं तिनकर गति घोरा । जो जननी यह सम्मत मोरा ॥३॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे । परमारथ पथ विमुख अभागे ॥४॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई । जिनहिं न हरिहर सुयश सुहाई ॥५॥
तजि श्रुतिपन्थ वामपथ चलहीं । वंचक विरचि वेष जग छलहीं ॥६॥

---

*घनाक्षरी—गायद्विजमारे तिय बालक संहारे गुरु स्वामी अपचारे झूठ वचन उचारेते ।
माता सुता भगिनी कुदृष्टिते निहारे मित्रद्रोह उरधारे शरणागत निकारेते ।
सत्य प्रण टारे निज धरम निवारे निंदा पिशुन प्रचारे परनारी धन हारेते ।
होवैं पाप भारे मोहिं लागैं मातु सारे राम वनहि सिधारे जो पैं संमत हमारेते ॥१॥

तिन्हकै गति शंकर मोहिं देऊ । जननी जो यह जानौं भेऊ ।।७।।

छन्द–मन वचन कर्म्म कृपायतन कर दास मैं सुनु मातुरी ।
उर बसत राम सुजान जानत प्रीति अरु छल चातुरी ।।
"अस कहत लोचन बहत जल तनु पुलक नखलेखतमही ।
हिय लाय लिये बहोरि जननी जानि प्रभुपदरतसही ।।"

कौश०–राम प्राणते प्राण तुम्हारे । तुम रघुपतिहि प्राणते प्यारे ।।१।।
विधु विष चुवै श्रवै हिम आगी । होइ वारिचर वारि विरागी ।।२।।
भये ज्ञान वरु मिटै न मोहू । तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू ।।३।।
अस कहि मातु भरत हिय लाये । थन पय श्रवहिं नयन जल छाये ।।

जो लोभी लम्पट चंचल लबार पराई स्त्री और पराये धन को ताकते हैं।।२।। मैं उनकी घोरगति पाऊँ हे माता! जो इसमें मेरा मत हो।।३।। जो साधुओं के संग में प्रेम नहीं करते जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं।।४।। जो नरतनु पाय भगवान् का भजन नहीं करते जिनको हरिहर की कथा भली नहीं लगती।।५।। जो वेदमार्ग को त्याग वाम मार्ग में चलते हैं और अनेक वेष धारणकर जगत् को ठगते हैं।।६।। उनकी गति मुझे शिवशंकर दें हे माता! जो यह भेद मैं जानता हूं।।७।। छन्दार्थ–हे माता! मैं तो मन वचन कर्म से रघुनाथजी का दास हूँ वह राम सुजान हृदय में निवास करते हैं प्रीति छल और चतुराई जानते हैं यह कह नेत्रों से जल बहने लगा शरीर पुलकायमान हो गया नखों से पृथ्वी लिखने लगे प्रभु के चरणों में बड़ी प्रीति देख माता ने हृदय से लगाया।।१।। चौ०–कौ०– राम के प्राण से तुम्हारे प्राण हैं तुम रघुनाथ को प्राण से प्यारे हो।।१।। चाहै चन्द्रमा से विष चुवै बरफ से आग निकलनें लगै जलचर जल के बिना जी.जाँय।।२।। चाहै ज्ञान होने पर मोह न मिटै परन्तु तुम राम के प्रतिकूल न होगे।।३।। यह कह माता ने भरत को हृदय से लगाया स्तनों से दूध और नेत्रों से जल बहने लगा।।४।।

"पितुहित भरत कीन्ह जस करणी । सो मुख लाख जाइ नहिं वरणी ।।५।।"

अयोध्या की सभा

(वसिष्ठादि ऋषि मुनि और मन्त्री पुरवासी बैठे हैं)

"बैठे राज सभा सब जाई । पठये बोलि भरत दोउ भाई ।।६।।
भरत वशिष्ठ निकट बैठारे । नीति धर्म्ममय वचन उचारे ।।७।।
प्रथम कथा सब मुनिवर वरणी । कैकेयि कठिन कीन्ह जस करणी"।।
व०–रावराज्यपद तुम कहँ दीन्हा । पिता वचन फुर चाहिय कीन्हा ।।
करहु शीश धरि भूप रजाई । है तुमकहँ सब भाँति भलाई ।।१०।।

दोहा–कीजिय गुरु आयसु अवशि, कहहि सचिव करजोरि ।
रघुपति आये उचित जस तब तस करब बहोरि ।।७४।।
भरत–मोहिं उपदेश दीन्ह गुरुनीका । प्रजा सचिव सम्मत सबहीका ।।१।।
अब तुम विनय मोरि सुनिलेहू । मोहिं अनुहरत सिखावन देहू ।।२।।
जाउँ राम पहँ आयसु देहू । एकहि आंक मोर हित येहू ।।३।।

फिर पिता के निमित्त भरत ने जैसी करनी की सो लाख मुख से बरणी नहीं जाती सब कर्म से निश्चिन्त हुए।।५।।

(सभा में भरतप्रबोध)

सब कोई राजसभा में जाकर बैठे और भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलाया।।६।। भरत को वसिष्ठ ने निकट बैठाय नीति धर्ममय वचन कहे।।७।। पहले सब कथा मुनि ने कही जो कैकेयी ने कठिन करनी की।।८।। फिर कहा राजा ने तुमको राजपद दिया है पिता का वचन पूरा करना चाहिये।।९।। राजा की आज्ञा शिरपर धारणकर करो तुमको सब प्रकार भलाई।।१०।। दोहार्थ–गुरु की आज्ञा अवश्य करो ऐसा सब मंत्री हाथ जोड़कर बोले फिर रामचन्द्र के आने पर जैसा उचित हो तैसा करना।।७४।। चौ०–भरत बोले–मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया है यह प्रजा मंत्री सबको सम्मत है।।१।। अब तुम सब मेरी विनय सुनो और मुझे देखकर शिक्षा दो।।२।। मैं राम पर जाऊंगा मुझे आज्ञा दो एक अंक में तो यह मेरा हित है।।३।।

दोहा–कैकेयी सुत कुटिलमति, राम विमुख गतलाज ।
तुम चाहत सुखमोहवश, मोहिसे अधमके राज[१] ।।७५।।
डर न मोहिं जग कहहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिं न शोचू ।।१।।
एकै बड़ उर दुसह दुवारी । मोहिं लगि भे सियराम दुखारी ।।२।।
जीवनलाहु लषण भल पावा । सब तजि राम चरण मन लावा ।।३।।
मोर जन्म रघुवर वन लागी । झूठकाह पछिताउँ अभागी ।।४।।

---

१ भाई हौं अवध कहा रहि लहि हौं ।।टेक।।
राम लषण सिय चरण विलोकन काल्हि काननहिं जैहौं ।।भाई०।।
यद्यपि मो कैकेयी कुमातुते ह्वै आई अति पोची ।
सन्मुख गये शरण राखहिंगे रघुपति परम सकोची ।।भाई०।।
तुलसी यों कहि चले भोरही लोग सकल संग लागे ।
जन वन जरत देखि दारुण दव निकसि विहंगम भागे ।।भाई हौं।।

दोहा–आपनि दारुण दीनता, सबहिं कहेउँ समुझाय ।
देखे बिन रघुवीर पद, जियकी जरनि न जाय ।।७६।।
एकहिं आंक इहै मन माहीं । प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ।।१।।
दोहा–अवशि चलिय वन रामपहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
शोकसिन्धु बूडत सबहिं, तुम अवलम्ब न दीन्ह ।।७७।।

दोहार्थ–एक तो मैं कैकेयी का पुत्र कुटिलमति राम से विमुख लाजरहित हूँ, तुम मोहवश होकर मुझसे अधम के राज्य में सुख चाहते हो।।७५।। चौ०–मुझे इस बात का डर नहीं कि जगत् पोच कहे परलोक का भी शोच नहीं है।।१।। पर एक ही हृदय में दुःसह आग बलती है कि मेरे निमित्त सीता राम दुःखी हुए हैं।।२।। लक्ष्मण ने उत्तम जीवन का लाभ पाया कि सब त्यागकर राम के चरणों में मन लगाया।।३।। और मेरा जन्म राम के बन जाने के निमित्त हुआ मैं अभागी झूठा क्या पछताऊँ।।४।। दोहार्थ–मैं अपनी कठिन दीनता सबसे समझाकर कहता हूं रामचन्द्र के चरण देखे बिना जीकी जरन न जायगी।।७६।। बस मन में एक यही अभिलाषा है प्रातःकाल ही प्रभु पै चलूंगा।।१।। दोहार्थ–सब बोले रामचन्द्र पर अवश्य चलो भरत ने अच्छा उपाय किया शोकसागर में डूबते हुओं को तुमने अवलम्वन दिया है।।७७।।

दोहा–"सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहि चलाइ ।
सुमिरि राम सिय चरण तब, चले भरत दोउ भाइ।।७८।।

(सब चलते हैं)

इति सप्तम दर्शन

दोहार्थ–भले मंत्रियों को नगर सौंपकर और आदर से सबको बुलाय राम और सीता के चरणों को स्मरण कर दोनों भाई चले।।७८।।

इति सप्तम दर्शन

अथ अष्टम दर्शन

(स्थान गंगातट, निषादसम्वाद)

समाचार सब सुने निषादा । हृदय विचार करै सविषादा ।।१।।
नि०–कारण कौन भरत वन जाहीं । है कछु कपटभाव मनमाहीं ।।२।।
जोपै जिय न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।३।।
दोहा–अस विचारि गुह ज्ञातिसन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथवासहु बोरहु तरणि, कीजिय घाटारोहु ।।७९।।

होइ सजग सब रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरणके ठाटा ।।१।।
सन्मुख लोह भरतसन लेहू । जियत न सुरसरि उतरन देहू ।।२।।
समर मरण पुनि सुरसरि तीरा । रामकाज क्षणभंगु शरीरा ।।३।।

(निषाद सम्बाद स्थान गंगातट)

टीका–यह समाचार निषाद ने सुने तो विषादपूर्वक मन में विचार करने लगा।।१।। भरत वन को क्यों जाते हैं कुछ मन में कपट भाव है।।२।। जो मन में कुटिलाई न होती तो सेना संग क्यों लेते।।३।। दोहार्थ–ऐसा विचारकर निषाद ने जातिवालों से कहा सब सावधान हो जाओ पतवार डूबाकर नाव डुबा दो और घाट रोक लो।।७९।। चौ०–सावधान होकर सब घाट रोको और मरनके ठाट सजाओ।।१।। भरत से सन्मुख लोहा लो जीतेजी गंगा मत उतरने दो।।२।। एक तो युद्ध में मरना दूसरे गंगा के किनारे राम के निमित्त यह शरीर जो क्षणभंगुर है लगे तो अच्छा है।।३।।

भरत भाइ नृप मैं जन नीचू । बड़े भाग्य अस पाइय मीचू ।।४।।
वेगिहि भाइहु सजहु सजोऊ । सुनि रजाय कदराय न कोऊ ।।५।।
भले नाथ सब कहहिं सहर्षा । एकहि एक बढ़ावहिं कर्षा ।।६।।
दीख निषाद नाथ भल टोलू । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ।।७।।
इतना कहत छींकभइ वांये । कहेहु शकुनियन्ह खेत सुहाये ।।८।।
बूढ़ा–बूढ़ एक कह शकुन विचारी । भरतहि मिलिय न होइहि रारी ।।९।।
रामहि भरत मनावन जाहीं । शकुन कहै अस विग्रह नाहीं ।।१०।।
सुन गुह कहै नीककह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ।।११।।
नि०–लखब सनेह सुभाय सुहाये । बैर प्रीति नहिं दुरत दुराये ।।१२।।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कन्दमूल फल खगमृग माँगे ।।१३।।
देखि दूरिते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीशहि दण्ड प्रणामू ।।१४।।
जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा । भरतहि कहेउ बुझाय मुनीशा ।।१५।।
गांव जाति गुह नांव सुनाई । कीन्ह जुहारि माथ महिलाई ।।१६।।

उनके भाई भरत और मैं नीच बड़े भाग्य से ही ऐसी मृत्यु होती है।।४।। हे भाइयो! शीघ्र ही युद्ध का सामान सजाओ आज्ञा सुनकर कोई कायरता मत करो।।५।। जो आज्ञा स्वामी की हर्षपूर्वक सब कोई यह कह एक एक का क्रोध बढ़ाने लगे।।६।। तब निषादनाथ ने भला टोल देखकर कहा युद्ध का बाजा बजाओ।।७।। इतना कहते बाईं ओर छींक हुई शकुन विचारनेवाले ने

कहा अच्छे स्थान में छींक हुई है।।८।। एक बूढ़े ने शकुन विचार कर कहा भरत से मिलो रारि न होगी।।९।। भरतजी रामचन्द्र को मनाने जाते हैं शकुन कहता है विग्रह नहीं है।।१०।। यह सुनकर निषाद ने कहा बूढ़ा अच्छा कहता है सहसा करके मूढ़ पछिताते हैं।।११।। अच्छें भावों से इनका प्रेम देखो वैर प्रीति छिपाये से नहीं छिपती।।१२।। ऐसा कहकर भेंट सजाने लगे कन्द मूल फल खग मृग मांगे।।१३।। दूर से देखकर अपना नाम कह मुनीश्वर को दण्डप्रणाम किया।।१४।। राम का प्यारा जानकर अशीश दी और वसिष्ठजी ने भरत से समझाकर कहा यही राम का सखा है।।१५।। गाँव का निवासी निषादजाति हूँ गुह नाम सुनाकर पृथ्वी में माथा नवाय प्रणाम किया।।१६।।

दोहा–करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहु लषण सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ।।८०।।
तेहि वासर वश प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ ।
राम दरश की लालसा, भरत सरिस सब साथ ।।८१।।

इति अष्टम दर्शन

दोहार्थ–उसे दण्डवत करता देखकर भरत ने हृदय से लगा लिया मानों लक्ष्मण से भेंट हुई हृदय में प्रेम नहीं समाता।।८०।। उस दिन निषाद के यहां रहकर प्रभात ही रघुनाथजी को स्मरणकर रामदर्शन की लालसा से सब चले निषादादि साथ हुए।।८१।।

इति अष्टम दर्शन

नवम दर्शन

स्थान चित्रकूट

(राम लक्ष्मण जानकी स्थित हैं)

वहाँ राम रजनी अवशेषा । जागे सीय स्वप्न अस देखा ।।१।।
सीता–सहित समाज भरत जनु आये । नाथ वियोग तापतनुताये ।।२।।
सकल मलिनमन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी ।।३।।
राम[१]–लषण स्वप्न यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ।।४।।
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ।।५।।

---

१ ए उपही कोउ कुवर अहेरी ।।टेक।।
श्याम गौर धनु बाण तूणधर चित्रकूट अब आय रहेरी ।।ए उपही०।।
इनहिं बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहेरी ।।ए उपही०।।

(स्थान चित्रकूट)

टीका–यहां राम थोड़ी रात्रि रहे जागे कि सीता ने यह स्वप्न देखा।।१।। मानो समाजसहित भरत आये हैं और तुम्हारे वियोग के ताप से तनु तप रहा है।।२।। और सब सासू मलिन मन दुःखी और ही प्रकार की देखी हैं।।३।। राम बोले हे लक्ष्मण! यह स्वप्न भला नहीं होगा कोई आकर कठिन बात सुनावेगा।।४।। एक किरात ने आनकर कहा भरत आते हैं जिनके संग चतुरंगिणी बड़ी सेना है।।५।।

सो सुनि रामहिं भा अति शोचू । इत पितु वच उत बन्धु संकोचू ।।
लषण कहेउ प्रभु हृदय खँभारू । कहत समय सम नीति विचारू ।।७।।
ल०–विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोहवश होहिं जनाई ।।८।।
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना ।।९।।
तऊ आज राज्यपद पाई । चले धर्म्म मर्य्याद मिटाई ।।१०।।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपुरण रंच न राखब काऊ ।।११।।
समुझि परहिं सो आज विशेषी । समर सरोष राममुख देखी ।।१२।।
कहँलगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ।।१३।।
उठि कर जोरि रजायसु मांगा । मनहु धीररस सोवत जागा ।।१४।।
आजु राम सेवक यश लेऊं । भरतहि समर सिखावन देऊं ।।१५।।
आइ बना भल सकल समाजू । प्रकटवरौं रिस पाछिल आजू ।।१६।।
राम–कही तात तुम नीति सुहाई । सबते कठिन राजमद भाई ।।१७।।
सुनहु लषण भल भरत सरीखा । विधि प्रपञ्च महँ सुना न दीखा ।।१८।।

सो सुनकर राम को बड़ा शोच हुआ। उधर पिता के वचन इधर भाई का संकोच।।६।। लक्ष्मण ने देखा कि प्रभु के हृदय में कुछ चञ्चलता हुई, समयानुसार नीति को विचार कहने लगे।।७।। कि विषयी जीव प्रभुताई पाकर मूढ़ता से अहंकारी हो जाते है।।८।। देखो भरत नीति में रत सुजान साधु हैं, प्रभु के चरणों में उनका प्रेम है यह सब जानते है।।९।। पर वे भी आज राजपद पाकर धर्ममर्यादा मिटा चले।।१०।। भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रुमात्र को भूमि ने न रहने दूं।।११।। सो आज युद्ध में राम का क्रोधित मुख देखकर समझ पड़ेगी।।१२।। हम कहां लो सहैं और मन मारे रहें एक तो नाथ के साथ और हाथ में धनुष बाण है।।१३।। यह कह उठे हाथ जोड़कर आज्ञा मांगी मानो वीर रस सोते से जागा।।१४।। मैं आज राम की सेवकाई का यश लूं, भरत को

–वनिता बन्धु समेत वन पितुहित कठिन कलेश सहेरी ।।ए उपही०।।
वचन परस्पर कहत किरातन पुलकगात जल नयन बहेरी ।।ए उपही०।।
तुलसी प्रभुहिं विलोकत इकटक लोचन जनु विनुपलक लहेरी ।।ए उपही०।।

युद्ध में शिक्षा दूं।।१५।। सब समाज अच्छा आ बना है आज पिछली रिस भी प्रकट करूंगा।।१६।। राम बोले–हे तात! तुमने भली नीति कही है, राजमद सबसे कठिन है।।१७।। हे लक्ष्मण! सुनो भरत के समान भला कोई संसार में नहीं है।।१८।।

दोहा–भरतहि होइ न राजमद, विधि हरि हरपद पाइ ।
कबहुँ कि कांजी सीकरन्हि, क्षीरसिन्धु विनसाइ ।।८२।।
चले भरत जहँ सिय रघुराई । साथ निषादनाथ लघुभाई ।।१।।
करत प्रणाम चले दोउ भाई । कहत प्रीति शारद सकुचाई ।।२।।
रज शिरधरि हियनयन लगावहिं । रघुवरमिलन सरिस सुख पावहिं ।।३।।
भरत दीख* प्रभु आश्रम पावन । सकल सुमंगल सदन सुहावन ।।४।।
पाहि पाहि कहि पाहि गुसाँई । भूतल परे लकुटकी नाँई ।।५।।

दोहा–बरबस** लिये उठाय उर, लाये कृपानिधान ।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरे सबहि अपान ।।८३।।
मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटे राम ।
भूरि भाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण करत प्रणाम ।।८४।।

दोहार्थ–ब्रह्मा, विष्णु, और शंकर का पद पाकर भी भरत को राजमद न होगा, कहीं कांजी के कणकों से क्या क्षीरसागर बिलगा सकता है।।८२।। चौ०–यह सुन लक्ष्मण मौन हो बैठ गये। इधर जहां राम सीता लक्ष्मण थे वहां को भरत चले। संग में निषाद और शत्रुघ्न थे।।१।। आश्रम को देख दोनों भाई प्रणाम करते चले, वह प्रीति देख सरस्वती सकुचाई।।२।। वहां की रज शिर पर धर हृदय और नेत्रों में लगाते हैं। राम के मिलने के समान सुख पाते हैं।।३।। भरत ने प्रभु का पवित्र आश्रम देखा जो सब सुमंगलो से शोभित था।।४।। रक्षा करो स्वामी रक्षा करो यह कह भरत भूमि में लकुट के समान गिर गये।।५।। दोहार्थ–देखते ही राम ने बरबस उठकर हृदय से लगाया। इस समय भरत राम का मिलना देख सब अपनपा भूल गये।।८३।। फिर प्रेम से रिपुसूदन से मिल रघुनाथजी केवट से मिले। लक्ष्मण प्रणाम करते भरत को मिले।।८४।।

---

*राग केदारा–विलोके दूरते दोउ वीर ।
उर आयत आजान सुभग भुज श्यामल गौर शरीर ।।१।।
शीश जटा सरसीरुह लोचन वने परिधन मुनि चीर ।
निकट संग सिय शोभित करनि धुनत धनु तीर ।।२।
**मन अंग हुण्ड तनु पुलकि शिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर ।
गड़त गोड़ मनो सकुच पंकमहं कढ़त प्रेमबल धीर ।।३।।
तुलसिदास दशा देखि भरत की उठि धाये अतिहि अधीर ।
लिय उठाइ उरलाइ कृपानिधि विरह जनित हरि पीर ।।४।।

भेंटचउ लषण ललकि दोउ भाई । बहुरि निषाद लीन्ह उरलाई ।
पुनि मुनिगण दोउ भाइनवन्दे । अभिमत आशिष पाइ अनंदे ॥२॥
सानुज भरत उमँगि अनुरागा । धरिशिर सियपद पद्मपरागा ॥३॥
पुनिपुनि करत प्रणाम उठाये । सिय कर कमल परशि बैठाये ॥४॥
सीय अशीश दीन्ह मनमाहीं । मगनसनेह देह सुधि नाहीं ॥५॥

दोहा–भेंटी रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष ।
अम्ब ईश आधीन जग, काहु ने देइय दोष ॥८५॥

चौ०–फिर लक्ष्मण छोटे भाई से मिले फिर निषाद को हृदय से लगाया॥१॥ फिर दोनों भाइयों ने मुनियों को प्रणाम किया और अभिमत अशीश पाय प्रसन्न हुए॥२॥ फिर भरतजी ने प्रसन्नतापूर्वक भाई सहित सीता के चरणों में शिर धरा॥३॥ बारंबार प्रणाम करने पर जानकी ने हाथ से स्पर्शकर उठाया ॥४॥ और मन में ही जानकी ने अशीश दी। स्नेह में मगन हो गये। देह की सुधि न रही॥५॥ दोहार्थ–फिर रामचंद्र सब माताओं से मिले और सबको समझाया। हे माता! ईश्वर के अधीन सब जगत् है, दोष किसको दिया जाय॥८५॥ "फिर सबको आश्रम में लाकर बैठाया। पिता को जलदान दिया"।

इति नवम दर्शन

दशम दर्शन

चित्रकूट की सभा

(मन्त्री आदि बैठे हैं)

दोहा–तब मुनि बोले भरतसन, सब सँकोच तजि तात ।
कृपासिन्धु प्रियबन्धुसन, कहहु हृदय की बात ॥८६॥

पुलक शरीर सभा भे ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥१॥

(चित्रकूट की सभा, मन्त्री आदि बैठे हैं)

दोहार्थ–तब वसिष्ठजी ने भरत से कहा–हे तात! अब सब संकोच त्याग राम से अपने जी की बात कहो॥८६॥ चौ०–तब भरतजी पुलकित शरीर हो सभा में खड़े हुए। कमल से नेत्रों में प्रेम का जल भरा और बोले॥१॥

भ०–भूपति मरण प्रेमप्रण राखी । जननी कुमति जगत सब साखी ॥२॥
देखि न जाहिं विकल महतारी । जरहिं दुसह ज्वर पुर नरनारी ॥३॥

मैंहिं सकल अनरथकर मूला । सो सुनि समुझि सहौं सब शूला ।।४।।
सुनि वनगमन कीन्ह रघुनाथा । करि मुनिवेष लषण सिय साथा ।।५।।
बिनु पनही अरु प्यादेहि पाये । शंकर साखि रह्यो इहि धाये ।।६।।
बहुरि निहार निषाद सनेहू । कुलिश कठिन उर भयउ न वेहू ।।७।।
तब सब आंखिन देखउँ आई । जियत जीव जड़ सबै सहाई ।।८।।
जिनहिं निरखि मग साँपिनिबीछी । तजहिं विषमविष तामस तीछी ।।९।।

दोहा–तेइ रघुनन्दन लषण सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सुहावै काहि ।।८७।।

बोले उचित वचन रघुनन्दू । दिनकर कुल कैरव बनचन्दू ।।१।।
राम–तात जीय जनि करहु*गलानी । ईश अधीन जीवगात जानी ।।२।।

भ०–राजा ने शरीर त्याग प्रेम का पन रखा और माता की कुमति का सब जगत् साक्षी है।।२।। माताओं की विकलता को नहीं देखी जाती। पुरनरनारी कठिन दुःखी हैं।।३।। इस सब अनर्थ का मूल मैं ही हूं, सो सुन समझकर सब कष्ट सहता हूं।।४।। यह सुनकर कि, आपने वन में गमन किया है, मुनि का वेष धर सीता लक्ष्मण को संग लिया है।।५।। बिना जूते प्यादे पांव आप आये शिव साक्षी हैं, मुझे बड़ा घाव है।।६।। फिर निषाद का सनेह निहारकर भी यह वज्र से कठिन हृदय न फटा।।७।। अब यह सब आँखों से आकर देखा। यह अधम जीव सब दुःख सहकर जीता है।।८।। जिनको देखकर सांपन बीछी भी मार्ग में अपने तीक्ष्ण विष को त्यागन कर देती हैं।।९।। दोहार्थ–वे राम लक्ष्मण और सीता जिसको अनहित लगे उसके पुत्र को छोड़कर विधाता दुःसह किसे सहावेगा।।८७।। चौ०–तब सूर्यकुल कैरव के खिलाने को चन्द्रमारूप राम उचित वचन बोले।।१।। हे तात! जीव की गति ईश के अधीन जानकर मन में ग्लानि मत करो।।२।।

तीन काल त्रिभुवन मत मोरे । पुण्य श्लोक तात कर तोरे ।।३।।
दोष देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु साधुसभा नहिं सेई ।।४।।

दोहा–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ।।८८।।

---

* काहे को मानन हानि हिये हौ ।।टेक।।
प्रीति नीति गुण शील धर्म कहँ तुम अवलम्ब दिये हौ ।।काहे०।।
तात जात जानि वे न ये दिन करि प्रमाण पितु बानी ।
ऐहौं बेगि धरहु उर धीरज कठिन कालगति जानी ।।काहे०।।
तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरण पीठ निज दीन्हे ।
मनहु सबनिके प्राण पाहरू भरत शीश धरि लीन्हें ।।काहे को०।।

कहौं सुभाव सत्य शिव साखी । भरतभूमि रह राउर राखी ।।१।।
तात तर्क करहु जिय जाये । वैर प्रेम नहि दुरै दुराये ।।२।।
राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेम प्रण लागी ।।३।।
तासु वचन मेटत मन शोचू । तेहिते अधिक तुम्हार सँकोचू ।।४।।
तापर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा । अवशि जो कहहु चहौं सो कीन्हा ।।५।।

दोहा—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सो आज ।
"सत्यसिन्धुरघुवीर वचन, सुनि भा सुखी समाज ।।८९।।

लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू । मिटेउ क्षोभ नहिं मन संदेहू"।।१।।
भ०—अब करुणाकर कीजिय सोई । जनहित प्रभुचित क्षोभ न होई ।।२।।
जो सेवक साहिबहि सँकोची । निजहित चहै तासु मति पोची ।।३।।

तीन काल तीनों भुवन में हे तात! मेरे मत से तुमको पुण्य लोक प्राप्त हैं।।३।। और माता को तो वे मूर्ख दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधु सभा नहीं सेई है।।४।। दोहार्थ—तुम्हांरा नाग स्मरण करते ही सब पाप के प्रपञ्च और सब अंमलग मिटते हैं, लोकं में सुयश और परलोक में सुख होता है।।८८।। चौ०—स्वभाव से सत्य कहता हूं, शिव साखी हैं हे भरत! यह भूमि तुम्हारे रखने से रही है।।१।। हे तात! तुम मन में कुतर्क मत करो। वैर और प्रेम छिपाये से नहीं छिपता है।।२।। राजा ने सत्य रखा। मुझे त्याग दिया और प्रेम के निमित्त अपना शरीर त्याग दिया।।३।। उनका वचन मेटते मन में शोच होता है और उससे अधिक तुम्हारा संकोच है।।४।। उस पर मुझे गुरु ने आज्ञा दी है जो तुम कहो सो अवश्य करूंगा।।५।। दोहार्थ—मन प्रसन्नकर संकोच त्याग जो कहो सो आज करूं। सत्यसन्ध राम के वचन सुन समाज सुखी हुआ।।८९।। चौ०—सब विधि गुरु और स्वामि का सनेह देख क्षोभ मिट गया। मन में सन्देह न रहा और बोले।।१।। हे कृपासागर! अब वही करो जिसमें दास का हित हो और आपके मन में क्षोभ न हो।।२।। जो सेवक साहब का संकोची अपना ही हित चाहता है उसकी मति पोच है।।३।।

सेवक हित साहब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ विहाई ।।४।।
स्वारथ नाथ फिरे सबहीका । किये रजाइ कोटि विधि नीका ।।५।।
देव एक विनती सुनि मोरी । उचित होइ तब करब बहोरी ।।६।।
तिलक समाज साजि सब आना । करियसफल प्रभु जो मनमाना ।।७।।

दोहा—सानुज पठइय मोहिं वन, कीजिय सबहि सनाथ ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ* ।।९०।।

* रघुपति मोहिं संग किन लीजै ।।

नतरु जाहिं वन तीनों भाई । बहुरिय सीय सहित रघुराई ।।१।।
जिहि विधि प्रभु प्रसन्नमन होई । करुणासागर कीजिय सोई ।।२।।
राम-जानहु तात तरणिकुलरीती । सत्यसिन्धु पितुकीरति कीती ।।३।।

सेवक का यही हित है कि स्वामी की सेवा सब सुख और लोक छोड़कर करे।।४।। स्वारथ तो सबका आपके फिरने से होगा और आज्ञा माननी कोटि भाँति से भली है।।५।। हे देव! एक मेरी विनय सुनिये फिर जैसा उचित हो तैसा करिये।।६।। सब तिलक की सामग्री सजाकर लाया हूं, हे प्रभु! जो आपके मन को रुचै तो सफल करिये।।७।। दोहार्थ–भाईसहित मुझे वन में भेजकर अवध को सनाथ करो नहीं तो दोनों भाइयों को लौटा दो हे नाथ! मैं आपके साथ चलूँगा।।९०।। चौ०–न तो तीनों ही भाई वन को जायँ, आप सीतासहित लौटिये।।१।। जिस प्रकार प्रभु का मन प्रसन्न हो हे कृपासागर! वही करो। राम बोले–हे तात! सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसागर पिता की कैसी कीर्ति है।।३।।

मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू । सकल धर्म धरणीधर शेशू ।।४।।
सो तुम करहु करावहु मोहू । तात तरणि कुलपालक होहू ।।५।।
सो विचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजापरिवार सुखारी ।।६।।
तात तुम्हारि मोरि परिजनकी । चिन्ता गुरुहिनृपहि घरवनकी ।।७।।
माथे पर मुनि गुरु मिथिलेशू । हमहिं तुमहिं स्वप्नेहु न कलेशू ।।८।।
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ । स्वारथ सुयश धर्म परमारथ ।।९।।
पितु आयसु पालिय दोउ भाई । लोक वेद भल भूप भलाई ।।१०।।
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालै । चलत सुगम पग परत न खालै ।।११।।
अस विचारि सब शोच विहाई । पालहु अवध अवधि भरिजाई ।।१२।।

–बार बार पुर जाहु नाथ केहि कारण आयसु दीजै ।।१।।
यद्यपि हौं अति अधम कुटिलमति अपराधिनि को जायो ।।
प्रणतपाल कोमल स्वभाव जिय जानि शरण तकि आयो ।।२।।
जो मेरे तजि चरण आन गति कहौं हृदय कछु राखी ।।
तो परिहरहु दयालु दीन हित प्रभु अभिअन्तर साखी ।।३।।
नाते नाथ कहौं मैं पुनि पुनि प्रभु पितु मातु गोसाई ।
भजनहीन नर देह वृथा खर श्वान फेरु की नाईं ।।४।।
बन्धु वचन सुनि श्रवण नयन राजीव नीर भरि आये ।।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बांह भरत उर लाये ।।५।।

तुम पुनि मातु सचिव सिख यानी । पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी ।।१३।।
प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं । सादर भरत शीश धरि लीन्हीं ।।१४।।

दोहा–मांगेउ बिदा प्रणाम करि, राम लिये उरलाय ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाय ।।९१।।
लषणहिं भेंटि प्रणाम करि, शिरधरि सियपद धूरि ।
चले सप्रेम अशीश सुनि, सकल सुमंगल मूरि ।।९२।।

माता पिता गुरु स्वामी की आज्ञा मानना सब धर्म और धरणी के धारण में शेष के समान है।।४।। वही तुम करो और मुझसे कराओ। हे भाई! सूर्यकुल के पालक होओं।।५।। यह विचार भारी संकट सहकर प्रजा परिवार को सुखी करो।।६।। हे तात! तुम्हारी मेरी कुटुंब की घर की वन की सब चिंता गुरु और महाराज जनक को है।।७।। जब शिर पर मुनि गुरु और मिथिलेश हैं तो हमको तुमको स्वप्न में कलेश नहीं है।।८।। मेरा तुम्हारा यही परमपुरुषार्थ है कि स्वार्थ सुयश और धर्म परमार्थ बने।।९।। दोनों भाई पिता की आज्ञा पालैं इसमें लोक वेद में भला है, राजा की भी भलाई है।।१०।। जो गुरु पिता माता स्वामी की आज्ञा पालन करे तो उसका चलना सुगम है। कहीं पैर खाली नहीं पड़ता।।११।। ऐसा विचारकर सब शोच त्यागकर चौदह वर्ष तक अयोध्या की पालना करो।।१२।। माता और मंत्रियों की शिक्षा मानकर प्रजा राजधानी और इस भूमि की रक्षा करो।।१३।। यह कह प्रभु ने कृपाकर खड़ाऊ दी। भरत ने प्रेम से शिर पर धर लीं।।१४।। दोहार्थ–प्रणाम करके राम से बिदा माँगी। राम ने हृदय से लगाया। उसी समय इन्द्र ने अवसर पाय लोगों को उच्चाटन किया।।९१।। दोहार्थ–लक्ष्मण से मिलकर प्रणाम कर जानकी के पग की धूरि शिर पर धर और सब सुमंगल की अशीष सुनकर चले।।९२।।

दोहा–भरत मातुपद वन्दि प्रभु, शुचि सनेह मिलि भेंट ।
विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच शोच सब मेट* ।।९३।।

---

*माई री मोहिं न कोउ समुझावे ।।टेक।।
रामगमन सांचौं किधौं सपनो मन परतीति न आवे ।
लगे रहन मेरे नैननि आगे राम लषण अरु सीता ।
तदपि न मिटत दाह या उसकी विधि जो भयो विपरीता ।।मा०।।
दुख न रहै रघुपतिहि विलोकत तनु न रहै विनु देखे ।
करत न प्राण पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे ।।मा०।।
कौशल्या के विरह वचन सुनि रोय उठीं सब रानी ।
तुलसिदास रघुवीर विरहकी पीर न जात बखानी ।।मा०।।
हाथ मीजिबो हाथ रह्यो ।।टेक।।

गुरु गुरुतियपद वन्दि प्रभु, सीता लषण समेत ।
फिरे हर्ष विस्मय रहित, आये पर्ण निकेत ।।९४।।

इति दशम दर्शन

इति अयोध्याकाण्ड २

प्रभु ने भरत की माता के चरणों को प्रणामकर पवित्र स्नेह से मिल भेंटकर सब संकोच निवार पालकी पर चढ़ाय बिदा किया फिर अपनी माता को मिल बिदा किया।।९३।। फिर प्रभु ने गुरु गुरुपत्नी को प्रणाम कर बिदाकर हर्ष विस्मयसहित सीता लक्ष्मण के संग अपनी पर्णकुटी में आगमन किया।।९४।।

इति दशम दर्शन

(सब गये)

इति अयोध्याकाण्ड २

लगी न संग चित्रकूटहुते ह्यॉं कहा जात कह्यो ।।१।।
पति सुरपुर सिय राम लषण वन मुनि व्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मशान पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो ।
मेरोई हियो कठोर कहैं विधि कहुँ कुलिश लह्यो ।
तुलसी वन पहुँचाइ फिरीसुत क्यों कछु परत कह्यो ।।
राघो एकबार फिरि आवो ।
ए वरवाजि विलोकि आपनै बहुरो वनहि सिधावो ।।१।।
जे पय प्याइ पोषि कर पंकज बारबार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडले अब ते निपट विसारे ।।२।।
भरत सौगुणी सार करत हैं अतिप्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहु दिन जात झांवरे मनहुँ कमल हिम मारे ।।३।।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सँदेशो ।
तुलसी मोहि और सबहिनते इनको बड़ो अँदेशो ।।४।।

रामलीला-रामायण

आरण्यकाण्ड ३

अथ प्रथम दर्शन

चित्रकूट स्थान

(जयन्त का काकरूप धर आना)

एक बार चुनि कुसुम सुहाये । निजकर भूषण राम बनाये ।।१।।
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक शिलापर भाधर ।।२।।
सुरपति सुत धरि वायसवेषा । शठ चाहत रघुपति बल देखा ।।३।।
सीता चरण चोंच हति भागा । मूढ़ मन्दमति कारण कागा ।।४।।
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक सन्धाना ।।५।।
प्रेरित अस्त्र ब्रह्मशर धावा । चला भाजि वायस भय पावा ।।६।।
धरि निज रूप गयउ पितुपाहीं । राम विमुख राखा तिन नाहीं ।।७।।

दोहा-जिमि २ भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुखदीन ।
तिमि २ धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ।।१।।

टीका-एक बार अच्छे फूल चुनकर राम ने अपने हाथ से भूषण बनाये ।।१।। और आदर से सीता को पहराये और शोभा के धरनेवाले स्फटिक शिला पर बैठे थे।।२।। कि उसी समय इन्द्रपुत्र जयंत ने काक का रूपधर प्रभु का बल देखना चाहा।।३।। सीता के चरणों में चोंच मारकर भागा मूढ़ मन्दमति काक होने के कारण हुई।।४।। रुधिर चला यह बात राम ने जानी तब धनुष पर सींक का बाण चढ़ाया।।५।। अस्त्र की प्रेरणा से ब्रह्मबाण चला तब काक भय पाय भाज चला।।६।। अपना रूप धर पिता पर गया राम से विमुख होने के कारण उसको पिता ने नहीं रखा।।७।। दोहार्थ-दुःख से दीन और व्याकुल इन्द्रपुत्र जैसे जैसे भाजने लगा तैसे तैसे परम प्रवीण राम का बाण पीछे पीछे धावमान हुआ।।१।।

नारद देखा बिकल जयन्ता । लागिदया कोमलचित सन्ता ।।१।।
दूरिहिते कहि प्रभु प्रभुताई । भजे जात बहुविधि समुझाई ।।२।।

पठवा तुरत रामपहँ ताही । कहसि पुकारि प्रणतहित पाही ।।३।।
आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि कृपालु रघुराई ।।४।।
सुनि कृपालु अति आरतबानी । एक नयन करि तजा भवानी ।।५।।
सो०–कीन्ह मोह वश द्रोह, यद्यपि त्यहिकर वध उचित ।
प्रभु छांड़ेउ करि क्षोह, को कृपालु रघुवीर सम ।।१।।
अत्रीके आश्रम प्रभु गयऊ । सुनत महामुनि हर्षित भयऊ ।।१।।
करत दण्डवत मुनि उरलाये । प्रेमवारि दोउजन अन्हवाये ।।२।।
करि पूजा कहि वचन सुहाये । दिये मूलफल प्रभु मन भाये ।।३।।
सो०–प्रभु आसन आसीन, भरिलोचन शोभा निरखि ।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि अस्तुति करत ।।२।।
अनसूयाके पद गहि सीता । मिली बहोरि सुशील विनीता ।।१।।
ऋषिपत्नीमन सुखअधिकाई । आशिष देइ निकट बैठाई ।।२।।

चौ०–नारद ने जयन्त को व्याकुल देखा तब कोमलचित्त और सन्त होने के कारण दया हुई।।१।। दूर से ही भाजते हुए को प्रभु की प्रभुताई बहुत प्रकार समझाई ।।२।। और तुरंत उसको राम पर भेजा। उसने पुकारकर कहा हे दीनों पर हित करनेवाले! रक्षा करो।।३।। और शीघ्रता से चरण पकड़ लिये हे कृपालु राम! रक्षा करो, रक्षा करो।।४।। कृपालु ने उसकी दुःख की वाणी सुन एक नेत्ररहित कर उसे छोड़ दिया।।५।। सोरठार्थ–उसने मोहवश द्रोह किया। यद्यपि उसका वध उचित था पर प्रभु ने उसको दया कर रखा, भगवान् के समान कौन दयालु है।।१।। चौ०–फिर प्रभु अत्रिऋषि के आश्रम में गये, सुनकर महामुनि प्रसन्न हुए।।१।। दण्डवत करते ही दोनों भाइयों को हृदय से लगाया और प्रेम के जल से दोनों को स्नान कराया।।२।। पूजा कर अच्छे वचन कह प्रभु को मन भाये मूल फल दिये।।३।। सोरठार्थ–प्रभु आसन पर बैठे हैं। नेत्रभर शोभा देख परम प्रवीण मुनि हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।।२।। चौ०–सीता अनसूया के पद ग्रहण कर सुशील और नम्रता से मिली।।१।। ऋषिपत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। अशीश देकर निकट बैठाया।।२।।

दिव्य वसन भूषण पहिराये । जे नित नूतन अमल सुहाये ।।३।।
कह ऋषिवधू सरल मृदुबानी । नारिधर्म्म कछु ब्याज बखानी ।।४।।
अ०–मातपिता भ्राता हितकारी । मितसुखपद सुनु राजकुमारी ।।५।।
अमित दान भर्त्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।।६।।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपति काल परखिये चारी ।।७।।

बृद्ध रोगवश जड़ धन हीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥८॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना । नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥९॥
एकै धर्म्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥१०॥
जग पतिव्रता चारिविधि अहहीं । वेदपुराण सन्त अस कहहीं ॥११॥
उत्तम के अस बस मनमाहीं । स्वप्नेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥१२॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥१३॥
बिनु अवसर रह भयते जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥१४॥
पतिवंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्पशत परई ॥१५॥
क्षणसुखलागि जन्मशतकोटी । दुख न समझ तेहिसम को खोटी ॥१६॥

दिव्य भूषण वस्त्र पहराये जो नित्य नये और उज्ज्वल रहनेवाले थे।।३।। ऋषिवधू सरल और कोमलवाणी बोली। कुछ नारि धर्म का ब्याज कहने लगी।।४।। हे राजकुमारि! माता पिता भ्राता हितकारी यह सब मित सुख देनेवाले हैं।।५।। पर भर्त्ता अमित सुख देनेवाला है। वह स्त्री बड़ी अधम है जो उसकी सेवा नहीं करती।।६।। धीरज धर्म मित्र और नर नारी ये सब आपतकाल में परखे जाते हैं।।७।। बूढ़ा रोगवश जड़ धनहीन अंधा बहरा क्रोधी अतिदीन।।८।। ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में अनेक दुःख पाती है।।९।। एक ही धर्म, एक ही व्रत नेम कि, काय वचन मन से पति के चरणों में प्रेम करना।।१०।। जगत् में पतिव्रता चार प्रकार की हैं, ऐसा वेद पुराण और सब सन्त कहते हैं।।११।। उत्तम के तो मन में यह बात होती है कि, स्वप्न में भी दूसरा पुरुष नहीं है।।१२।। मध्यम पतिव्रता दूसरे पुरुषों को भ्राता पिता पुत्र के समान देखती हैं।।१३। जो बिना अवसर भय से रहे उस स्त्री को अधम जानो।।१४।। जो अपने पति को ठगकर दूसरे से प्रेम करती है वह सौ कल्प तक रौवर में पड़ती है।।१५।। क्षणसुख के निमित्त कोटि जन्म का दुःख नहीं समझती, उसके समान कौन खोटी है।।१६।।

विनु श्रम तारि परमगति लहई । पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ॥१७॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुणाई ॥१८॥
सुनि जानकी परम सुख पावा । सादर तासु चरण शिरनावा ॥१९॥
तब मुनिसन कह कृपानिधाना । आयुस होइ जाउँ वन आना ॥२०॥
अत्रि–केहिविधि कहौंजाहु अब स्वामी । कहहुनाथ तुम अन्तर्यामी ॥२१॥
मुनिपद कमल नाइकरि शीशा । चले वनहिं सुर नर मुनि ईशा ॥२२॥
आगे राज अनुज पुनि पाछे । मुनिवर वेष बने अति आछे ॥२३॥
मिला असुर बिराध मगुजाता । गर्जत घोर कठोर रिसाता ॥२४॥

क्षेपक

तुरतहि सो सीतहि लैं गयऊ । रामहृदय कछु विस्मय भयऊ ।।२५।।
बहुरि लषण रघुवरहि प्रबोधा । पांच बाण छांड़े करिक्रोधा ।।२६।।
दोहा–बहुरि एक शर मारेउ, परा धरणि धुनि माथ ।
उठा प्रबल पुनि गर्जेउ, चला जहाँ रघुनाथ ।।२।।
ऐसे कहत निशाचर धावा । अब नहिं बचहु तुमहिं मैं खावा ।।१।।
उरग समान जोरि शर साता । आवतही रघुवीर निपाता ।।२।।

बिना श्रम ही स्त्री को परमगति होती हैं जो छल छोड़ पतिव्रतधर्म करती है।।१७।। पति से प्रतिकूल जहां जाकर जन्मै तरुणाई पाकर विधवा हो जायगी।।१८।। सुनकर जानकी ने परम सुख पाया। आदर से उसके चरणों में शिर नवाया।।१९।। तब रघुनाथजी मुनि से बोले–आज्ञा होय तो दूसरे वन में जाऊं।।२०।। मुनि बोले–स्वामी तुम अन्तर्यामी हो, कैसे कहूं कि तुम वन को जाओ।।२१।। तब मुनि के चरणों में शिर नवाय सुर नर मुनि के ईश वन को चले।।२२।। आगे राम पीछे लक्ष्मण मुनियों के सुन्दर वेश किये हुए।।२३।। मार्ग में जाते विराध राक्षस मिला। महाघोर कठोर गर्जता और रिसाता चला।।२४।। सीता को उठाकर ले चला। राम का हृदय बड़ा विस्मित हुआ।।२५।। तब लक्ष्मण ने राम को समझाय क्रोधकर उस पर पांच बाण छोड़े।।२६।। दोहार्थ–फिर एक बाण मारा कि वह माथा धूनकर भूमि पर गिरा और फिर उठकर गर्जा जहाँ राम हैं वहाँ चला।।२।। ऐसा कहता राक्षस दौड़ा, अब नहीं बचोगे, मैं तुमको खा जाऊँगा।।१।। तब सर्प के समान सात बाण जोड़कर आते ही रामचंद्र ने उसको मार दिया।।२।।

सीता आइ चरण लपटानी । अनुज सहित तब चले भवानी ।।३।।
प्रभु आये जहँ मुनि शरभंगा । सुन्दर अनुज जानकी संगा ।।४।।
शर०–कह मुनि सुनु रघुवीरकृपाला । शंकरमानस राजमराला ।।५।।
जात रहेउँ विरंचि के धामा । सुनेउँ श्रवण वन आवत रामा ।।६।।
चितवत पन्थ रहेउँ दिनराती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ।।७।।
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्हीं कृपा जानि जन दीना ।।८।।
सो कछु देवन मोर निहोरा । निज प्रण राखेउ जनमनचोरा ।।९।।
तब लगि रहहु दीन हितलागी । जबलगि मिलौं तुम्है तनु त्यागी ।।१०।।
"योग यज्ञ जपतप व्रत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भक्ति वर लीन्हा ।।११।।
यहिविधि सररचि मुनिशरभंगा । बैठे हृदय छांड़ि सब सङ्गा ।।१२।।

शरभंग–दो०–सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुणरूप श्रीराम ॥३॥
"अस कहि योग अग्नि तनु जारा । राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा ॥१॥
अस्तुति करहि सकल मुनिवृंदा । जयति प्रणतहित करुणाकन्दा ॥२॥

तब सीता आनकर चरणों में लिपट गई। हे भवानी! तब अनुज सहित राम चले॥३॥ तब प्रभु सीता लक्ष्मणसहित शरभंग मुनि के आश्रम में आये॥४॥ मुनि बोले–हे कृपालु! आप शिव के मनरूप सरोवर में राजहंस हैं॥५॥ मैं ब्रह्मलोक को जाता था, वहाँ सुना कि वन में श्रीराम आवेंगे॥६॥ तब से दिनरात मार्ग निहारता हूं। अब तुमको देख छाती ठंडी हुई॥७॥ हे नाथ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। आपने दीन जान कृपा की है॥८॥ हे स्वामी! इसमें कुछ मेरा निहोरा नहीं है दासों के मन हरनेवाले आपने अपना प्रण रखा॥९॥ हे दीनों पर हित करनेवाले! तब तक आप यहां स्थिर रहो जब तक शरीर छोड़कर तुमसे मिलूं॥१०॥ योग यज्ञ जप तप व्रत जो किया था वह प्रभु को देकर भक्ति का वर लिया॥११॥ इस प्रकार शरभंग मुनि चिता बनाय सब संग छोड़ बैठे॥१२॥ दोहार्थ–हे प्रभु! नील मेघ के समान श्याम शरीर! सीता लक्ष्मणसहित आप सगुणरूप से निरन्तर मेरे मन में निवास करो॥३॥ यह कह योग की अग्नि में शरीर जलाय राम की कृपा से वैकुण्ठ गया॥१॥ सब मुनि स्तुति करने लगे। हे प्रणतहितकारी! करुणाकन्द आपकी जय हो॥२॥

पुनि रघुनाथ चले वन आगे । मुनिवर वृन्द पुलकि सँग लागे ॥३॥
अस्थिसमूह देखि रघुनाथा । पूछा मुनिन लागि अतिदाया ॥४॥
निशिचर निकर सकल मुनिखाये । सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ॥५॥
दोहा–निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह ।
सकल मुनिनके आश्रमन्ह, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥४॥
मुनि अगस्त्यकर शिष्य सुजाना । नाम सुतीक्षणरत भगवाना ॥१॥
प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥२॥
आगे देखि राम तनु श्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा ॥३॥
परेउ लकुट इव चरणन लागी । प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी ॥४॥
भुज विशाल गहि लिये उठाई । प्रेम प्रीति राखेउ उरलाई ॥५॥
सुतीक्ष्ण–दो०–अनुज जानकीसहित प्रभु, चापबाण धरिराम ।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निष्काम ॥५॥

"एवमस्तु कहि रमानिवासा । हषि चले कुम्भ ऋषि पासा ।।१।।
मुनि प्रणाम करि युग करजोरी । सुनहु नाथ कछु विनती मोरी ।।२।।

फिर रघुनाथजी आगे वन को चले मुनिजन प्रेम से संग चले।।३।। रामचंद्र ने अस्थियों का समूह देख दयाकर मुनियों से पूछा।।४।। मुनि बोले हे राम! यहाँ राक्षसों ने अनेक मुनियों को भक्षण कर लिया है सुनकर राम के नेत्रों में जल भरा।।५।। दोहार्थ–भूमि को राक्षसहीन कर दूँगा ऐसा भुजा उठाय प्रण किया और सब मुनियों के आश्रम में जा जाकर सुख दिया।।४।। मुनि अगस्त्य का एक सुतीक्षण शिष्य भगवान् में बड़ी प्रीति करता था।।१।। उसने प्रभु का आगमन सुना तो मनोरथ करता हुआ आया।।२।। आगे जाकर श्यामशरीर रघुनाथजी को देखा कि, वे सुखधाम सीता लक्ष्मणसहित आ रहे हैं।।३।। लकुट के समान चरणों में पड़ गया बड़भागी मुनि प्रेम में मग्न हो गया।।४।। बड़ी भुजा से ग्रहण कर प्रभु ने उठाकर प्रेमप्रीति से हृदय से लगाय रखा।।५।। दोहार्थ–और बोला–हे प्रभु! अनुज जानकीसहित धनुष बाण लिये आप मेरे हृदयरूपी गगन (आकाश) में चन्द्रमा के समान निष्काम निवास करो।।५।। ऐसा ही हो यह कह भगवान् अगस्त्यजी के पास चले।।१।। मुनि ने प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा हे नाथ! मेरी विनती सुनो।।२।।

ऋषि–अब प्रभुसंग जाउँ गुरुपाहीं । तुमकहँ नाथ निहोरा नाहीं ।।३।।
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई । लिये संग विहँसे दोउ भाई ।।४।।
तुरत सुतीक्षण गुरुपहँ गयऊ । करि दण्डवत कहत अस भयऊ ।।५।।
सु०–नाथ कोशलाधीश कुमारा । आये मिलन जगत आधारा ।।६।।
राम अनुज समेत वैदेही । निशिदिन देव जपतहहु जेही ।।७।।
सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाये । प्रभुविलोकि लोचन जलछाये ।।८।।
मुनिपद कमल परे दोउ भाई । ऋषि अति प्रीति लिये उरलाई ।।९।।
पुनि करि बहु प्रकार प्रभुपूजा । मोहिंसम भागवन्त नहिं दूजा ।।१०।।
राम–तब रघुवीर कहा मुनिपाहीं । तुम सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ।।११।।
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोहीं । ज्यहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ।।१२।।
अग०–संतत दासन्ह देहु बड़ाई । ताते मोहिं पूछ्यहु रघुराई ।।१३।।
हे प्रभु परम मनोहर ठाऊं । पावन पंचवटी त्यहि नाऊं ।।१४।।
गोदावरी नदी तहँ बहई । चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई ।।१५।।
दण्डकवन पुनीत प्रभु करहू । उग्र शाप मुनिवरकर हरहू ।।१६।।

मैं भी आप के संग गुरु के पास चलूंगा इसमें आपको कुछ निहोरा नहीं है।।३।। कृपानिधि ने मुनि की चतुराई देख लक्ष्मणसहित हँसकर मुनि को संग लिया।।४।। फिर तुरत सुतीक्ष्ण गुरुपर गया और दण्डवत कर बोला।।५।। हे नाथ! कोशलाधीशकुमार जगत् के आधार आपसे मिलने आये हैं।।६।। राम अनुज और सीता सहित आये हैं जिनका जप आप निरन्तर करते रहते हैं।।७।। सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठ धाये और प्रभु को देख नेत्रों में जल भरिआया ।।८।। दोनों भाई मुनि के चरणकमल में पड़े और ऋषि ने अतिप्रीति से हृदय लगाया।।९।। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा की, आज मेरे समान दूसरा भाग्यवान नहीं है।।१०।। तब रघुवीर ने मुनि से कहा हे प्रभु! तुमसे कुछ दुराव नहीं है।।११।। अब आप मुझे वह मन्त्र दें जिस प्रकार मुनिद्रोहियों को मारूं।।१२।। मुनि बोले–आप निरन्तर दासों को बड़ाई देते हैं इससे आपने मुझे पूछा है।।१३।। हे प्रभु! पवित्र पंचवटी थोड़ी दूर बड़ी मनोहर स्थली है।।१४।। वहां गोदावरी नदी बहती है, वह चारों युग में प्रसिद्ध है।।१५।। हे प्रभु! वहां जाकर दण्डक वन को पवित्र करो मुनि का बड़ा कठिन शाप हरो।।१६।।

बास करहु तहँ रघुकुलराया । कीजै सकल मुनिन्हपर दाया ।।१७।।
"चले राम मुनि आयसु पाई । तुरतहि पंचवटी नियराई ।।१८।।
दोहा–गृध्रराजसों भेंट भइ, बहुविधि प्रीति दृढ़ाय ।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाय ।।६।।

इति प्रथम दर्शन

हे रघुकुल के अधिपति! आप वहां निवास करो सब मुनियों पर दया करो।।१७।। मुनि की आज्ञा पाय रघुनाथजी चले तुरत ही पंचवटी निकट हुई।।१८।। दोहार्थ–वहां गृध्रराज से भेंट हुई बहुत प्रकार से प्रीति बढ़ाई गोदावरी के किनारे प्रभु पर्णशाला बनाकर रहे।।६।।

इति प्रथम दर्शन

अथ द्वितीय दर्शन

(शूर्पणखा विरूपकरणम्)

"शूर्पणखा रावणकी बहिनी । दुष्ट हृदय दारुण जिमि अहिनी ।।१।।
पंचवटी सो गइ यक बारा । देखि विकल भइ युगलकुमारा ।।२।।
रुचिर रूप धरि प्रभुपहँ आई । बोली वचन मधुर मुसुकाई ।।३।।
शू०–तुम सम पुरुष न मोसमनारी । यह संयोग विधि रचा विचारी ।।४।।
मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं । देखेउँ खोजि लोकतिहुँ माहीं ।।५।।

ताते अबलगि रहिउ कुमारी । मन माना कछु तुमहिं निहारी ।।६।।
रा०–सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहै कुमार मोर लघु भ्राता ।।७।।

(शूर्पणखा विरूपकरणम्)

टीका–रावण की बहिनी शूर्पणखा दुष्ट हृदय दारुण सर्पिणी के समान थी।।१।। सो एक समय पंचवटी में गई दोनों कुमारों को देख व्याकुल हुई।।२।। सुन्दर रूप धरकर प्रभुपर आई मधुर मुसकाकर वचन बोली।।३।। तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान स्त्री कोई नहीं यह संयोग विधाता ने संभालकर रचा है।।४।। मेरे समान जगत् में कोई पुरुष नहीं मिला यह मैंने तीन लोक में खोज देखा।।५।। और इससे अब तक कुमारी रही तुम्हें देखकर कुछ मन माना है।।६।। सीता को देखकर प्रभु ने बात कही कि मेरे छोटे भ्राता कुमार हैं।।७।।

गइ लक्ष्मण रिपुभगिनी जानी । प्रभुविलोकि बोले मृदुबानी ।।८।।
ल०–सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ।।९।।
प्रभु समरथ कोशलपुर राजा । जो कछु करैं उन्हैं सब साजा ।।१०।।
पुनि फिरि राम निकटसो आई । प्रभु लक्ष्मणपहँ बहुरि पठाई ।।११।।
तब खिसिआनि रामपहँ गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ।।१२।।
राम–सीतहि सभयदेखि रघुराई । कहा अनुजसन सैन बुझाई ।।१३।।
दोहा–लक्ष्मण अति लाघव तिहि, नाक कान बिनु कीन ।
ताके कर रावण कहँ, मनहुँ चुनौती दीन ।।७।।

(सेना आती है राम देखते हैं)

खर दूषणपै गइ विलखाता । धृक २ तव पौरुष बल भ्राता ।।१।।
तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई । यातुधान सुनि सेन बुलाई ।।२।।
बहुविधि कहत वचन रणधीरा । आये सकल जहां रघुवीरा ।।३।।
राम–लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर । आवा निशिचर कटकभयंकर ।।४।।
रह्यउ सजग सुनि प्रभुकै बाणी । चलेसहित सिय शरधनुपाणी ।।५।।

लक्ष्मण पर जब गई तो शत्रु की भगिनी जानो और प्रभु को देखकर कोमल वाणी बोले।।८।। हे सुन्दरी! सुन मैं उनका दास पराधीन तुम्हारे योग नहीं हूं।।९।। प्रभु कोशल पुर के राजा समर्थ हैं जो कुछ करै उन्हें सब शोभता है।।१०।। वह फिर राम के समीप आई प्रभु ने फिर लक्ष्मण पर भेजी ।।१२।। सीता को सभीत देखकर रामचंद्र ने लक्ष्मण को सैन से समझाकर कहा।।१३।।

दोहार्थ—लक्ष्मण ने बड़ी शीघ्रता से उसको नाक कान के बिना कर दिया उसके हाथ से मानो रावण को चितौनी दी।।७।। चौ०—व्याकुल हो खरदूषण पर गई और बोली भाई तेरे बल पौरुष को धिक्कार है।।१।। उसके पूछने पर उसने सब कथा सुनाई। यातुधान ने सुनकर सेना बुलाई ।।२।। बड़े वचन कहते चले और रघुनाथ के समीप आये तब रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले।।३।। जानकी को ले पर्वत की कन्दरामें जाओ राक्षसों का भयंकर कटक आया है।।४।। और सावधान रहना यह प्रभु की वाणी सुन धनुष बाण हाथ में ले चले।।५।।

देखि राम रिपुदल चलि आवा । बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ।।६।।
खर०—सचिव बोलि बोले खरदूषण । यह कोउ नृप बालक नर भूषण ।।७।।
सुर नर नाग असुर मुनि जेते । देखे सुने हते हम केते ।।८।।
हमभरिजन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुन्दरताई ।।९।।
यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा । वधलायक नहिं पुरुष अनूपा ।।१०।।
देहिं तुरत निज नारि पठाई । जीवत भवन जाहिं दोउ भाई ।।११।।
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु । तासु वचन सुनि आतुर आवहु ।।१२।।
दूतन कहा रामसन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ।।१३।।
राम—हम क्षत्री मृगया वन करहीं । तुमसेखल मृग खोजत फिरहीं।।१४।।
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ।।१५।।
दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ । सुनि खर दूषण उर अति दहेऊ ।।१६।।

दोहा—सावधान होइ धाये, जान सबल आराति ।
लागे वर्षन रामपर, अस्त्र शस्त्र बहुभाँति ।।८।।

छन्द—महि परत उठिभट भिरत पुनि पुनि करतमाया अतिघनी ।
सुर डरत चौदह सहस्त्र निशिचर एक श्रीरघुकुलमनी ।।
सुर मुनि सभय प्रभु देख मायानाथ अति कौतुक करचो ।
देखत परस्पर रामकरि संग्राम रिपुदल लरि मरचो ।।१।।

दोहा—राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान ।
करि उपाय रिपु मारचउ, क्षणमहँ कृपानिधान ।।९।।

तब लक्ष्मण सीतहि ले आये । प्रभुपद परत हर्षि उर लाये ।।१।।

राम ने देखा शत्रु का बल चढ़ आया हँसकर कठिन धनुष चढ़ाया।।६।। इधर मंत्रियों को बुलाय

खर दूषण बोले यह कोई नृपबालक नरों में भूषण हैं।।७।। सुर नर नाग असुर मुनि हमने जितने देखे सुने और मारे हैं।।८।। हे भाई! पर हमने जन्मपर्यंत ऐसी सुंदरता नहीं देखी।।९।। यद्यपि बहन को कुरूप किया है तथापि यह अनूप पुरुष वध योग्य नहीं है।।१०।। अपनी स्त्री जो छिपाई है सो दे दें और दोनों भाई जीते घर को जायँ।।११।। मेरा कहना तुम उसे सुनाओ और उनके वचन सुन शीघ्र आओ।।१२।। दूतों ने राम से जाकर कहा सुनकर राम हँसते हुए बोले।।१३।। हम क्षत्री वन में मृगया करते हैं तुमसे दुष्ट मृगों को खोजते फिरते हैं।।१४।। बली शत्रु को देखकर नहीं डरते एक बार काल से भी लड़ सकते हैं।।१५।। दूतों ने जाकर सब कहा सुनकर खर दूषण का हृदय दहा।।१६।। दोहार्थ–और उसकी आज्ञा से वह शत्रु सावधान होकर धावमान हुए और राम पर अनेक भांति के अस्त्र शस्त्र वर्षने लगे।।८।।

छन्दार्थ–कभी रावण के बाण से पृथ्वी में गिरते फिर उठकर लड़ते बड़ी माया करते हैं देवता डरते हैं कि राक्षस चौदह सहस्र और रामचन्द्र इकले हैं सुरमुनियों को भयभीत देखकर मायानाथ ने यह कौतुक किया कि रघुनाथजी तो देखते रहे और संग्राम करके शत्रु का दल लड़ मरा।।१।। दोहार्थ–राम राम कह शरीर त्यागते और निर्वाण पद पाते हैं क्षण में भगवान् ने उपायकर शत्रु मारे।।९।। तब लक्ष्मण सीता को ले आये, प्रभु के चरणों में पड़े तब उन्होंने प्रसन्न हो हृदय से लगाया।।१।।

इति द्वितीय दर्शन

अथ तृतीय दर्शन

शूर्पणखा रावणसम्वाद–

"धुँआ देखि खरदूषण केरा । शूर्पणखा तब रावण प्रेरा ।।१।।"
शू०–बोली वचन१ क्रोध करि भारी । देशकोशकी सुरति विसारी।।२।।
दोहा–सभा माँझ व्याकुल परी, बहुप्रकार करि रोइ ।
तोहिं जियत दशकंधर, मोरि कि असगति होइ ।।१०।।

शूर्पणखा रावणसम्वाद–

टीका–खर दूषण का धुँआ देखकर शूर्पणखा रावण पर गई।।११।। और क्रोध कर बोली तुमने देशकोश की सूरत विसार दी है।।२।। दोहार्थ–सभा में व्याकुल हो गिर पड़ी बहुत प्रकार से रोई दशकंधर! तेरे जीतेजी क्या मेरी ऐसी गति होगी।।१०।।

रावण–कह लंकेश कहसि किनबाता। क्यइँ तव नासा कान निपाता ।।१।।
शू०–अवधनृपति दशरथ के जाये । पुरुष सिंह वन खेलन आये ।।२।।

---

१ कवित्त घनाक्षरी-भावे मति वंकमदछावै है उतक तियअंकलेनिशंक पर्यक मांहिसोवै है।। उगवत भाव कब भान है विहान सो न जान सुरापान माहिं रैन दिन खोवै है।।

जिनकर भुजबल पाइ दशानन । अभय भये विचरहिं मुनि कानन ।।३।।
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुणवाना ।।४।।
अतुलितबल प्रताप दोउ भ्राता । खलवधरत सुरमुनि सुखदाता ।।५।।
शोभाधाम राम अस नामा । तिन्हके संग इकनारि ललामा ।।६।।
अजहुँ जाय देखब तुम जबहीं । होइहौ विकल तासु वश तबहीं ।।७।।
तासु अनुज काटी श्रुतिनासा । सुनि तव भगिनीकरि परिहासा ।।८।।
विन अपराध अस हालहमारी । अपराधी किमि बचहिं सुरारी ।।९।।
खरदूषण सुनि लाग गुहारा । क्षणमहँ सकल कटक उन मारा ।।१०।।
"खरदूषण त्रिशिराकर घाता । सुनिदशशीश जरा सब गाता ।।११।।

दोहा–शूर्पणखहिं समुझाइ करि, बलबोलेसि बहुभाँति ।
भवन गयउ अति शोचवश, नींद परी नहि राति ।।११।।

रावण बोला–बात क्यों नहीं कहती तेरी नाक कान किसने काटी है।।१।। शूर्पणखा बोली–अवधराजा दशरथ के पुत्र पुरुषसिंह वन में खेलने आये हैं।।२।। हे रावण! जिनकी भुजा का बल पाकर मुनि अभय हुए वन में विचरते हैं।।३।। देखने में बालक काल के समान परमधीर धनुधारी और गुणवान् हैं।।४।। दोनों भाई बड़े बली प्रतापशाली दुष्टों के मारने में निरत सुरमुनियों को सुख देनेवाले हैं।।५।। शोभाधाम राम ऐसा उनका नाम है उनके संग में एक सुंदर स्त्री है।।६।। अब भी जाकर तुम जब देखोगे तो तुम उसके वशीभूत हो जाओगे।।७।। उसके लघुभ्राता ने नाक कान काटे हैं जब सुना कि तुम्हारी बहन है तब हँसीकी।।८।। बिना अपराध हमारा ऐसा हाल है हे सुरारी! अपराधी किस प्रकार बच सकता है।।९।। खर दूषण सुनकर गुहारने लगे सो क्षण में सब सेना उन्होंने मार दी।।१०।। खर दूषण त्रिशिरा का घात सुनकर रावण का सब शरीर जलने लगा।।११।। दोहार्थ–शूर्पखणा को समझाकर बहुत बलबोला और घर गया शोचवश रात को नींद नहीं पड़ी।।११।।

रा०–सुरनर असुरनाग जगमाहीं । मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं ।।१।।
खरदूषण मोहिं सम बलवन्ता । मारि कोसकै बिना भगवन्ता ।।२।।
सुररंजन भंजन महिभारा । जो जगदीश लीन्ह अवतारा ।।३।।
तौ मैं जाइ बैर हठ करिहौं । प्रभुशरते भवसागर तरिहौं ।।४।।

-रसिकविहारी राजकाज औ समाज साज कैसो का अकाज काज रञ्चहू न जोवे है ।
तोसों जो नरेश सो कलेश बहु पावै देश जावे पछितावे ओ विनाश वेगि होवे है ।।

होइ भजन नहिं तामस देहा । मन क्रम वचन मन्त्र दृढ एहा ।।५।।
जो नररूप भूप सुत कोऊ । हरिहौं नारि जीति रण दोऊ ।।६।।
चला अकेल यान चढ़ि ताहां । वश मारीच सिन्धु तट जाहां ।।७।।

दोहा–लक्ष्मण गये वनहिं जब, लेन मूल फल कन्द ।
जनकसुतासन बोल्यौ, विहँसि कृपासुखवृन्द ।।१२।।

राम-सुनहु प्रियाव्रत रुचिर सुशीला । मैं कछु करब ललित नरलीला ।।१।।
तुम पावकमहँ करहु निवासा । जौं लगि करौं निशाचर नाशा ।।२।।
जबहिं राम सब कहेउ बखानी । प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ।।३।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता । तैसेइ शीलस्वरूप विनीता ।।४।।
दशमुख गयउ जहां मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।।५।।

रावण–सुर असुर नाग जगत् में मेरे अनुचरों के समान कोई नहीं है।।१।। खर-दूषण मेरे समान बलवान् हैं उनको बिना भगवान् के कौन मार सकता है।।२।। देवताओं के प्रसन्न करके और भूमि का भय दूर करने को जो प्रभु ने अवतार लिया है।।३।। तो मैं जाकर वैर करूं और प्रभु के बाण से भवसागर तरूंगा।।४।। तामस देह से भजन नहीं होता मन वचन कर्म से यह दृढ़ मन्त्र है।।५।। और जो कोई नररूप राजकुमार है तो रण में जीतकर उनकी स्त्री हर लूंगा।।६।। यह कह अकेला विमान में चढ़ वहां गया जहां सागरके किनारे मारीच रहता था।।७।। दोहार्थ–लक्ष्मण जब वन को कंद मूल फल लेने गये तब कृपासगार हँसकर जानकी से बोले।।१२।। राम–हे व्रतरुचिरसुशीलप्रिया! सुनो मैं कुछ नरलीला करूंगा।।१।। तुम अग्नि में निवास करो जब तक राक्षसों का नाश करूं।।२।। जब राम ने समझाकर कहा तब प्रभु के चरण हृदय में धर सीता अग्नि में प्रविष्ट हुई।।३।। और वैसे ही रूपशील से विनीत अपने प्रतिबिम्ब की सीता वहां रख दी।।४।। इधर रावण जहां मारीच था वहां गया और स्वारथत होने से नीच ने शिर नवाया।।५।।

मारीच दोहा–करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयेउ तात ।।१३।।

दशमुख सकल कथा तिहि आगे । कही सहित अभिमान अभागे ।।१।।
होउ कपटमृग तुम छलकारी । ज्येहिविधि हरि आनौ नृपनारी ।।२।।
त्यहि पुनिकहा सुनहु दशशीशा । ते नररूप चराचर ईशा ।।३।।
तासों तात वैर नहिं कीजै । मारे मरिय जियाये जीजै ।।४।।
मुनिमख राखन गयउ कुमारा । विनुफरशर रघुपतिमोहिमारा ।।५।।

शतयोजन आयउँ क्षणमाहीं । तिन्हसन वैर किये भल नाहीं ।।६।।
भइ मति कीट भृङ्गकी नाईं । जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई ।।७।।
जो नर तात तदपि अति शूरा । तिनहिं विरोध न आइहि पूरा ।।८।।
दोहा–जेहि ताड़का सुबाहु हति, खण्डयउ हरकोदण्ड ।
खरदूषण त्रिशिरा वध्यउ, मनुजकि असबलवण्ड ।।१४।।
रा-अस नाम सुनत दशकन्धर । रहत प्राणनहिं ममउर अन्तर ।।१।।
जाहु भवन कुल कुशल बिचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ।।२।।

दोहार्थ–पूजा करके मारीच ने आदर से बात पूछी-हे तात! क्या कारण है जो मन में व्यग्रता है और बेसमय आये हो।।१३।। अभागे रावण ने सब कथा अभिमानसहित कही।।१।। कि तुम छल करके कपट मृग बनो कि जिस भांति नृपनारी हर लाऊं।।२।। तब मारीच बोला-हे रावण सुनो वे तो नर रूप चर अचर के ईश हैं।।३।। हे तात! उनसे वैर मत करो उनके मारे से मरिये जियाये से जीये।।४।। जब यह मुनिका यज्ञ रखवारी करने गये तो रांम ने बिना फर के मेरे बाण मारा ।।५।। मैं क्षणमात्र में सौ योजन आ गया उनसे वैर करना भला नहीं है।।६।। तबसे मेरी मति कीटभृंग के समान हो गई है जहां तहां मैं दोनों भाइयों को देखता हूं।।७।। हे स्वामिन्! जो मनुष्य है तो भी बड़े शूर हैं उनसे विरोध करने से पूरी न पड़ेगी।।८।। दोहार्थ–जिसने ताड़का सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ा खरदूषण त्रिशिरा को मारा ऐसा बली क्या मनुष्य हो सकता है।।१४।। चौ०–हे रावण! रा ऐसा नाम सुनते ही मेरे शरीर में प्राण नहीं रहता।।१।। इससे अपने कुल की कुशल विचारकर जाओ यह सुन जलकर रावण ने गारी दी और बोला।।२।।

रा०-गुरु जिमिमूढ़करसि मम बोधा । कहुजग मोहिंसमान कोजोधा ।।३।।
मा०-तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि विरोधे नहिं कल्याना ।।४।।
शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी । वैद्य बन्दि कवि मानस गुनी ।।५।।
उभय भाँति देखा निजमरणा । तब ताकेसि रघुनायक शरणा ।।६।।
उतर देत मोहिं बधहि अभागे । कस न मरौं रघुपति शर लागे।।७।।
अस जिय जानि दशानन संगा । चला रामपद प्रेम अभंगा ।।८।।
मन अति हर्षि जनाव न तेही । आज देखिहौं परमसनेही ।।९।।
दोहा–मम पाछे धर धावत, धरे शरासन बान ।
फिरि २ प्रभुहिं विलोकि हौं, धन्य न बोसम आन ।।१५।।
"तेहिवन निकट दशानन गयऊ । तब मारीच कपट मृग भयऊ ।।१।।

सीता परम रुचिर[१] मृग देखा । अंग अंग सुमनोहर वेषा ।।२।।
सीता-सुनहु देव रघुवीर कृपाला । इह मृगकर अति सुन्दर छाला ।।३।।
सत्यसिन्धु प्रभु वधकरि एही । आनहु चर्म कहति वैदेही ।।४।।

रे मूर्ख! गुरु के समान मुझे सिखाता है कह जगत् में मेरे समान योद्धा कौन है।।३।। तब मारीच ने मन में विचार किया नौ जनों से विरोध करने में कल्याण नहीं।।४।। शस्त्रधारी, मर्मज्ञाता, प्रभु, शठ, धनी, वैद्य, बन्दी, कवि, गुणी।।५।। इस भांति से दोनों प्रकार अपना मरण देख श्रीराम की शरण ताकी।।६।। कि, यह अभागा तो मुझे उत्तर देते ही मारेगा। इससे राम के बाण लगने से क्यों न मरूं।।७।। यह जी में ठान मन में राम के चरणों में अभंग प्रेम कर चला।।८।। उसके मन में बड़ी प्रसन्नता हुई सो जनाई नहीं आज परम सनेही राम का दर्शन करूंगा।।९।। दोहार्थ–मेरे पीछे धनुषबाण धारणकर धावमान होंगे, मैं फिर २ कर प्रभु को देखूंगा मेरे समान दूसरा धन्य नहीं है।।१५।। चौ०-उसी वन के समीप रावण गया तब मारीच कपट का मृग हुआ।।१।। सीता ने परम रुचिर मृग देखा कि अंग अंग से मनोहर वेष है।।२।। सीता बोली–हे देवकृपालु रघुवीर! इस मृग की सुन्दरछाल है।।३।। हे सत्यसिन्धु! प्रभु इसका वधकर चर्म लाओ यह सीता ने कहा।।४।।

तब रघुपति जान सब कारण । उठे हर्षि सुर काज सँवारण ।।५।।
राम-प्रभुलक्ष्मणहिं कहा समुझाई । फिरत विपिन निशिचर समुदाई ।।६।।
सीता केरि करेहु रखवारी । बुद्धिविवेक बल समय विचारी ।।७।।
प्रभुहि विलोकि चला मृगभाजी । धाये राम शरासन साजी ।।८।।
प्रकटत दुरत करत छल भूरी । इहिविधि प्रभुहि गयो ले दूरी ।।९।।
तब तकिराम कठिन शर[२]मारा । धरणि परचो करि घोर चिकारा ।।१०।।

---

१ घनाक्षरी-नीलमणिनैन औ प्रवालकेविशाल शृंग, जटित अनेक रत्न कञ्चन को अंग है?
दसन सुहीरनके रजतमई हैं खुर, रसिकविहारी रूप सुघर सुढंग है।।
ताहि अवलोकत ही रघुनन्दनको, टेरे हुलसाय छाई अमित उमंग है।
धावो वेगि धावो लाल आओ इत आओ श्याम,देखो याहि देखो कैसो रुचिर कुरंग है।

२-राग-सोरठा-रघुबर दूरि जाय मृग मारचो ।।
लषन पुकारि राम हृदये कहि मरतहुँ बेर सँभारचो ।।
सुनहु तात कोई तुमहि पुकारत प्राणनाथकी नाईं ।
कह्यो लषन हत्यो हरिण कोपि सिय हठि पठाये वरियाई ।।
बन्धु विलोकि कहत तुलसी प्रभु भाई भली न कीन्हीं ।
मेरे जान जानकी काहूँ खल छल करि हरि लीन्ही ।।

लक्ष्मणकर प्रथमहिं ले नामा । पाछे सुमिरेसि मनमहँ रामा ।।११।।
मृग वधि तुरत फिरे रघुवीरा । सोहचाप कर कटि तूणीरा ।।१२।।
आरत गिरा सुनी जब सीता । कह लक्ष्मण सन परम सभीता ।।१३।।
सी०-जाहु बेगि संकट तव भ्राता । लक्ष्मण विहँसि कह्यो सुनमाता ।।१४।।
ल०-भ्रुकुटि विलास सृष्टि लै होई । स्वप्नेहु संकट परै कि सोई ।।१५।।
सौंपि गये मोहिं रघुपति थाती । जो तजि जाउँ तोषनहिं छाती ।।१६।।

तब राम सब कारण जान देवताओं का काज संभारने को उठे।।५।। तब प्रभु ने लक्ष्मण से कहा वन में अनेक राक्षस फिरते हैं।।६।। बुद्धि विवेक बल समय विचार कर जानकीकी रखवाली करना।।७।। तब प्रभु को देख मृग भाग चला राम धनुष पर बाण चढ़ाय धावमान हुए।।८।। प्रगट होता छिपता हुआ बड़ा छल करता प्रभु को दूर ले गया।।९।। तब राम ने ताककर कठिन बाण मारा वह घोर चिकारकर भूमि में गिरा।।१०।। पहले लक्ष्मण का नाम ले पीछे मन में राम का स्मरण किया।।११।। मृग को मारकर राम तुरत फिरे हाथ में धनुष कमर में तूणीर शोभित है।।१२।। जब जानकी ने यह दुःख की वाणी सुनी तब भयभीत हो लक्ष्मण से बोली।। शीघ्र जाओ भाई पर संकट पड़ा है लक्ष्मण ने हँसकर कहा, हे माता! जिसकी भ्रुकुटी विलास से सृष्टि लय होय क्या उसको स्वप्न में भी संकट पड़ सकता है।।१५।। रघुनाथ मुझे थाती के समान सौंप गये हैं तुमको छोड़ने में हृदय संतुष्ट नहीं होता।।१६।।

यह जिय जानि सुनहु मम माता । पूछत कहब कवन मैं बाता ।।१७।।
मर्म वचन सीता जब बोली । हरिप्रेरित लक्ष्मण मति डोली ।।१८।।
चहुँदिशि रेखा खैंचि अहीशा । बारबार नाये पद शीशा ।।१९।।
बन दिशि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावण शशिराहू ।।२०।।
शून्यभवन दशकंधर देखा । आवा निकट जतीके वेषा ।।२१।।
करि अनेक विधि छल चतुराई । मांगेउ भीख दशानन जाई ।।२२।।
अतिथि जान सियकन्दमूलफल । देनलगी तेहि कीन्हबहुरिछल ।।२३।।
रा०-कहंदशमुख सुनु सुन्दरि वानी । बाँधी भीख न लेउँ सयानी ।।२४।।
विधिगति वाम काल कठिनाई । रेख लांघि सिय बाहर आई ।।२५।।
नानाविधि कहि कथा सुनाई । राजनीति भय प्रीति दिखाई ।।२६।।
सी०-कह सीता सुनु यती गुसांई । बोलेसि वचन दुष्टकी नांई ।।२७।।
तब रावण निज रूप दिखावा । भइ सभीत जब नाम सुनावा ।।२८।।

सी०-कह सीता धरिधीरज गाढ़ा । आइ गये प्रभु खलरहु ठाढ़ा ।।२९।।

दोहा–क्रोधवन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय ।

चल्यउ गगनपथ आतुर, भयरथ हाँकि न जाय ।।१६।।

यह मन में विचारो कि माता जब वे मुझसे कहेंगे क्यों छोड़ आये तब मैं क्या कहूँगा।।१७।। जब जानकी मर्म वचन बोली तब प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मण की मति डोली।।१८।। चारों ओर रेखा खैंचकर बारंबार चरणों में शिर नवाय।।१९।। सीता को वन दिशाओं के देवताओं को सौंपकर राम के पास चले।।२०।। तब रावण शून्य स्थान देख यती के वेष में आया।।२१।। अनेकविधि छल चतुराई कर जानकी से भीख मांगी।।२२।। अतिथि जानकर सीता कन्द मूल फल देने लगी तब उसने फिर छल किया।।२३।। रावण बोला-हे सुन्दरि! मैं बँधी भीख न लूंगा।।२४।। विधि की वामगति और काल की कठिनाई से रेखा उलाँघकर सीता बाहर आई।।२५।। और अनेक प्रकार से कथा सुनाय राजनीति भय और प्रीति दिखाई।।२६।। जानकी बोली हे यती गोसांई! तू दुष्ट के समान वचन बोलता है।।२७।। तब रावण ने अपना रूप दिखाया और जब नाम सुनाया तब डरी।।२८।। फिर सीताजी धीरज धरकर बोलीं दुष्ट! खड़ा रह प्रभु आये।।२९।। दोहार्थ–तब रावण ने क्रोधकर रथ में बैठा लिया और वेग से आकाशमार्ग को चला भय से रथ हांका नहीं जाता।।१६।।

सी०-हा[१] जगदीश देवरघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ।।१।।

आरत हरण शरण सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ।।२।।

गृध्रराज सुनि आरत बानी । रघुकुलतिलक नारि पहँचानी ।।३।।

---

१ कवित्त-हाय रघुचन्द हाय दशरथचन्द प्यारे हाय रघुवीर धीर पीरके हरैया हाय
हाय प्राणवल्लभ दयालु रघुलाल हाय संकट हरैया उर आनन्द भरैया हाय ।।
हाय सुखकारी हाय रसिकविहारी धाय कीजिये सहाय आय धनुष धरैया हाय ।
हाय प्राणप्रीतम सुजान बलवान ऐसी सुरति विसारी क्यों हमारी रघुरैया हाय ।।१।।
हाय मतिमान धीर लषन सुजान तब कीन्हो अपमान सो निदान भइ घात है ।।
हाय बलवान धाय वेग ही छुड़ावो आन निकसत प्राण छिन कलप बिहात है।
रसिक बिहारी धनुधारी हौं तिहारी वीर मेरो दुखहारी और कोऊ न दिखात है
हाय रघुनाथ मोहि निरखि अनाथ दशमाथ गहि हाथ निज साथ लीने जात है।।२।।
कदली कदम्ब अम्ब शिंशपा अशोक वट निपट अधीन दीन देखि दया कीजियो।
सरित समीर दिशि कानन सुपंथ गिरि प्यारे ते बताय वेगि येतों यश लीजियो ।।
रसिकबिहारी कीर सारिका चकोर मोर भृंग पिक कोकिल न मौन ही रहीजियो ।
केहरी कुरंग ब्याल आवै रघुराल तिनै मेरो हाल सकल उताक कहि दीजियो ।।३।।

गृध्र-सीतापुत्रिकरसिजनित्रासा । करिहौं यातुधानकरनासा[१] ।।४।।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन किन होही । निर्भय चलसि न जानेसि मोही ।।५।।
सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा । कह सुन रावण मोर सिखावा ।।६।।
तजि जानकी कुशल गृह जाहू । नाहित सत्य सुनहु बहु बाहू ।।७।।

जानकी बोली-हे जगदीश देव रघुनाथ! किस अपराध से दया छोड़ दी।।१।। हे दुःखहारी! हे शरण सुखदायक रघुकुल कमलदिवाकर कहां हो।।२।। गृध्रराज ने यह आतरवाणी सुनकर रामचन्द्र की नारी पहँचानी और बोला।।३।। हे सीता पुत्री! दुःख मत मानो मैं राक्षसकुलकलंकी का नाश करता हूं।। रे रे दुष्ट खड़ा क्यों नहीं होता निर्भय चलता है मुझे जानता नहीं।।५।। सुनकर गृध्र क्रोध से बोला कि रावण मेरी शिक्षा सुनो।।६।। जानकी को त्याग कुशलता से घर जाओ नहीं तो ऐसा होगा कि ।।७।।

रामरोष पावक अति घोरा । होइहि सकल शलभ कुल तोरा ।।८।।
"धरिकचविरथ कीन्ह महिगिरा । सीतहि राखि गृध्र पुनि फिरा ।।९।।
तब सकोप निशिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।।१०।।"

(युद्ध होता है)

"काटेसि पंख परा खग धरणी । सुमिरि रामकी अद्‌भुत करणी ।।११।।
सीतहि यान चढ़ाय बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ।।१२।।
दोहा—हारिपरा खल बहुत विधि, भय अरु प्रीति दिखाइ ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि यतन कराइ ।।१७।।
रघुपति अनुजहि आवत देखी । मनमहँ चिंता कीन्ह विशेखी ।।१।।"
राम-जनकसुता परिहरेउ अकेली । आयहु तात वचन मम पेली ।।२।।
निशिचर निकर फिरिहि वनमाहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ।।३।।
अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं । सियविहीन मम जीवन काहीं ।।४।।

---

१ रथको निरखत जात जटाई ।।टेक।।
किनकी हो तुम परम सुंदरी कौन हरे लिय जाई ।।
सूर्यवंश दशरथ इक राजा तिनके सुत रघुराई ।
चोंचन मार महाभारत कर रथसों दियो गिराई ।
अग्निबाण तब हनेउ निशाचर दोउ पंख जर जाई ।
देत अशीश तब मनमें जानकी बसहु रामकहँ जाई ।।१।।

राम की क्रोधाग्नि में जो बड़ी घोर है तुम्हारा कुल पतंग हो जायगा।।८।। बाल पकड़कर गीध ने विरथकर भूमि पर डाल दिया और सीता को उतारकर फिर फिरा।।९।। और क्रोधकर रावण ने कराल तलवार निकाली।।१०।। उससे पंख काट दिये गृध्र पृथ्वी पर राम की अद्‌भुत करणी स्मरण कर गिरा।।११।। तब सीता को यानपर चढ़ाकर भयभीत हुआ शीघ्रता से चला।।१२।। दोहार्थ–भय और प्रीति दिखाकर हार गया जानकी न मानी तब अशोकवृक्ष के नीचे अपनी वाटिका में यत्न से रखा।।१७।। इधर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को आता देख मन में बड़ी चिन्ता की और बोले।।१।। हे तात! हमारे वचन उल्लंघन कर जानकी को अकेली छोड़ आये ।।२।। वन में अनेक राक्षस फिरते हैं मेरा मन कहता है कि जानकी आश्रम में नहीं है।।३।। हे तात! तुमने भला नहीं किया मैं जानता हूं जानकी आश्रम में नहीं हैं, सीता के बिना मेरा जीवन न होगा।।४।।

आश्रम देख जानकी हीना । भये विकल जस प्राकृत दीना ।।५।।
हा गुणखानि जानकी सीता । रूपशील व्रत नेम पुनीता ।।६।।
लक्ष्मण समुझाये बहुभाँती । पूछत चले लता तरु१पांती ।।७।।
राम-हे खगमृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृगनयनी ।।८।।
खंजन शुक कपोत मृग१ मीना । मधुप निकर कोकिलाप्रवीना ।।९।।

-फिरत न बारहिं वार प्रचारचो ।
चपरि चोंच चंगुल हय हति रथ खण्ड खण्ड करि डारचो ।।
विरथ विकल कियों छीन लीन्ह सिय धनधायनि अकुलान्यो ।
तब असि काढि काटि पर पांवर लै प्रभु प्रिया परान्यो ।।
रामकाज खगराज आजु लरचो जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य विहँग बड़भागी ।।२।।

१ कवित्त-सुवट तमाल ताल कदम रसाल साल, देखों इहिकाल मो विहाल मन ह्वैगयो ।
प्यारी संग छूटो पुण्य खूटो भाग फूटो मोहिं, विरह जु लूटो यों अपार दुख छै गयो ।
रसिकविहारी पढिडारी भुरकि धौं कोऊ, मोरी तिय भोरीको भुराय छल कै गयो ।
मोन क्यों रहोरे निठुराई ना गहोरे कोऊ नेक तौ कहौरे को प्रिया हर ले गयो।।१।।

२ घनाक्षरी-केहरि कुरंग कपि कुंजर भुजङ्ग भालु, धाय ढिग आय नेक धीरज धराओ रे। निपट अधीन प्राणवल्लभा विहीन हौं तो, हीन छीनदीन देखि दया उरलाओ रे। रसिकविहारी प्यारीरूप उजियारी वह, कित वनचारी एको बारी तो बताओ रे । सबही निहोरों लाज छोरों कर जोरों हाय, कोउ मोहिं मेरी मनमोहिनी मिलाओरे ।।१।। मो विन सुजाके हिय छिनहू न होतो कल, सो क्यों निठुराई करि मनको रितै गई । रूप गुणवारी हाय जनकदुलारी प्यारी, नेक कृपाकोर मेरी ओर न चितै गई । खग मृग रसिक बिहारी हौं दुखारी मोको, वा ढिग पठाव प्रिया भामिनी जितै गई । दीन अवलोकि मोको कोऊ तो बताओ आय, वह मेरी प्राणवल्लभा कितै गई ।।२।।

सुन जानकी तोहिं विन आजू । हर्षे सकल पाइ जनु राजू ॥१०॥
किमिसहिजात अनखतोहिंपाहीं । प्रियाबेगि प्रगटतकिमिनाहीं ॥११॥
कहत राम लक्ष्मणहि बुझाई । काहू कीन्ह युद्ध इहि ठाई ॥१२॥

जानकी के बिना आश्रम देख प्राकृत मनुष्य के समान प्रभु दीन हुए॥५॥ हा गुणखान जानकी सीता! रूप शील व्रत नेम में पवित्र कहां हो॥६॥ लक्ष्मण ने अनेक प्रकार समझाया तब वृक्षों से लताओंसे पूछते चले॥७॥ हे खग! हे मृग! हे भ्रमरो! तुमने कहीं मृगनयनी सीता देखी है॥८॥ खंजन तोते कबूतर मृग मीन भ्रमर कोकिला प्रवीन ॥९॥ हे जानकि! यह सब तेरे बिना आज मानो राज पाकर प्रसन्न हुए हैं॥१०॥ सो यह अनख तुमसे कैसे सहा जाता है हे प्रिया! शीघ्र क्यों नहीं प्रगट होती हो॥११॥ फिर आगे चलकर राम ने लक्ष्मण से कहा देखो यहां किसी ने युद्ध किया है॥१२॥

आगे परा गृध्रपति देखा । सुमिरत१ रामचरणकी रेखा ॥१३॥
दोहा–करसरोज शिर परिशे, कृपासिन्धु रघुवीर ।
निरखि राम छबि धाम सुख, विगत भई सब पीर ॥१८॥
गृध्र-तब कह गृध्र वचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भवभीरा ॥१॥
नाथ दशानन यह गति कीन्ही । तेहिखल जनकसुता हरिलीन्ही ॥२॥
लै दक्षिण दिशि गयउ गुसाईं । बिलपति अति कुररीकी नाईं ॥३॥

---

१ मेरे एको हाथ न लागी ॥टेक॥
गयो वपु बीच वादि कानन ज्यों कल्पलता दव लागी ॥मेरे०॥
दशरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यों हुतो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निशाचरपतिसे हौं न जानकी राखी ॥
मरत न मैं रघुवीर विलोके तापसवेष बनायो ।
चाहत चलन प्राण पामर बिनु सिय सुधि प्रभुहिं सुनायो ॥मेरे०॥
बार बार कर मींज शीश धुनि गीधराज पछिताई ।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि अवसर आय गये दोउ भाई ॥मेरे०॥१॥
पद-मेरे जान तात कछुक दिन जीजै ॥टेक॥
देखिये आप सुवन-सेवा-सुख मोहि पितुको सुख दीजै ॥मेरे०॥
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाय मांगि लीजै ।
हरिहर सुयश सुनाय दरश दे लोग कृतारथ कीजै ॥मेरे०॥
देखि वदन सुनि वचन अमिय तन रामनैन जल भीजै ।
वोल्यो विहँग वचन रघुवर बलि कहौं सुभाष पतीजै ॥मेरे०॥

दरशलागि प्रभु राखेउँ प्राना । चलन चहत अब कृपानिधाना ।।४।।
राम-रामकहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता ।।५।।

फिर आगे पड़ा गृध्रराज देखा जो राम के चरण की रेखाओं को स्मरण कर रहा था।।१३।। दोहार्थ–कृपासिन्धु रघुनाथजी ने उसके शिर पर हाथ रखा सुखधाम राम का मुख देखकर उसकी सब पीर मिट गई।।१८।। तब धीर धर गृध्र बोला हे राम! संसार का भय दूर करनेवाले सुनो।।१।। हे नाथ! रावण ने यह गति की और उस दुष्ट ने जानकी को हर लिया।।२।। हे गोसांई! वह लेकर दक्षिण की ओर गया है जो जानकी कुररी के समान विलाप करती थी।।३।। प्रभु के दर्शनों के निमित्त प्राण रखे थे। हे कृपानिधान! सो अब चलना चाहते हैं।।४।। राम ने कहा-हे तात! शरीर राखो तब उसने मुसुकाकर कहा।।५।।

गृध्र-जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमौ मुक्तहोइ श्रुतिगावा ।।६।।
सो मम लोचन गोचर आगे । राखहुँ देह नाथ केहि लागे ।।७।।
राम-जलभरिनयन कहा रघुराई । तात कर्म्म निजते गति पाई ।।८।।
परहित वश जिनके मनमाहीं । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।९।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ कहा तुम पूरण कामा ।।१०।।

दोहा–सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुलसहित, कहिहि दशानन आइ ।।१९।।

गृध्रदेह तजि धरि हरिरूपा । भूषण बहु पट पीत अनूपा ।।१।।
श्यामगात बिशाल भुजचारी । अस्तुति करत नयन भरि वारी ।।२।।

गृध्र-जय रामरूप अनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरक सही ।
दशशीश बाहु प्रचण्ड खंडन चंड शरमण्डन मही ।
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनम् ।
नितनौमि राम कृपालै बाहु विशाल भवभयमोचनम् ।।१।।

जिसका नाम मरते समय मुख पर आवे तो वेद कहता है अधम भी मुक्त हो जाता है।।६।। सो मेरे नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हैं हे नाथ! मैं देह किस प्रकार रखूं।।७।। तब राम ने नयनों में जल भरकर कहा हे तात! तुमने अपने कर्म से गति पाई है।।८।। जिनके मन में परोपकार रहता है उनको कुछ दुर्लभ नहीं है।।९।। हे तात! शरीर त्यागकर मेरे स्थान में जाओ मैं क्या दूं तुम पूर्णकाम हो।।१०।। दोहार्थ–हे तात! सीताहरण पिता से जाकर मत कहना जो मैं राम हूं तो

-मेरे मारवे समान चारिफल होहिं तो क्यों न कहीजै ।
तुलसी प्रभु दियो उत्तर मौनहीं परि मानी प्रेम सहीजै ।।मेरे।।१।।

रावण कुलसहित जाकर कहैगा।।१९।। गृध्र देह त्याग हरिरूप धारण कर भूषण और पीतपट से संयुक्त हो।।१।। श्यामशरीर चार भुजा धारे नेत्रों में जल भर स्तुति करने लगा।।२।।

छंदार्थ–हे राम अनूपरूप निर्गुण सगुणरूप गुणों के प्रेरक आपकी जय हो। दशशीश की प्रचंड भुजाओं के खंडन को आपके तीक्ष्ण बाण हैं और भूमि को मंडन करनेवाले हो आपका श्यामशरीर कमलमुख कमल से ही चौड़े नेत्र हैं ऐसे कृपासागर विशाल भुजावाले संसार के भयनाशक राम को प्रणाम करता हूं।।१।।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरम् ।
गोविन्दगोपर द्वन्द्वहर विज्ञानघन धरणीधरम् ।।
जे राम मन्त्र जपन्त सन्त अनंत जनमन रंजनम् ।
नित नौमि राम अकामप्रिय कामादिखलदलगंजनम् ।।२।।
जेहि श्रुति निरंतर ब्रह्मव्यापक विरज अज कहि गावहीं ।
करि ज्ञान ध्यान विराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं ।।
सो प्रगट करुणाकन्द शोभासिंधु अगजग माहई ।
ममहृदय पंकज भृङ्ग अंग अनंग बहु छबि सोहई ।।३।।
जो अगम सुगम स्वभावनिर्मल असम सम शीतल सदा ।
पश्यन्ति यं योगी यतन करि करत मन गोबस यदा ।।
सो राम रमानिवास सन्तत दासवश त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसहु सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी ।।४।।
दोहा–अविरल भक्ति मांगि वर, गृध्र गयउ हरि धाम ।
तिहिकी क्रिया यथोचित, निजकर कीन्हीं राम ।।२०।।

इति तृतीय दर्शन

आपका बड़ा बल है अनादि अजन्मा अप्रगट एक और इंद्रियों से परे हो, आप गोविन्द इंद्रियातीत द्वंद्व के हरनेवाले विज्ञानघन भूमि के धारण करनेवाले हो जो सन्त अनन्त जनों के मनरञ्जन करनेवाले राम का मन्त्र जपते हैं वे मुक्त होते हैं अकाम प्रिय कामादि खलों के दलनाशक राम को नित्य प्रणाम करता हूं।।२।। जिसको वेद निरन्तर ब्रह्म व्यापक गुणों से परे आज कहकर गाते हैं जिसको अनेक मुनि ज्ञान ध्यान विराग योग करके पाते हैं सो करुणामय शोभासागर प्रगट हुए चराचर जगत् को मोहित कर रहे हैं सो मेरे हृदयकमल में भृङ्ग के समान निवास करो जिनकी शोभा कामदेव के समान है।।३।। जो अगम सुगम स्वभाववाले सदा असम (विषम) तथा समान शीतल हैं मन और इंद्रियों को वशीभूत करके यत्न के साथ जिसको योगी देखते हैं सो लक्ष्मीनिवास राम सदा भक्तों के अधीन त्रिभुवधनी हैं सो संसार के शान्त करनेवाले

पवित्रकीर्तिवाले निरन्तर मेरा हृदय में निवास करो।।४।। दोहार्थ–अचलभक्ति का वर मांगकर गीध अपने धाम को गया राम ने अपने हाथ से उसकी यथोचित क्रिया की।।२०।।

इति तृतीय दर्शन

अथ चतुर्थ दर्शन

(शबरी मिलन)

पुनि सीतहि खोजन दोउ भाई । चले विलोकत वन बहुताई ।।१।।
आवत पंथ कबन्ध निपाता । तेइँ सब कही शापकी बाता ।।२।।
कब०–दुर्वासा मोहिं दीन्हा शापा । प्रभुपद देखि मिटा सो पापा ।।३।।
"रघुपति चरणकमल शिरनाई । गयउ गगन आपनि गति पाई ।।४।।
ताहि देइ गति राम उदारा । शबरीके आश्रम पगु धारा ।।५।।
शबरी दीख राम गृह आये । मुनिके वचन समुझि जिय भाये ।।६।।
श्यामगौर सुन्दर दोउ भाई । शबरी परी चरण लपटाई ।।७।।
प्रेममगन मुख वचन[1] न आवा । पुनि पुनि पद सरोज शिर नावा ।।८।।

दोहा–कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि ।
प्रेमसहित प्रभु खायउ, बारहिं बार बखानि ।।२१।।

(शबरी मिलन)

टीका-फिर दोनों भाई सीता को देखते बनकी बहुताई निहारते चले।।१।। मार्ग में आते हुए कबन्धराक्षस को मारा सब शाप की बात कही कि ।।२।। दुर्वासा ने जो मुझे शाप दिया था सो पाप आपके चरण दर्शन से मिट गया।।३।। रघुपति के चरणकमलों को शिर नवाय अपनी गति पाय कबन्ध गया।।४।। उदारता से राम ने उसकी गति देकर शबरी के आश्रम में पग धारण किया।।५।। शबरी ने राम को आया देख मुनि के वचनों का स्मरण कर बड़ा सुख माना।।६।। श्याम और सुंदर दोनों भाइयों को देख शबरी चरणों में गिर पड़ी।।७।। प्रेम में मग्न हुई मुख से वचन न आया बारंबार चरणकमलों में शिर नवाया।।८।। दोहार्थ–बड़े सरस कन्द मूल फल लाकर राम को दिये और बारंबार बड़ाई कर प्रेम में मग्न हो प्रभु ने खाये।।२१।।

---

१ कवित्त–विविध विधान के अनेक पकवान जेते, होत हैं जहान मेरी जान सब सीठे हैं।
रसिकबिहारी फल सरस रसाल आदि, तेऊ यह स्वाद पाय सकल उबीठे हैं।
कन्द मूल अधिक अतुल रुचिकारी सोऊ, एकहू न इनकी समान मोहि दीठे हैं।
रञ्चहू न सीठे ना उबीठे यों न दीठे कहूँ, लषण कहौ तो सत्य कैसे बेर मीठे हैं ।।१।।
ब्रह्मके उपासी तपरासी वनवासी वर, विपुल मुनीशन के आश्रम सिधायो मैं।

श०–केहिविधि अस्तुति करहुँ तुम्हारी।अधमजाति मैं जड़मतिभारी ।।१।।
अधमते अधम अधम अतिनारी । तिनमें मैं मतिमन्द गँवारी ।।२।।
राम-कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानो एक भक्तिकर नाता ।।३।।
जाति पांति कुल धर्म्म बड़ाई । धनबल परिजन गुण चतुराई ।।४।।
भक्तिहीन नर सोह न कैसे । बिनुजलवारिद देखिय जैसे ।।५।।

दोहा–सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरणन अनुराग ।
तव महिमा जेहि उर बसिहि, तासु परम बड़ भाग ।।२२।।

जनकसुताकै सुधि कहु भामिनि । जानहु जो कछु करिवरगामिनि ।।१।।
शबरी-पम्पासरहि जाहु रघुराई । मुनिवर विपुल रहे जहँ छाई ।।२।।
ऋषि मतंग महिमा गुणभारी । जीव चराचर रहत सुखारी ।।३।।
वैर न कर काहूसन कोई । जासन वैर प्रीति करु सोई ।।४।।

शबरी बोली मैं आपकी स्तुति कैसे करूं मैं अधमजाति और जड़मति हूं।।१।। अधम से अधम अधमनारी होती है उसमें मैं मतिमन्द गँवारी हूँ।।२।। राम बोले-हे भामिनि! सुनो मैं एक भक्ति का नाता मानता हूं।।३।। जाति पांति कुल धर्म बड़ाई धन बलं कुटुम्बीजन गुण चतुरता हो।।४।। और भक्तिहीन हो तो वह ऐसे शोभित नहीं होता जैसे जल के बिना बादल।।५।। दोहार्थ–मेरे चरणों में अनुराग करने से सब प्रकार तेरा बड़ाभाग्य है तेरी महिमा जिसके हृदय में बसै वह भी बड़भागी है।।२२।। हे गजगामिनि! यदि कुछ जनकसुता की सुधि होय तो कहो।।१।। शबरी बोली-हे राम! पम्पासरोवर को जाओ वहां अनेक मुनि निवास करते हैं।।२।। वहां ऋषि मतंगकी महिमा से चराचर जीव सुखी रहते हैं।।३।। कोई किसी से वैर नहीं करता वैरवाले भी प्रीति करते हैं।।४।।

हरहु सकल श्रम सब कर जाई । तहां होइ सुग्रीव मिताई ।।५।।
सो सभ कहिहि देब रघुवीरा । जानतहु पूँछत मतिधीरा ।।६।।

–कीने सन्मान तिन सहित विधान तऊ काहू ठौर कवहूँ न पेटभरि खायो मैं ।।
अमृत समान शबरी के इन बेरनमें रसिकविहारी मनभायो स्वाद पायो मैं ।
अवध विहाय वन आयो जबते हौं बन्धु तवते विचारो सत्य आजही अघायो मैं।।२।।
बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु रसिकबिहारी देत बन्धु कहैं फेर फेर ।
चाखि चाखिभाषै यह वाहुते महान मीठो लेहु तो लषन यौं बखानत हैं हेर हेर
बेर बेर देवे बेर शबरी सुबेर बेर तऊ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर ।
बेर जनि जाओ बेर बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर ।।३।।

बार बार प्रभुपद शिर नाई । प्रेमसहित सब कथा सुनाई ॥७॥
दोहा–जातिहीन अघ जन्ममय, मुक्त कीन्ह अस नारि ।
महामन्द मम सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥२३॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पम्पानाम सुभग गम्भीरा ॥१॥
देखि एक सुन्दर तरु छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥२॥

वहां जाकर सबका श्रम हरो। वहां सुग्रीव से मित्रता होगी॥५॥ हे देव रघुवीर! मतिधीर! वह सब कन्हैया आप जानकर भी पूछते हो॥६॥ बार बार प्रभु के चरणों में शिर नवाय प्रेमसहित सब कथा सुनाई॥७॥ दोहार्थ–जातिहीन पापजन्म वाली स्त्री को भी मुक्ति कर दी। हे महामन्दमन! ऐसे प्रभु को बिसारकर सुख चाहता है॥२३॥ चौ०–फिर प्रभु सुन्दर गंभीर पंपासरोवर को गये॥१॥ एक वृक्ष की सुन्दर छाया देख अनुज सहित रघुनाथजी बैठे॥२॥

यह विचार नारद कर बीना । गये जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥३॥
करत दण्डवत लिये उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ॥४॥
ना०–राम जबहिं प्रेरहु निजमाया । मोह्यहु मोहिं सुनहु रघुराया ॥५॥

दोहा–पपासर शोभित विशद विमल नीर गम्भीर ।
सुभग विपिन दरशत चहूँ सरसत त्रिविध समीर ॥१॥
घनाक्षरी–झुमैं है चहूँधा गजराजसे रसाल भूमैं घूमैं हैं समीर तेज तरह तुरंग ज्यों ।
किंशुक गुलाब कचनार और अनारन के प्यादे भांत भांति लसैं सहित उभग ज्यो ।
छा नववल्ली छठा छहर रही है घनी तेई रथराज मोर भ्रमत अभंग ज्यों ।
रसिकबिहारी साज साज ऋतुराज आयो छायो बन वागसेनालीने चतुरंग ज्यों ।
कहूँ भौंर गुञ्जै मन्द सरस सुहाये सुर कोकिला अलाप कहूँ मधुर उचारैं हैं ।
लहलहे पल्लव मृदुल छवि छावैं कहूँ महकप्रसूनन की कहूँ सुख सारैं हैं ।
कहूँ चटकाहट गुलाबनकी लोनी प्रात कहूँ शर मैन नरनारिको मारैं है ।
रसिकबिहारी साज नागरी सिंगारैं कहूँ अजब अनोखी ये बसंत की बहारे हैं॥२॥
वेलिन बसंत ज्यों नवेलिन बसन्त वन बागन वसन्त रग रागन वसन्त है ।
कुंजन बसंत दिप पुञ्जन बसंत अतिगुञ्जन वसत चहुँ ओरन वसंत है ॥
छैलन वसन्त अरु फैलन वसन्त संग सैलन वसन्त बहु गैलन बसन्त है ।
रसिकबिहारी नैन सैनन में बैनन में जितै अवलोको तितै बरसै वसन्त है॥३॥
निर्तत मयूर महामुदित मयूरी मिलि मत्त अली ठोले लिये अलिनी लसन्त सो ॥
रसिकबिहारी कीर सारिका सुकोकिलादि करत ककोलिकेलि कूजत हसन्त सो ॥
निज निज नारी संग अपर विहारी चहूँ खेद जड़ चेतनको सकल नसन्त सो ।
सन्त सम सुखद वसत सबहीको यह प्यारी बिन मोको भयो दुखत असन्त सों ॥४॥

तब विवाह चाहौं मैं कीन्हा । प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा ।।६।।
राम-सुनु मुनि तोहिं कहौं सहरोषा । भजहि मोहिं तजि सकल भरोसा ।।७।।
करौं सदा तिनकी रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ।।८।।

दोहा–काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोहकी धारि ।
तिनमहँ अति दारुण दुखद, मायारूपी नारि ।।२४।।
अवगुण मूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि ।।२५।।

पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम विज्ञान विशारद ।।१।।
ना०-सन्तनके लक्षण रघुवीरा । कहहु राम भंजन भवभीरा ।।२।।

राम-दोहा-गुणागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह ।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहँ देह न गेह ।।२६।।

उस समय एकान्त विचार हाथ में बीणा लिये नारदजी सुख से बैठे हुए राम के समीप गये।।३।। दण्डवत् करता देखि उठा लिया और बड़ी बार तक हियेमें लगाय रहे।।४।। नारदजी बोले-हे राम! जब आपने अपनी माया प्रेरकर मुझे मोहित किया।।५।। तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने क्यों न होने दिया।।६।। सुनो मुनि, तुमसे कहता हूँ जो सब भरोसा छोड़ मेरा भजन करते हैं।।७।। सदा उनकी रखवारी करता हूं जैसे बालक को महतारी रखती है।।८।। दोहार्थ–काम क्रोध लोभ आदि सब प्रबल मोह की धार हैं उनमें मायारूपी स्त्री बड़ी दुःखदायी है।।२४।। अवगुणों की मूल शूलदेनेवाली प्रमदा सब दुःखों की खान है। हे मुनि! यही मैंने जीमें जान कर निवारण किया।।२५।। चौ०–फिर नारदजी बोले-हे विज्ञान विशारद रामभद्र! सुनो।।१।। हे भवभीर भंजन रघुवीर! सन्तों के लक्षण कहो।।२।। दोहार्थ–रामचंद्र बोले, गुणों के स्थान संसार के दुःखों से रहित तथा सन्देह रहित और मेरे चरणकमल की प्रियता छोड़ उनको देह गेह प्यारा नहीं है।।२६।।

सुनि मुनि साधनुके गुण जेते । कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते ।।१।।

छंद–कहिसक न शारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपालु अपने भक्तगुण निजमुख कहे ।।
शिर नाय बारहिं बार चरणन ब्रह्मपुर नारद गये ।
ते धन्य तुलसीदास आश विहाइ जे हरिरंगरये ।।१।।

दोहा–रावणारि यश पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भक्ति दृढ़ पावहीं, विनु विराग जप योग ।।२७।।

इति चतुर्थ दर्शन

इति आरण्य काण्ड ३

सुनो मुनि जितने साधुओं के गुण हैं वह सरस्वती और श्रुति भी नहीं कह सकतीं।।१।। छन्दार्थ–शारद शेष वर्णन नहीं कर सकते यह सुनकर नारदजी ने चरणकमल पकड़ लिये कृपासागर ऐसे दीनबन्धु हैं कि अपने मुख से अपने भक्तों के गुण कहे वारंवार चरणों में शिर नवाय नारदजी ब्रह्मलोक को गये सब आशा छोड़कर जो हरि के रंग में रंग रहे हैं तुलसीदास कहते हैं वे धन्य हैं।।१।। दोहार्थ–रामचन्द्र के पवित्र यश को जो लोग गावैं और सुनैंगे वह बिना विराग जप योग के राम की दृढ़भक्ति पावेंगे।।२७।।

(सब गये)

इति चतुर्थ दर्शन

इति आरण्यकाण्ड ३

रामलीला-रामायण

किष्किंधाकाण्ड ४

अथ प्रथम दर्शन

(सुग्रीवसमागम वर्णन)

"आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यमूक पर्वत नियराई ॥१॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बलसीवा ॥२॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुषयुगल बलरूपनिधाना ॥३॥"
सु०-धरि बटरूप देखतैं जाई । कहसि मोहिं निज सैन बुझाई ॥४॥
पठवा बालि होइ मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह शैला ॥५॥
विप्ररूपधरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाय पूछत अस भयऊ ॥६॥
म०-को तुम श्यामल गौर शरीरा । क्षत्रीरूप फिरो वनवीरा ॥७॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी । कवन हेतु वन विचरहु स्वामी ॥८॥

(सुग्रीवसमागम वर्णन)

टीका-रघुनाथजी आगे चले ऋष्यमूकपर्वत के निकट गये॥१॥ वहां मंत्रियों सहित सुग्रीव रहता था उसने अतुलबलशाली राम लक्ष्मण को आते देखा॥२॥ बहुत भय कर बोला-हे महावीर! सुनो यह दोनों पुरुष बलरूप के निधान हैं॥३॥ वटुरूप धारण कर इन्है जाकर देखो और फिर मुझे सैन से समझाकर कह देना॥४॥ यदि वालि ने भेजा हो तो मन मैला हो जाना इस पर्वत को छोड़कर तुंरत भाग जाऊंगा॥५॥ ब्राह्मण का रूपधर महावीर वहां गये और माथा नीचा कर पूछने लगे॥६॥ श्यामल गौर शरीर तुम कौन हो वीरवेष क्षत्रियशरीर वन में फिरते हो॥७॥ इस कठिन भूमि में कोमलचरणों से फिरते हो हे स्वामी! किस कारण वन में विचरते हो'॥८॥

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह वन आतपवाता ॥९॥
की तुम तीन देवमें कोऊ । नर नारायण की तुम दोऊ ॥१०॥
दोहा-जग कारण तारण भवहि, भंजन धरणी भार ।
की तुम अखिल भुवनपति, लीन मनुज अवतार ॥१॥

राम-कोशलेश दशरथके जाये । हम पितु वचन मानि वन आये ।।१।।
राम नाम लक्ष्मण दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ।।२।।
यहाँ हरी निशिचर वैदेही । विप्र फिरहिं हम खोजत तेही ।।३।।
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु विप्र निज कथा बुझाई ।।४।।
प्रभु पहिचानि परे गहि चरणा । सो मुख उमा जाय नहिं वरणा ।।५।।
महा०–मैं अजान होइ पूछा सांई । तुम कस पूछौ नर की नांई ।।६।।
तव माया वश फिरौं भुलाना । ताते प्रभुपद नहिं पहँचाना।।७।।

दोहा–एक मंद मैं मोहवश, कीश हृदय अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु, दीनबन्धु भगवान ।।२।।

तुम्हारे कोमल मनोहर सुंदर गात हैं तुम वन में धूप और पवन सहते हो।।९।। क्या तुम तीनों देवताओं में कोई हो वा नरनारायण हो।।१०।। दोहार्थ–जगत् के कारण संसार के तारनेवाले भूमि का भार हरने क्या तुम सब भुवनों के अधिपति ही मनुष्य अवतार लिया है।।१।। चौ०–राम बोले-अयोध्यानरेश के जाये हम पिता के वचन मान वन में आये हैं।।१।। हम राम लक्ष्मण दोनों भाई हैं साथ में हमारे सुकुमारी नारी रही।।२।। यहां जानकी को राक्षसों ने हर लिया है, हे विप्र! हम उसे खोजते फिरते हैं।।३।। अपना चरित्र हमने समझाकर कहा, हे विप्र! अब अपनी कथा कहो।।४।। प्रभु को पहचान महावीर चरणों में पड़े हे पार्वती! सो सुख वर्णा नहीं जाता।।५।। हे स्वामी! मैंने तो अजान होकर पूछा परन्तु तुम मनुष्य के समान कैसे पूछते हो?।।६।। तुम्हारी माया के वश भूला फिरता हूं इससे प्रभु का पद नहीं पहँचाना।।७।। दोहार्थ–एक तो मैं मन्दमति मोह से युक्त फिर हृदय का अज्ञानी मर्कट दूसरे दीनबन्धु भगवान् आपने मुझे विसार दिया है।।२।।

यदपि नाथ अवगुण बहु मोरे । सेवक प्रभुहिं परे जनि भोरे ।।१।।
नाथ जीव तव माया मोहू । सो निस्तरै तुम्हारे छोहू ।।२।।
तापर मैं रघुवीर दुहाई । जानौं नहिं कछु भजन उपाई ।।३।।
सेवक सुत पितु मातु भरोसे । रहे अशोच बनै प्रभु पोसे ।।४।।
अस कहि चरण परे अकुलाई । निज तन प्रकट प्रीति उरछाई ।।५।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा । निजलोचन जल सींच जुड़ावा ।।६।।
सुनु कपिजियजनिमानसिऊना । तैं मम प्रिय लक्ष्मणते दूना ।।७।।
समदर्शी मोहिं कह सब कोई । सेवक प्रिय अनन्यगति सोई ।।८।।

दोहा–सो अनन्य अस जाहिके, मति न टरै हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर, रूपराशि भगवन्त ॥३॥

महा०–नाथ शैलपर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तव अहई ॥१॥
तासन नाथ मयत्री कीजै । दीनजानित्यहि अभय करीजै ॥२॥
सो सीताकर खोज कराई । जहँ तहँ मर्कट कोटि पठाई ॥३॥
इहिविधि सकल कथा समुझाई । लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई ॥४॥

चौ०–हे नाथ! यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं तो भी सेवक को प्रभु भूलते नहीं हैं॥१॥ हे नाथ! यह जीव तुम्हारी माया से मोहा हुआ तुम्हारी कृपा से निस्तार पा सकता है॥२॥ इस पर भी मैं रघुवीर की दुहाई कुछ भजन का उपाय नहीं जानता हूं॥३॥ हे प्रभु! सेवक और पुत्र पिता माता के भरोसे अशोच रहते हैं उन्हें पाले पोसे ही बनता है॥४॥ यह कह व्याकुल हो चरणों में गिरे और हृदय की प्रीति शरीर पर भी प्रगट हुई॥५॥ तब रघुनाथजी ने उठाय हृदय से लगाया और अपने नेत्रों के जल से सींच ठंढ़ा किया॥६॥ हे कपि! मन में बुरा मत मानो तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्यारे हो॥७॥ मुझे सब कोई समदर्शी कहते हैं परन्तु सेवक वही प्रिय है जो अनन्यगति हो॥८॥ दोहार्थ–हे हनुमान्! अनन्य वह है जिसके ऐसी मति न टरै कि, मैं सेवक हूं और चराचर के स्वामी भगवान रूपराशि हैं॥३॥ चौ०–महावीर-हे नाथ! पर्वत पर तुम्हारा दास सुग्रीव कपीश्वर रहता है॥१॥ उससे मित्रता कीजै और दीन जानकर अभय करिये॥२॥ वह सीता की खोज करावेंगे जहां तहां अनेक वानर भेजेंगे॥३॥ इस प्रकार सब कथा समझाय दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ा लिया॥४॥

जब सुग्रीव राम कहँ देखा । अतिशय धन्य जन्म कर लेखा ॥५॥
सादर मिल्यउ नाइ पद माथा । भेंटचो अनुजसहित रघुनाथा ॥६॥

दोहा–तब हनुमंत उभयदिशि, कहि सब कथा बुझाइ ।
पावक साखी देइकरि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥

सु०-कह सुग्रीव नयन भरि वारी । मिलिहि नाथ मिथिलेश कुमारी ॥१॥
मंत्रिन सहित यहां इक बारा । बैठि रह्यउँ कछु करत बिचारा ॥२॥
गगनपंथ देखी मैं जाता । परवश परी बहु बिलखाता ॥३॥
राम राम हा राम पुकारी । मम दिशि देखि दीन पट[1] डारी ॥४॥

---

१ राग केदारा-भूषण वसन विलोकत सियके ॥टेक॥
प्रेमविवश मनमें पुलकित नीरज नयन नीर भरि पियके॥भू०॥
सकुचत कहत सुमिरि उर उमँगत शील सनेह सुगुण गण तियके ॥भू०॥
स्वामिदशा लखि लषण सखा कपि पघिले हैं आंच पाठ मानो घियके ॥भू०॥

मांगा राम तुरत सो दीन्हा । पटउरलाइ शोच अति कीन्हा ।।५।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा । तजहु शोक मन आनहु धीरा ।।६।।

जब सुग्रीव ने राम को देखा तब अपना जीवन धन्य माना।।५।। आदर से चरणों में शिर नवाय मिला और लक्ष्मणसहित राम मिले।।६।। दोहार्थ–तब महावीर ने दोनों ओर की कथा समझाकर कही और अग्नि साक्षी देकर प्रीति जोड़ी।।४।। चौ०–सुग्रीव नेत्रों में जल भरकर बोला–हे नाथ! मिथिलेशकुमारी मिलेगी।।१।। यहां एक समय मंत्रियोंसहित बैठा विचार कर रहा था।।२।। तब मैंने आकाशमार्ग में जाती देखी थी कि, परवश पड़ी व्याकुल हो जा रही थी।।३।। राम राम हा राम पुकारकर हमारी ओर देख, वस्त्र डाल दिया।।४।। राम ने मांगो तो सुग्रीव ने तुरत दिया और पटको हृदय में लगाय बहुत शोच किया।।५।। सुग्रीव ने कहा हे राम! सुनो शोच त्यागन करो मन में धीर धरो।।६।।

सब प्रकार करिहौं सेवकाई । जेहिविधि मिलहि जानकी आई ।।७।।
दोहा–सखा वचन सुनि हरषेउ, रघुपति करुणासीव ।
राम–कारण कवन बसहु वन, मोसन कह सुग्रीव ।।५।।
सु०–नाथ वालि अरु मैं दोउ भाई । प्रीति रही कछु वरणि न जाई ।।१।।
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ।।२।।
अर्ध रात्रि पुर द्वार पुकारा । वालिहु रिपु बल सहै न पारा ।।३।।
धावा वालि देखि सो भागा । मैं पुनि गयउँ बन्धुसँग लागा ।।४।।
गिरिवर गुहा पैठि सो जाई । वालि मोहिं तब कहा बुझाई ।।५।।
परखेउ मोहिं एक पखवारा । नहिं आवौं तो जानेहु मारा ।।६।।
मास दिवस तहँ रह्यउँ खरारी । निसरी रुधिर धार तहँ भारी ।।७।।
तब मैं निजमन कीन्ह विचारा । जाना असुर बन्धुकहँ मारा ।।८।।
बालि हतेसि मोहिं मारहि आई । शिला द्वारते चलेउँ पराई ।।९।।
मंत्रिन पुर देखा बिनुसाई । दीन्हे राज्य मोहिं बरि आई ।।१०।।
वाली ताहि मारि गृह आवा । देखि मोहिं जिय भेद बढ़ावा ।।११।।

सब प्रकार से सेवा करूँगा जिस प्रकार जानकी आय मिलेंगी।।७।। दोहार्थ–करुणामय रामचन्द्र

ल०–कवित्त–कमल अमोल गोलकुंडल प्रकाशमान ऐसो दरशातकोऊ राजभामिनीको है।
तैसे ही अमन्द भुजवन्द चन्दते दुचद दीपति सुदिव्य दुतिहारीदामिनीको है ।।
परम पुनीत पदभूषण अनूप चारु पूजनीय संतत त्रिलोक नामिनीको है ।।
रसिकबिहारी और नाहीं पहँचाने एक जाने यह नूपुर हमारी स्वामिनीको है।।१।।

सखा के वचन सुन प्रसन्न हुए और बोले हे सुग्रीव! मुझसे कहो वन में क्यों निवास करते हो।।५।। चौ०–सु०–हे नाथ! बालि और मेरी दोनों भाइयों की अकथनीय प्रीति थी।।१।। एक समय मय का पुत्र मायावी हमारे गांव में आया।।२।। आधी रात को पुर के द्वार पर पुकारा, बालि शत्रु का बल सहन न करता था।।३।। तुरत धावमान हुआ यह बालि को देख भागा मैं भी भाई के पीछे चला।।४।। वह पर्वत की कन्दरा में घुस गया तब बालि ने मुझे समझाकर कहा।।५।। मुझे एक पखवारा देखना, नहीं आऊँ तो मरा जानना।।६।। मैं बहां एक महीने के दिन तक रहा तब उसमें से रुधिर की भारी धारा निकली।।७।। तब मैंने अपने मन में विचार किया कि असुर ने भाई को मारा।।८।। बालि को मारकर आकर मुझे भी मारेंगे तब शिला द्वार पर रख चला आया।।९।। मन्त्रियों ने बिना महाराज के पुर देखकर मुझे बरबस राज्य दे दिया।।१०।। बालि उसे मारकर घर आया और मुझे देखकर मन में भेद बढ़ाया।।११।।

रिपु समान म्वहिं मारेसि भारी । हरिलीन्हेसि सरवश अरु नारी ।।१२।।
ताके भय रघुवीर कृपाला । सकल भुवन मैं फिरहुँ विहाला ।।१३।।
यहां शाप वश आवत नाहीं । तदपि सभीत रहौं मनमाहीं ।।१४।।
"सुनि सेवकदुख दीनदयाला । फरकि उठे दोउ भुजा विशाला ।।"
दोहा–राम-सुन सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्मरुद्र शरणागतहु, गये ने उबरहिं प्रान ।।६।।
जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हैं विलोकत पातक भारी ।।१।।
निजदुख गिरिसम रजकर जाना । मित्र के दुखरज मेरु समाना ।।२।।
जिनके असमति सहज न आई । ते शठ हठ कत करत मिताई ।।३।।
कुपथ निवार सुपंथ चलावा । गुण प्रगटैं अवगुणहि दुरावा ।।४।।
देत लेत मन शंक न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करही ।।५।।
विपति कालकर शतगुण नेहा । श्रुति कह संतमित्र गुण एहा ।।६।।
आगे कह मृदु वचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ।।७।।

शत्रु के समान मुझे बहुत मारा, मेरी स्त्री और सर्वस्व हर लिया।।१२।। हे कृपासागर राम! उसके भय से मैं सर्वत्र विहाल फिरता हूं।।१३।। यहां शाप के कारण नहीं आ सकता तो भी मैं मन में बडा सभीत रहता हूं।।१४।। इस प्रकार सेवक का दुःख सुनकर दीनदयालु की दोनों भुजा फरक उठीं।।१५।। दोहार्थ–और बोले–हे सुग्रीव! मैं बालि को एक ही बाण से मार दूँगा। यदि वह ब्रह्मा रुद्र की शरण में जायगा तो भी उसके प्राण नहीं उबरेंगे।।६।। चौ०–जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उनको देखने में बड़ा पातक लगता है।।१।। अपना दुःख पर्वत के समान भी रज के समान जाने और मित्र का रज के समान दुःख मेरु के समान जाने।।२।। जिनके स्वभाव में ऐसी मति नहीं आती

उनसे हठकर मित्रता क्यों करते हो।।३।। कुपंथ में निवारण कर सुपन्थ में चलाते हैं। गुण प्रगट कर अवगुण छिपाते हैं।।४।। देते लेते मन में शंका न करके बल के अनुसार सदा हित करते हैं।।५।। विपत्तिकाल में सौ गुणा नेह करते हैं। श्रुति कहती है सन्त और मित्रों के यह गुण हैं।।६।। और जो आगे मीठे वचन बनाकर कहते हैं पीछे में अनहित मन में कुटिलता करते हैं।।७।।

जाकर चित अहि गतिसम भाई । अस कुमित्र परिहरे भलाई ।।८।।
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी । कपटी मित्र शूलसम चारी ।।९।।
सखा शोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि करब काज मैं तोरे ।।१०।।
सुग्रीव–कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा । वालिमहाबल अतिरणधीरा ।।११।।
सप्त ताल यह कृपानिधाना । वेधै जो सब एकहि बाना ।।१२।।
चन्द्र मंडलाकार सुहाई । परै एक बाणहि महि आई ।।१३।।
ताके कर वाली प्रभु मरई । नातौ श्रम मिथ्या कोउ करई ।।१४।।
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये ।।१५।।
उपजा ज्ञान वचन तब बोला । नाथकृपा मन भयउ अडोला ।।१६।।
सुग्रीव–सुखसम्पतिपरिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ।।१७।।
ये सब रामभक्ति के बाधक । कहहिं संत तवपद अवराधक ।।१८।।
बालि परमहित जासु प्रसादा । मिलेउ राम तुम शमनविषादा ।।१९।।
अब प्रभु कृपा करहु इहिभाँती । सबतजि भजनकरौं दिनराती ।।२०।।
राम–जो कछु कहेउ सत्य सब सोई । सखावचन मम मृषा न होई ।।२१।।

हे भाई! जिसका चित्त इस प्रकार वा सर्प की गति के समान है ऐसा कुमित्र त्यागने से ही भलाई है।।८।। मूर्ख सेवक, कृपण राजा, खोटी स्त्री कपटी मित्र या चारों शूल के समान हैं।।९।। हे सखा! तुम मेरे बल पर शोच त्याग दो। मैं सब प्रकार तुम्हारे कार्य करूंगा।।१०।। सुग्रीव बोला–हे राम! वालि महाबली और बड़ा रणधीर है।।११।। हे कृपानिधान! यह सात ताल के वृक्ष जो कोई एक ही बाण से वेध दे।।१२।। जो यह चन्द्रमण्डलाकार एक ही बाण से भूमि पर आ गिरे।।१३।। तो उसी के हाथ से बालि मरे नहीं तो श्रम करना व्यर्थ है।।१४।। दुन्दुभी की अस्थि और ताल दिखलाये। रामचन्द्र ने बिना प्रयास ढ़हा दिये।।१५।। तब ज्ञान उपजने से सुग्रीव बोला–स्वामी की कृपा से मन अडोल हो गया।।१६।। सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई यह सब त्यागकर आपकी सेवा करूंगा।।१७।। कारण कि यह सब रामभक्ति में बाधा करते हैं। ऐसा तुम्हारे चरणों के आराधक सन्त कहते हैं।।१८।। वालि तो मेरा परम हितू है हे राम! जिसके कारण तुम दुःख दूर करनेवाले मिले।।१९।। हे प्रभु! अब इस प्रकार कृपा करो जो सब त्याग दिन रात भजन करूं।।२०।। रामचन्द्र बोले–हे सखा! जो तुम कहते हो सब सत्य है पर मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।।२१।।

"लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ।।२२।।
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ।।२३।।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहिकर चरण नारि समुझावा ।।२४।।"
ता–सुनुपति जिनहिं मिला सुग्रीवा । ते दोउ बंधु तेज बलसीवा ।।२५।।
कोशलेश सुत लक्ष्मण रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ।।२६।।
दोहा–"कहा वालि सुनु भीरु प्रिय, समदर्शी रघुनाथ ।
जो कदापि मोहि मारिहैं, तौ पुनि होब सनाथ ।।७।।"

इति प्रथम दर्शन

तब सुग्रीव को साथ ले धनुषबाण हाथ में लिये रामचन्द्र चले।।२२।। तब रघुनाथजी ने सुग्रीव को भेजा और निकट जाकर बलपाय गर्जा।।२३।। सुनते ही वालि क्रोध से दौड़ा तब उसनी नारी ने चरण पकड़ समझाया।।२४।। हे स्वामी! जिनसे सुग्रीव मिला है वे दोनों भ्राता बड़े तेजस्वी बलवान् हैं।।२५।। वे दशरथपुत्र लक्ष्मण राम काल को भी संग्राम में जीत सकते हैं।।२६।। दोहार्थ–वालि ने कहा–हे प्रिये! राम तो समदर्शी हैं जो कदाचित् मुझे मारेंगे भी तो सनाथ हो जाऊंगा।।७।।

इति प्रथम दर्शन

अथ द्वितीय दर्शन

स्थान किष्किन्धा उपवन
(वालि सुग्रीव युद्ध)

(दोनों लड़ते हैं)

"भिरेउयुगल वाली अति तर्जा । मुष्टिक मार महाधुनि गर्जा ।।१।।
तब सुग्रीव विकल होइ भागा । मुष्टि प्रहार वज्रसम लागा ।।२।।"

(वालि सुग्रीव का युद्ध)

टीका–दोनों गर्जकर भिड़ गये। बालि मुष्टिक मारकर महाधुनि से गर्जा।।१।। जब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। वह मुष्टि प्रहार वज्र के समान लगा।।२।।

सुग्रीव–मैं जो कहा रघुवीर कृपाला । बन्धु न होइ मोर यह काला ।।३।।
राम–एकरूप तुम भ्राता दोऊ । तेहि भ्रमते नहिं मारेउँ सोऊ ।।४।।
करपरशा सुग्रीव शरीरा । तनु भा कुलिश मिटी सब पीरा ।।५।।

मेली कण्ठ सुमन की माला । पठवा पुनि बल देइ विशाला ।।६।।
पुनि नानाविधि भई लराई । विटप ओट देखहिं रघुराई ।।७।।

दोहा–बहु छलबल सुग्रीव करि, हृदय हारि भय मानि ।
मारा वालिहि राम तब, हिये माँझ शर तानि ।।८।।

परा विकल महि शरके लागे । पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे ।।१।।
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा । बोला चितै राम की ओरा ।।२।।
वालि–धर्म हेतु अवतरेहु गुसाईं । मारेहु मोहिं व्याध की नाईं ।।३।।
मैं वैरी सुग्रीव पियारा । कारण कवन नाथ म्वहिं मारा ।।४।।
राम–अनुजवधूभगिनी सुतनारी । सुन शठ ये कन्या समचारी ।।५।।
इन्हैं कुदृष्टि विलोकै जोई । ताहि वधे कछु पाप न होई ।।६।।

कृपालु राम! मैंने जो कहा था यह बंधु नहीं मेरा काल है।।३।। रामचंद्र बोले–तुम दोनों भ्राता एक रूप हो, इसी भ्रम से उसको नहीं मारा।।४।। फिर सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा जिससे उसका शरीर वज्र के समान कठोर हो गया। शरीर की सब पीर मिट गई।।५।। और अपने गले की फूल माला उसके कण्ठ में डाली और फिर बड़ा बल देकर भेजा।।६।। फिर अनेक प्रकार से लड़ाई हुई। रघुनाथजी वृक्ष की ओट में देखते हैं।।७।। दोहार्थ–सुग्रीव बहुत से छलबलकर जब भयमान हृदय में हार गया तब रघुराज ने बाण को चढ़ाय बालि के हृदय में प्रहार किया।।८।। चौ०–बाण लगन से व्याकुल हो पृथ्वी में गिरा फिर उठ बैठा तो राम को आगे देखा।।१।। हृदय में प्रीति मुख में कठोर वचन राम की ओर देखकर बोला।।२।। हे गोसाईं! आपका अवतार धर्म के निमित्त हैं मुझे व्याध के समान क्यों मारा।।३।। मैं वैरी और सुग्रीव पियारा हुआ। हे नाथ! क्या कारण जो आपने मुझे मारा है।।४।। राम बोले–छोटे भ्राता की बहू, बहन, बेटे की स्त्री और कन्या हे मूर्ख! यह चारों समान हैं।।५।। इन्हें जो कुदृष्टि से देखे उसके मारे से पाप नहीं होता।।६।।

मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना । नारिसिखावन करेसिन काना ।।७।।
ममभुजबल आश्रित तेहि जानी । माराचहसि अधम अभिमानी ।।८।।

वालि–दोहा–सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहुँ मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि ।।९।।

सुनत राम अति कोमलवाणी । वालि शीश परसा निजपाणी ।।१।।
राम–अचल करौं तनुराखहु प्राणा । वालि कहा सुन कृपानिधाना ।।२।।
वा०–जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं । अन्तरामकहि आवतनाहीं ।।३।।

जासु नाम बल शंकर काशी । देतसबहि समगति अविनाशी ।।४।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि अस प्रभु बनहि बनावा ।।५।।

छन्द–सो नयन गोचर जासु गुण नित नेति कहि श्रुति गावहीं ।
जिमि पवन मनगो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ।।
मोहिं जानि अति अभिमानवश, प्रभु कह्यउ राख शरीरहीं ।
अस कवन शठ हठ काटि सुरतरु बारि करहिं करीरहीं ।।१।।

हे मूर्ख! तुमको ऐसा अभिमान है कि स्त्री का सिखाना भी कान न किया।।७।। मर भुजबल के आश्रित जानकर हे अभिमानी! तू मारा चाहता है।।८।। दोहार्थ–वालि ने कहा हे स्वामी राम! आपसे तो कुछ चतुराई नहीं चल सकती परंतु हे प्रभु! जब अन्तकाल में तुम्हारी गति है तो क्या मैं अब भी पातकी हूं।।९।। चौ०–राम ने अतिकोमल वाणी सुन उसके शिर पर अपना हाथ रखा और बोले।।१।।। शरीर अचल करता हूं। प्राण रखो वालि ने कहा–हे कृपानिधान! सुनो।।२।। जन्म जन्म तक मुनि यत्न करते हैं पर अंत में राम ऐसा कहा भी नहीं जाता।।३।। जिसके नाम के बल से शिवजी काशी में सबको समान गति देते हैं।।४।। वह मेरी नेत्र इन्द्रिय के समक्ष हैं। हे प्रभु! फिर ऐसा बनाव क्या बन सकता है?।।५।। छंदार्थ–जिसके गुण नेति नेति कहकर वेद गाते हैं सो मेरे नेत्रों के सन्मुख हैं जिसे प्राण मन और इंद्रियों को निरसकर कभी मुनिजन ध्यान में पाते हैं। मुझे अभिमान के वश जानकर प्रभु ने शरीर रखने को कहा है। ऐसा कौन मूर्ख है जो कल्पवृक्ष को काट कीकर बोवे।।१।।

अब नाथ करि करुणा विलोकहु, देव यह वर माँगऊं ।
जेहि योनि जन्मौं कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊं ।।
यह तनय मम सम विनय बल कल्याणपद प्रभु दीजिये ।
गहि बाँह सुर नरनाह अंगद दास अपनो कीजिये ।।२।।

दोहा–रामचरण दृढ प्रीति कर, बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कण्ठते, गिरत न जानै नाग ।।१०।।

नाना विधि विलाप कर तारा । छूटे केश न देह सँभारा ।।१।।
तारा–मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा । कालविवश पियमनहिं न आवा ।।२।।
अंगद कहँ कछु कहन न पायहु । बीचहि सुरपुर प्राण पठायहु ।।३।।
राम–क्षितिजल पावक गगनसमीरा । पंचरचित यह अधम शरीरा ।।४।।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । जीवनित्यतुम केहिलगिरोवा ।।५।।
तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा । मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ।।६।।

राम कहा अनुजहि समुझाई । राज्य देहु सुग्रीवहि जाई ।।७।।
रघुपति चरण नायकरि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ।।८।।

हे नाथ! अब करुणाकर देखो और यह वर दो कि कर्मवश जिस योनि में जन्मूँ वहां तुम्हारे चरणों का अनुराग हो। यह पुत्र विनय बल में मेरे समान है। हे प्रभु! इसे कल्याणपद दो। हे सुरनरों के अधिपति! अंगद की बाँह पकड़ इसको अपना दास करो।।२।। दोहार्थ–राम के चरणों में दृढ़ प्रीति कर बालि ने अपना शरीर त्याग दिया। जिस प्रकार हाथी अपने गलेके फूलों की माला गिरते नहीं जानता।।१०।। चौ०–तारा अनेक विलाप करने लगी। केश छूट गये, देह की संभार न रही।।१।। हे पति! मैंने तुमको बहुत समझाया पर काल के वश से तुम्हारे मन में कुछ न आया।।२।। अंगद से भी कुछ कहने नहीं पाये। बीच में ही सुरपुर को प्राण भेज दिये।।३।। रामचंद्र बोले–भूमि जल अग्नि वायु आकाश इन पांच तत्त्व का रचा यह अधम शरीर है।।४।। प्रगट में तुम्हारे आगे सोता है और जीव नित्य है उसके निमित्त क्यों रोती हो।।५।। तब सुग्रीव को आज्ञा दी उसने मृतककर्म विधिपूर्वक किया।।६।। राम ने लक्ष्मण से कहा–तुम सुग्रीव को जाकर राज्य दो।।७।। लक्ष्मण राम के चरणों में शिर नवाय राम से प्रेरित हो सबके साथ चले।।८।।

दोहा–लक्ष्मण तुरत बुलावा, पुरजन विप्र समाज ।
राज्य दीन सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज ।।११।।

इति द्वितीय दर्शन

दोहार्थ–लक्ष्मण ने पुरवासी और ब्राह्मणों के समाज को बुलाया सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज दिया।।११।।

अथ तृतीय दर्शन

राम का प्रवर्षण पर्वत पर निवास करना

(राम लक्ष्मण बैठे हैं)

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बुलाई । बहुप्रकार नृप नीति सिखाई ।।१।।
राम-कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा । पुर न जाउँ दश चारि बरीशा ।।२।।
गत ग्रीषम वर्षाऋतु आई । रहिहौं निकट शैल पर छाई ।।३।।
अंगद सहित करहु तुम राजू । सन्तत हृदय राखि मम काजू ।।४।।
"तब सुग्रीव भवन फिरि आये । राम प्रवर्षण गिरिपर छाये ।।५।।"
दोहा–लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद* पेखि ।
गृही विरति जिमि हर्षयुत, विष्णुभक्त कहँ देखि ।।१२।।

---

*घनाक्षरी–कीधौंबिरहीके प्राण दाहे धूमधुरन्धर ये कीधौं हैं सपक्ष गिरि जड़त उतंग हैं।

(राम का प्रवर्षण पर निवास करना)

टीका-फिर सुग्रीव को बुलाकर अनेक प्रकार से राजनीति सिखाई ।।१।। प्रभु बोले—हे वानरराज सुग्रीव! मैं चौदह वर्ष तक पुर में नहीं जाऊँगा।।२।। अब गरमी बीतकर वर्षा ऋतु आई है निकट के पर्वत पर मैं निवास करूंगा।।३।। तुम निरन्तर हमारा काज हृदय में धारण कर राज्य करो।।४।। तब सुग्रीव घर को लौट आये राम ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया।।५।। दोहार्थ—और बोले हे लक्ष्मण! देखो ये मोर मेघों को देखकर नाचते हैं जैसे वैरागी गृहस्थी विष्णुभक्त को देख प्रसन्न होते हैं।।१२।।

घनघमण्ड नभ गर्जत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।१।।
दामिनि दमकि रही घनमाहीं । खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं ।।२।।
वरषहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बुध विद्या पाये ।।३।।
बूँद अघात सहैं गिरि कैसे । खलके वचन संत सह जैसे ।।४।।
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई । जस थोरे धन खल बौराई ।।५।।
सिमिट २ जल भरै तलावा । जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा ।।६।।
दोहा—हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पंथ ।
जिमि पाखण्ड विवादते, लुप्त भये सदग्रन्थ ।।१३।।

कीधौं ऋतु पावसके विविध वितान तने कीधौं नभमंडलमें तरल तुरंग हैं ।।
रसिकविहारी कीधौं बालक निशाके श्याम कीधौं वरषाके दूत डोलत सुढंग हैं ।
कीधौं युग मासके विलासके अवास सो हैं छूटे कीधौं मदन महीपके मतंग हैं ।।१।।
आवत चहूँघा घन घेरि नभमडलमें करत अँध्यारी भारी गरजत जोरसों ।
दूरि दुरि दौरि विज्जु छटाछहरात ज्योंही त्योंही तरु तोरै प्रबल झकोरसों ।।
रसिकविहारी मोर मुदितपुकारत हैं जित तित झिल्ली झनकारत हैं जोरसों ।
बरसत नीर धार धरणी धरै न धीर होत है अधीर सब मदनमरोरसों ।।२।।
धावे हैं बलाक झुंड झुंड नभमंडलमें नीके कोकिलान्के सरस सुर माचै हैं ।
गुंजत मधुपपुञ्ज पुञ्जनमें कुञ्जनमें बोलत पपीहा पीव रंग राचै हैं ।
रसिक बिहारी उर आनंद अपार होत पावसके साज सबै सांचे सुखसांचै हैं ।
लरज उठै है सुनि मेघकी गरज देखो बागनमें मुदित मयूर गण नाचैं हैं ।।३।।
सवैया-झूमि रहीं द्रुम डारैं चहूँ दिशि भूमि हरी लखि होत हरो हिय ।
लोनी लतालपटीं तरू अंगन मानो नवेली रहीं मिलिकै पिय ।।
इन्द्रवधू छबि छावैं चहूँ रसिकेश विलोकतहीं हुलसै हिय ।
श्याम मनाये न मानती जो सोइ आपहिते तजि मान मिलै तिय ।।४।।

वर्षा गत निर्मल ऋतु आई । सुधि न तात सीताकी पाई ।।१।।

चौ०-मेघ घुमड़कर आकाश में घोर गर्जना कर रहे हैं प्रिया के बिना मेरा मन डरता है।।१। मेघों में बिजली चमक रही है जैसे खलों की प्रीति स्थिर नहीं रहती।।२।। भूमि के निकट होकर मेघ गर्जते हैं जैसे पण्डित विद्या पाकर झुक जाते हैं।।३।। बड़ी बूंदे पर्वत ऐसे सहते हैं जैसे खलों के वचन सन्त सहते हैं।।४।। छोटी नदी ऐसे उतरा चली जैसे थोड़े धन से खल इतरा जाता है।।५।। सिमिट सिमिटकर जल से तालाब भर गये जैसे सद्गुण सज्जनों पर आते हैं।।६।। दोहार्थ-तृणों से व्याप्त होकर भूमि हरी हो रही है मार्ग नही समझ पड़ता है जैसे पाखण्ड विवाद से सद्ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं।।१३।। वर्षा बीतकर निर्मल ऋतु आई हे तात! सीता की सुधि नहीं पाई।।१।।

एकबार कैसेहुँ सुधि जानौं । कालहु जीति निमिषमहँ आनौं ।।२।।
कतहुँ रहो जो जीवति होई । तात यतन करि आनौ सोई ।।३।।
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी । पावा राज्य कोष पुरनारी ।।४।।
जेहि सायक मैं मारा बाली । तेहि शर हतौं मूढ़कहँ काली ।।५।।
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना । धनुष चढ़ाय गहे कर बाना ।।६।।

दोहा-तब अनुजहि समुझायउ, रघुपति करुणा सीव ।
भय दिखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ।।१४।।

इति तृतीय दर्शन

एक बार जो कैसे भी सुध पाऊं तो पल में काल को जीत लाऊं।।२।। कहीं भर रहे जो जीती होगी तो हे तात! एक बार यत्न करके उसे लाऊँगा।।३।। सुग्रीव ने भी मेरी सुधि विसारदी है, उसे राज्य, कोष, पुर, स्त्री मिल गई है।।४।। जिस बाण से मैंने बालि को मारा है उसीसे कल उस मूढ़ को मारूँगा।।५।। लक्ष्मण ने प्रभु को क्रोधवन्त जान धनुष चढ़ाय बाण ग्रहण किये।।६।। दोहार्थ-तब करुणासागर राम ने अनुज को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को भय दिखाय ले आओ।।१४।।

इति तृतीय दर्शन

चतुर्थ दर्शन

(महावीरजी का सुग्रीव को समझाना और लक्ष्मण का नगर में आना)

यहां पवनसुत हृदय विचारा । रामकाज सुग्रीव बिसारा ।।१।।
निकट जाय चरणन शिरनावा । चारिहु विधि तेहि कह समुझावा ।।२।।

सुग्रीव–अब मारुत सुत दूत समूहा । पठवहु जहँ तहँ वानरयूहा ।।३।।
कहहु पक्षमहँ आव न जोई । मोरे कर ताकर वध होई ।।४।।
त्यहि अवसर लक्ष्मण पुर आये । क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये ।।५।।

टीका–यहां महावीरजी ने मन में विचारा कि सुग्रीव ने राम का काज बिसार दिया है।।१।। निकट जाकर चरणों में शिर नवाय विग्रह सन्धि भेदादि चार प्रकार से समझाया।।२।। सुग्रीव ने कहा हे महावीर! अब चारों ओर दूत भेजो।।३।। और कहो जो एक पखवारे में नहीं आवेगा तो मेरे हाथ से उसका वध होगा।।४।। यह सुन जहां तहां वानर गये और उसी समय लक्ष्मण पुर में आये क्रोध देखकर जहां तहां कपि धावमान हुए।।५।।

दोहा–धनुष चढ़ाय कहा तब, जारि करौं पुरछार ।
व्याकुल नगर देखि तब, आवा बालिकुमार ।।१५।।

चरण नायशिर विनती कीन्हीं । लक्ष्मण अभयबाँह तेहि दीन्हीं ।।१।।
क्रोधवंत लक्ष्मण सुनिकाना । कह कपीश अतिशय अकुलाना ।।२।।
सु०-तुम हनुमन्त संगलै तारा । करि विनती समुझाउ कुमारा ।।३।।
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरण वन्दि प्रभु सुयश बखाना ।।४।।
करि विनती मंदिर लै आये । चरण पखारि पलँग बैठाये ।।५।।
तब कपीस चरणन शिर नावा । गहि भुज लक्ष्मण कण्ठ लगावा ।।६।।
पवनतनय सब कथा सुनाई । ज्यहि विधि गये दूत समुदाई ।।७।।

दोहा–हर्षि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ ।
राम अनुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ ।।१६।।

सु०-अतिशय प्रबल देव तवमाया । छूटै तबहिं करहु जब दाया ।।१।।
विषय विवश सुरनरमुनि स्वामी । मैं पामर पशुकपि अतिकामी ।।२।।
नारि नयनशर जाहि न लागा । महाघोर निशि सोवत जागा ।।३।।

दोहार्थ–तब लक्ष्मण ने धनुष चढ़ाकर कहा जलाकर पुर छार कर दूंगा तब नगर को व्याकुल देख अंगदजी आये।।१५।। चौ०–चरणों में शिर नवाय विनती की लक्ष्मण ने उनको अभय बांह दी।।१।। लक्ष्मणको क्रोधवंत जानकर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुए और बोले।।२।। हे महावीर! तुम तारा को साथ ले विनती कर कुमार को समझावो।।३।। हनुमान ने तारा के सहित जाय चरणों में प्रणाम कर प्रभु का सुयश वर्णन किया।।४।। विनती करके मन्दिर में ले आये चरण धोकर पलंग पर बैठाया।।५।। तब सुग्रीव ने चरणों में शिर नवाया भुजा पकड़ लक्ष्मण ने कंठ लगाया।।६।।

महावीरजी ने सब कथा सुनाई जिस प्रकार दूत सेना बुलाने को गये हैं।।७।। दोहार्थ–तब सुग्रीव प्रसन्न हो अंगदादि वानरों के साथ चले लक्ष्मण को आगे कर रामचन्द्र पर आये।।१६।। चौ०–सुग्रीव बोले-हे देव! आपकी माया बड़ी प्रबल है यह तभी छूट सकती है जब तुम दया करो।।१।। हे स्वामि! विषय के वश तो सुर नर मुनि भी हैं मैं तो पामर पशु वानर बड़ा कामी हूं।। नारि के नेत्रों का बाण जिसके नहीं लगा वह महाघोर रात में सोता हुआ जागा।।३।।

लोभपाश जेहि गर न बँधाया । सो नर तुम समान रघुराया ।।४।।
यह गुण साधनते नहिं होई । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ।।५।।
राम-तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुमप्रिय मोहिं भरत जिमि भाई ।।६।।
अब सोइ यतन करहु मनलाई । जेहिविधि सीताकी सुधि पाई ।।७।।

दोहा–"इहि विधि होत बतकही, आये बानर यूथ ।
नानावरण अतुल बल, देखिये कीशबरूथ ।।१७।।"

सुग्रीव-सेना से–

रामकाज अरु मोर निहोरा । वानर यूथ जाहु चहुँओरा ।।१।।
जनकसुता कहँ खोजहु जाई । मासदिवसमहँ आयहु भाई ।।२।।
अवधि मेटि जो बिनुसुधिपाये । अवशि मरिहिसोममकरआये ।।३।।

दोहा–"वचन सुनत सब वानर, जहँतहँ चले तुरंत ।
तब सुग्रीव बुलायउ, अंगदादि हनुमन्त ।।१८।।"

सु०-सुनहु नील अंगद हनुमाना । जाम्बवंत मतिधीर सुजाना ।।१।।
सकल सुभट मिलि दक्षिण जाहू । सीता सुधि पूछेहू सब काहू ।।२।।
मम वच क्रम सो यतन विचारहु । रामचन्द्र कर काज सँवारहु ।।३।।
भानु पीठ सेइय उर आगी । स्वामी सेइय सब छल त्यागी ।।४।।

जिसने लोभ की फांसी से अपना गला नहीं बँधाया हे राम! वह तुम्हारे समान है।।४।। यह गुण साधन से नहीं होते तुम्हारी कृपा से कोई कोई पाते हैं।।५।। तब श्रीराम हँसकर बोले तुम मुझे भाई भरत के समान प्रिय हो।।६।। अब मन लगाय सो यत्न करो जिससे जानकी का समाचार मिले।।७।। दोहार्थ–इस प्रकार वार्त्ता होती थी कि, वानरों के अनेक यूथ आये अनेक वर्णों के अतुल बलवाले वानरों के यूथ थे।।१७।। सुग्रीव बोले राम के काज और मेरे निहोरे से चारों ओर वानर सेना जाओ।।१।। जानकीजी की खोजकर सब एकमास में लौट आना।।२।। अवधि मेटकर जो बिना सुध पाये आवेगा वह निश्चय मेरे हाथ से मरेगा।।३।। दोहार्थ–यह वचन सुन जहां तहां वानर चले तब सुग्रीव ने-अंगद और महावीरादि को बुलाकर कहा।।१८।। हे नील अंगद हनुमान

बुद्धिमान् धीर जाम्बवन्त! सुनो।।१।। तुम सब मिलकर दक्षिण दिशा में जावो सबसे जानकी की सुध पूछना।।२।। मन वचन कर्म से यत्न विचारकर रामचन्द्र का काम सँभालो।।३।। सूर्य को पीठ और आगीको हृदय से सेवन करो पर स्वामी को सब छल त्यागकर सेवन करो।।४।।

देह धरेकर यह फल भाई । भजिय राम सब काम बिहाई ।।५।।
सोइ गुणज्ञ सोई बड़भागी । जो रघुवीर चरण अनुरागी।।६।।
आयसु माँगि चरण शिरनाई । चले हर्षि सुमिरत रघुराई ।।७।।
पाछे पवनतनय शिर नावा । जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।।८।।
परसा शीश सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी* ।।९।।
बहुप्रकार सीतहिं समुझायहु । कहि बलवीर वेगि तुम आयहु ।।१०।।
हनुमत जन्म सफलकरि जाना । चले हृदयधरि कृपानिधाना ।।११।।

दोहा–चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरिखोह ।
रामकाज लवलीन मन, बिसरा तनुकर छोह ।।१९।।

लागि तृषा अतिशय अकुलाने । मिलइ न जल वनगहन भुलाने ।।१।।

हे भाई! देह धरने का यही फल है, कि सब काम छोड़ राम का भजन करो।।५।। वही गुणज्ञ और बड़भागी है जो रघुवीर के चरण का अनुरागी है।।६।। आज्ञा मांग चरणों में शिर नवाय सब रघुनाथ का स्मरण करते चलो।।७।। पीछे महावीरजी ने चरणों में शिर नवाया काज जानकर प्रभु ने समीप बुलाया।।८।। उनके शिर पर हस्त कमल रखा और पहँचान को हाथ की अंगूठी दी।।९।। और बोले जानकी को अनेक प्रकार से समझाना और हे वीर! बल कहकर फिर तुम शीघ्र आना।।१०।। महावीर ने अपना जन्म सफल करके जाना मन में भगवान् का स्मरण करते चले।।११।। दोहार्थ–सब कोई वन सरिता पर्वत कन्दरा को खोजते चले, राम के काज में मन लग गया शरीर का छोह बिसर गया।।१९।। प्यास लगने से सब व्याकुल हुए जल न मिलने से गहन वन में भूल गये।।१।।

---

* राग केदारा-रजायसु रामको जब पायो ।।टेक।।
गाल मेलि मुद्रिका मुद्रितमन पवनपूत शिर नायो ।।रजा०।।
भालुनाथ नल नील साथ चले बली बालिको जायो ।
फरकि सुअग भये शकुन कहत मानो, मग मुद मंगल छायो ।।रजा०।।
देखि विवर सुधि पाय गीधसों सब अपनो बल गायो ।
सुमिरि राम तकि तरकि तोयनिधि लंक लूकसों आयो ।।रजा०।।
खोजन घर घर जनु दरिद्र मन फिरत लागि धन धायो ।
तुलसी सिय विलोकि पुलको तनु भूरिभाग्य भयो भायो ।।रजा०।।१।।

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । तजन चहत सब विन जल प्राना ।।२।।
चढ़ि गिरिशिखर चहूँ दिशि देखा । भूमिविवर इक कौतुक पेखा ।।३।।
गिरिते उतरि पवनमुत आवा । सबको ले सो ठाँव दिखावा ।।४।।
आगेकर हनुमन्तहि लीन्हा । पैठे विवर विलम्ब न कीन्हा ।।५।।

दोहा–दीख जाय उपवन सुभग, सर विकसे बहुकंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तपपुंज ।।२०।।

दूरहिंते सबने शिर नावा । पूछसि निज वृत्तान्त सुनावा ।।१।।
तब तेहि कहा करहु जलपाना । खाहु सरस सुन्दर फल नाना ।।२।।
मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये । तासुनिकय पुनि सब चलि आये ।।३।।
तेहि सब आपनि कथा सुनाई । मैं अब जाउं जहां रघुराई ।।४।।
तप०–मूंदहु नयन विवरतजिजाहू । पैहहु सीतहि जनि कदराहू ।।५।।
"नयन मूँदि तब देखहिं वीरा । ठाढ़े सकल सिंधुके तीरा ।।६।।
इहाँ विचारहिं कपि मनमाहीं । बीती अवधि काज कछु नाहीं ।।७।।
सब मिलि करहिं परस्पर बाता । विनु सुधि लिये करब का भ्राता ।।८।।"

तब हनुमान् ने विचारा कि, जल के बिना सबके प्राण जाना चाहते हैं।।२।। तब पर्वत के शिखर पर चढ़कर चारों ओर देखा पृथ्वी में, एक विवर और कौतुक देखा।।३।। महावीर गिरि से उतर आये और सबको लेकर वह स्थान दिखाया।।४।। आगे महावीरजी को करके सब कोई विवर में प्रविष्ट हुए देर नहीं की।।५।। दोहार्थ–वहां जाकर अच्छे उपवन देखे सरोवर में अनेक रंगों के कमल खिल रहे थे, एक सुंदर मंदिर में तपस्विनी स्त्री बैठी थी।।२०।। चौ०–सबने उसको दूर से शिर नवाया पूछने से अपना वृत्तान्त सुनाया।।१।। तब उसने कहा जलपान करके सुन्दर फल खाओ।।२।। स्नानकर सबने मीठे फल खाये और उसके समीप सब चले आये।।३।। उसने सब अपनी कथा सुनाकर कहा कि मैं अब रघुनाथजी के समीप जाऊँगी।।४।। तुम भी नेत्र मूंदों इस बिल से बाहर हो जावोगे जानकी मिलेगी व्याकुल मत हो।।५।। तब नेत्र मूंदकर सब वानर वीर क्या देखते हैं कि, सागर के किनारे खड़े हैं।।६।। और यहां पहुँच वे विचारने लगे कि समय बीत गया काम कुछ बना नहीं।।७।। सब मिलकर परस्पर बात कहने लगे बिना समाचार लिये क्या करेंगे।।८।।

अं०-कह अंगद लोचन भरि वारी । दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ।।९।।
यहां न सुधि सीताकर पाई । वहां गये मारहि कपिराई ।।१०।।
पिता बधेपर मारत मोही । राखा राम निहोर न ओही ।।११।।

वानर हम सीता सुधि लीन्हें बीना । नहिं जैहैं युवराज प्रवीना ।।१२।।
"अस कहि लषण सिन्धुतट जाई । बैठे कपि सब दर्भड साई ।।१३।।
जाम्बवन्त अंगद दुख देखी । कही कथा उपदेश विशेखी ।।१४।।"
जा०-तात रामकहँ नर जनिजानहु । निर्गुणब्रह्म अजित अजमानहु ।।१५।।
हम सब सेवक अतिबड़भागी । सन्तत सगुण ब्रह्म अनुरागी ।।१६।।
दोहा–निजइच्छा अवतरेहु प्रभु, सुर द्विज गो महिलागि ।
सगुण उपासक रहहिं सब, मोक्ष सकल सुख त्यागि ।।२१।।
"यह विधिकथा कहत बहुभाँती । गिरिकन्दरा सुना सम्पाती ।।१।।
बाहर होइ देखि सब कीशा । मोहिं अहार दीन्ह जगदीशा ।।२।।"
स०-आजु सबन कहँ भक्षण करऊं । दिन बहु गये अहार विनु मरऊं ।।३।।
कबहुँ न मिलि भरि उदर अहारा । आजुदीन्ह विधि एकहि बारा ।।४।।

अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि, दोनों प्रकार से हमारी मृत्यु हुई।।९।। यहां मीता की सुधि नहीं मिली वहां जाने से सुग्रीव मारेंगे।।१०।। पिता के मरने पर ही मुझे मारता पर राम के निहोरे से रहने दिया है।।११।। सब वानर बोले-हे युवराज! हम सीता की सुधि लिये बिना नहीं जायँगे।।१२।। ऐसा कह सब वानर क्षारसमुद्र के समीप कुश बिछाय बैठे कि, प्राण त्यागन कर देगे।।१३।। जाम्बवंत ने अंगद का दुःख देख अनेक उपदेश की कथा कही।।१४।। हे तात! राम को मनुष्य मत जानो उनको निर्गुण ब्रह्म अजित और अज मानो।।१५।। हम सब सेवक बड़भागी हैं जो निरन्तर सगुणब्रह्म में प्रेम करते हैं।।१६।। दोहार्थ–वह प्रभु देवता भूमि और गौओं के निमित्त अपनी इच्छा से अवतार ले आये हैं, सगुण उपासक मोक्ष का भी सुख त्यागकर इनके भजन में प्रेम करते हैं।।२१।। चौ०–इस प्रकार बहुत कथा कहते थे कि, पर्वतकंदरा में सम्पाती ने सुना।।१।। बाहर होकर सब वानरों को देख कहा कि, मुझे जगदीश्वर ने भोजन दिया है।।२।। आज सबका भक्षण करूं बहुत दिन बीत गये भोजन बिना मरता हूं।।३।। कभी पेटभर भोजन नहीं मिला, आज विधाता ने एक ही बार दिया है।।४।।

"कपि सब उठे गृध्र कहँ देखी । जाम्बवन्त मन शोच विशेखी ।।५।।
कह विचारि अंगद मनमाहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।।६।।"
अं०-रामकाज कारण तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड़भागी ।।७।।
"सुन खग हर्ष शोकयुत बानी । आवानिकट कपिन भयमानी ।।८।।
ताहि देखि सब चले पराई । ठाढ़ कीन्ह तिन्ह शपथ दिवाई ।।९।।
तिन्हैं अभय करि पूछसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ।।१०।।

सुन सम्पाति बंधुकी करणी । रघुपति महिमा बहुविधि वरणी ।।११।।"

सं०दो०–मोहिं लै चलहु सिन्धुतट, देउँ तिलांजलि ताहि ।
वचन सहाय करब मैं, पैहहु खोजहु जाहि ।।२२।।

"अनुज क्रियाकर सागरतीरा । कहिनिजकथा सुनहु कपिवीरा ।।१।।"
हम दोउ बंधु प्रथम तरुणाई । गगन गये रवि निकट उड़ाई ।।२।।
तेज नहिसक सो फिरि आवा । मैं अभिमानी रवि नियरावा ।।३।।
जरे पंख रवि तेज अपारा । परच्यउ भूमि करि घोर चिकारा ।।४।।
मुनि इक नाम चन्द्रमा जोही । लागी दया देखि कर मोही ।।५।।

सब कपि गीध को देखकर उठे जाम्बवन्त के मन में बड़ा शोच हुआ।।५।। तब अंगद ने मन में विचार कर कहा जटायू के समान कोई धन्य नहीं है।।६।। जो रामकाज के निमित्त शरीर त्यागकर वैकुण्ठ को गया बड़ा बड़भागी था।।७।। जब उसने हर्षशोकभरी वाणी सुनी तब समीप आया वानरों ने भय माना।।८।। उसे देख सब वानर भाग चले तब उसने अपनी सौगन्ध दिवाय खड़ा किया।।९।। और उनको अभय करके पूछा तब उन्होंने सम्पाति से जटायु का चरित्र कहा।।१०।। सम्पाती ने भाई की करणी सुनकर रामचन्द्र की बहुत महिमा वर्णन करी।।११।। दोहार्थ–और कहा मुझे सागर के किनारे ले चलो मैं उसे जलांजलि दूं और वचनों से मैं तुम्हारी सहाय करूंगा तुम जानकी को पाओगे।।२२। चौ०–अनुज की क्रिया करके सागर के किनारे अपनी कथा कहने लगा हे मतिधीरो! सुनो।।१।। हम दोनों भाई तरुणाई में सूर्य के समीप आकाश में उड़ गये।।२।। वह तो तेज न सह सकने के कारण फिर आया और मैं अभिमानी सूर्य के समीप हुआ।।३।। तब सूर्य के अपार तेज से मेरे पंख जल गये घोर चिकारकर भूमि पर गिरा।।४।। एक चन्द्रमा नाम मुनि को देखकर दया आई।।५।।

बहु प्रकार तिन्ह ज्ञान सिखावा । देहजनित अभिमान छुड़ावा ।।६।।
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहैं । तासु नारि निशिचरपति हरिहैं ।।७।।
तासु खोज पठवहिं प्रभु दूता । तिन्हैं मिले तुम होब पुनीता ।।८।।
जमिहहिं पंखकरसि जनि चिंता । तिन्हैं दिखाइ देब तैं सीता।।९।।
यह मुनि कहि निज आश्रम गयऊ । तिहिक्षण हृदय ज्ञान कछु भयऊ ।।१०।।
सदा राम कर सुमिरण करऊँ । निशिदिन मगजोवत दिन भरऊँ ।।११।।
मुनिकी गिरा सत्य भइ आजू । सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू ।।१२।।
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावण सहज अशंका ।।१३।।
तहाँ अशोक वाटिका अहई । सीय बैठि तहँ शोचति रहई ।।१४।।

दोहा—मैं देखौं तुम नाहिं न, गृध्रहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयो नतु करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ।।२३।।

जो लांघै शत योजन सागर । करै सो रामकाज मतिआगर ।।१।।
जो कोइ करै रामकर काजू । तेहि सम धन्य आन नहिं आजू ।।२।।
मोहिं विलोकि धरहुमन धीरा । राम कृपा कस भयउ शरीरा ।।३।।

उन्होंने बहुत भांति से ज्ञान सिखाकर देह का अभिमान छोड़ दिया।।६।। और कहा त्रेता में परमात्मा का मनुज अवतार होगा राक्षसपति उनकी स्त्री हरण करेंगे।।७।। उसकी खोज को प्रभु दूत भेजेंगे उनके मिलने से तुम पवित्र हो जाओगे।।८।। तुम्हारे पंख जमि आवेंगे चिन्ता मत करना उनको तुम सीता दिखा देना।।९।। मुनि यह कह अपने आश्रम को गये उस समय हृदय में कुछ ज्ञान हुआ।।१०।। सदा राम का स्मरण करते रात दिन मार्ग देखता हूँ।।११।। मुनि की वाणी आज सत्य हुई मेरे वचन सुन प्रभु का काम करो।।१२।। त्रिकूट पर्वत पर लंका बसती है वहां रावण निडर निवास करता है।।१३।। वहां अशोक वाटिका है जहां जानकी बैठी शोच करती है।।१४।। दोहार्थ—मैं देखता हूं तुम नहीं देखते गीध की दृष्टि बड़ी होती है मैं बूढ़ा हो गया हूं नहीं तो तुम्हारी और भी सहायता करता।।२३।। चौ०—जो सौ योजन सागर लांघ जाय वह राम का काज शीघ्र कर सकता है।।१।। जो यह राम का काज करै उसके समान कोई धन्य नहीं है।।२।। मुझे देखकर धीर धरो कि, राम की कृपा से कैसा शरीर हो गया पंख जमि आये।।३।।

पापिउ जाकर सुमिरण करहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ।।४।।
तासु दूत तुम तज कदराई । राम हृदय धरि करहु उपाई ।।५।।
"अस कहि उमा गृध्र जब गयऊ । सबके मन अति विस्मय भयऊ ।।६।।
निजनिज बल सब काहू भाखा । पार जानकर संशय राखा ।।७।।"
जा०-जरठ भयउँ अब कहइ ऋच्छेशा । नहिं बल रहा प्रथम तनुलेशा ।।८।।

दोहा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सोतनु वरणि न जाय ।
उभय घरी महँ दीन्ह मैं, सप्त प्रदक्षिण धाय ।।२४।।

अंगद-अंगद कहा जाउँ मैं पारा । जिस संशय कछु फिरतीबारा ।।१।।
जा०-जाम्बवन्त कह तुम सब लायक । किमि पठवौ सबही कर नायक ।।२।।
कहा ऋक्षपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रह्यो बलवाना ।।३।।
पवनतनय बल पवन समाना । बुधि विवेक विज्ञाननिधाना ।।४।।
कौन सो काज कठिन जगमाहीं । जो नहिं तात होइ तुमपाहीं ।।५।।
रामकाज लगि तव अवतारा । सुनि कपि भयउ पर्वताकारा ।।६।।

"कनकवर्ण तनु तेज विराजा । मानहु अपर गिरिनकर राजा ।।७।।

पापी भी जिसका स्मरण कर अति अगाध भवसागर तर जाते हैं।।४।। उसके दूत होकर तुम कायरता छोड़ राम को हृदय में धर उपाय करो।।५।। हे पार्वति! यह कहकर जब गृध्र चला गया उड़ गया तब सब के मन में विस्मय हुआ।।६।। अपना अपना बल सबने कहा पार जाने का संशय ही रहा।।७।। जाम्बवन्त ने कहा मैं अब बूढ़ा हो गया हूं पहिले से लेशमात्र भी बल नहीं रहा।।८।। दोहार्थ–जब बलि को बांधते में प्रभु ने शरीर बढ़ाया था सो वर्णा नहीं जाता तब दो घड़ी में मैंने सात प्रदक्षिणा दी थी।।२४।। चौ०-अंगद ने कहा पार तो मैं जा सकता हूं पर फिरती बार संदेह है।।१।। जाम्बवन्त ने कहा तुम सब लायक हो पर सबके नायक हो तुमको कैसे भेजूं।।२।। फिर ऋक्षराज बोले हे बलवान् हनुमान् तुम क्यों चुप साध रहे हो।।३।। तुम पवनपुत्र हो तुम्हारा बल पवन के समान है बुद्धि विवेक और विज्ञान के निधान हो।।४।। ऐसा जगत् में कौनसा कठिन काम है जो तुमसे न हो सके।।५।। राम के काज निमित्त ही तुम्हारा अवतार है महावीर यह वचन सुन पर्वताकार हो गये।।६।। सुवर्णके सा वर्ण शरीर में तेज विराज रहा है मानो दूसरे पर्वतों के राजा है।।७।।

हनू०-सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं लाँघौं जलनिधि खारा ।।८।।
सहित सहाय रावणहिं मारी । आनौं यहां त्रिकूट उपारी ।।९।।
जाम्बवन्त मैं पूछौं तोहीं । उचित सिखावन दीजै मोहीं ।।१०।।
जा०-इतना करहु तात तुम जाई । सीतहि देखि कहौ सुधि आई ।।११।।
तब निज भुजबल राजिव नयना । कौतुक लागि संग कपि सयना ।।१२।।

छन्द–कपिसैन सङ्ग संहारि निशिचर राम सीतहिं आनिहैं ।
त्रयलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ।
"जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावहीं ।
"रघुवीरपदपाथोजमधुकर दास तुलसी गावहीं ।।१।।"

दोहा–भवभेषज रघुनाथयश, सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ।।२५।।

इति चतुर्थ दर्शन
इति किष्किन्धाकाण्ड ४

बारंबार सिंहनाद कर बोले लीला से ही खारी समुद्र को उलांघ जाऊंगा।।८।। सेनासहित रावण को मारकर यहां त्रिकूट पर्वत उखाड़ लाऊँगा।।९।। हे जाम्बवन्त! मैं तुमसे पूछता हूं मुझे उचित शिक्षा दो।।१०।। जाम्बवंत बोले हे तात! तुम इतना जाकर करो कि सीता को देखकर सुधि कहो।।११।। तब भगवान् अपनी भुजाओं के बल से और वानरी सेना को साथ लिये।।१२।। छन्दार्थ–राक्षसों का संहारकर जानकी को ले आवेंगे और नारद आदि त्रिलोकी का पवित्र करनेवाला यश बखान करैंगे, जो इसको सुनते गाते समझते हैं वे परम पद पाते हैं, रघुनाथ के चरणकमल के मधुकर तुलसीदास यह चरित्र गाते है।।१।। दोहार्थ–संसार रोग को औषधिरूप जो नर नारी यह चरित्र सुनेंगे उनके सब मनोरथ शिवजी सिद्ध करेंगे।।२५।।

इति चतुर्थ दर्शन (इति किष्किन्धाकाण्ड ४)

रामलीला रामायण

सुन्दरकाण्ड ५

अथ प्रथम दर्शन

महावीरजी का समुद्र को लांघना

(स्थान सागर का तट)

"जाम्बवन्तके* वचन सुहाये । सुनि हनुमान हृदय अतिभाये ।।१।।"
म०-तब लगि मोहिं परखियहुभाई । सहिदुख कन्दमूल फलखाई ।।२।।
जबलगि आवौं सीतहि देखी । होइ काज मन हर्ष विशेखी ।।३।।
"सिन्धुतीर इक सुन्दर भूधर** । कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर ।।४।।

(स्थान सागर का तट)

टीका-जांबवंत के सुन्दर वचन महावीरजी को भले लगे और बोले-हे भाई! तब तक कन्दमूल फल खाकर मेरी बाट देखते रहना।।२।। जब तक मैं सीता को देखकर आऊँ।।३।। यह कह सिन्धु के किनारे एक सुन्दर नामका पर्वत था उस पर चढ़ गये और छलांग मारी ।।४।।

---

*क०-वचन निवेरे ऋक्षपतिके घनेरे बाढ़े वीर रंगके उमंग अंग तेरे हैं ।
नयननिको फेरे तरेरे दिशि दक्षिणपै भुजनको हेरे त्यों ही पूंछको मुरेरे हैं ।
मानि लंक नेरे ह्वै निशंक महावीर टेरे मारि करौं ढेरे भेटे लंकापति केरे हैं ।
रामकेरे सारँगते चलै प्रेरे सायक ज्यों जैहौं लंक सुनौगे सबेरे गुण मेरे हैं।।१।।

**क०-भुजनि बढ़ाय लामी लूमको उठाइ करि कानन चपाइ ग्रीवा नैसुक नवाइकै ।
पायनको रोकि महि कोपि त्योही रावणपै कूदिवेको वारिनिधि चोपि चित्त चाइकै ।
कटिको सकेलि मुख मेलि मुद्रिकाको कीश झेलि उर आगू कहि रामैं चित्तलाइकै ।।
कीन्ह्यो अट्टहास रघुराजै मोदराशि दीन्ह्यो शैल लीन्ह्यो ढांपि बजरंग रंगछाइकै ।।१।।

"जात पवनसुत देवन देखा* । जाना चह बल बुद्धि विशेखा ।।५।।
सुरसा नाम अहिनकी माता । पठई देव कही तिन बाता ।।६।।"
सु०-आजु सुरन्ह मोहिं दीन अहारा । सुनि हँसि बोला पवनकुमारा ।।७।।
म०-रामकाज करि फिरि मैं आवौं । सीताकी सुधि प्रभुहि सुनावों ।।८।।
तब तव वदन पैठिहौं आई । सत्य कहौं मोहिं जान दे माई ।।९।।
कवनिहुँ यतन देहि नहिं जाना । ग्रससि न मोहिं कहा हनुमाना ।।१०।।
"योजनभरि तेइँ वदन पसारा । कपितनुकीन दुगुण विस्तारा ।।११।।
सोरह योजन मुख तेइँ ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ।।१२।।
शत योजन तेहि आनन कीन्हा । अतिलघुरूप पवनसुत लीन्हा ।।१३।।
वदन पैठि पुनि बाहर आवा । मांगी विदा ताहि शिरनावा ।।१४।।"
सु०-मोहिं सुरन जेहि लागि पठावा । बुधिबल मर्म तोर मैं पावा ।।१५।।

देवताओं ने महावीर को जाता देख बल बुद्धि जानने की इच्छा की।।५।। सुरसा नाम सर्पों की माता को देवताओं ने यह बात कहकर भेजा उसने आकर कहा।।६।। आज देवताओं ने तुमको मुझे आहार में दिया है यह सुनकर हँसते हुए महावीरजी बोले।।७।। मैं रघुनाथजी का काम करके लौट आऊँ और प्रभु को सीता का समाचार सुनाऊँ।।८।। तब तेरे मुख में आकर प्रवेश करूँगा मैं सत्य कहता हूं माई! मुझे जाने दे।।९।। जब किसी यत्न से जाने न दिया तब महावीरजी बोले तो खा क्यों नहीं लेती।।१०।। तब उसने योजन भर का मुख फैलाया, महावीरजी ने अपने शरीर का विस्तार दूना किया।।११।। जब उसने सोलह योजन का मुख किया तब यह बत्तीस के हुए।।१२।। उसने सौ योजन का मुख किया तो इन्होंने बहुत छोटा रूप धारण किया।।१३।। और मुख में प्रवेशकर फिर बाहर आये शिर नवाय विदा माँगी।।१४।। सुरसा बोली मुझे देवताओं ने जिस निमित्त भेजा था तुम्हारी बल बुद्धि का मैंने मर्म पाया।।१५।।

दोहा–रामकाज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान ।
आशिषदै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान ।।१।।

"निशिचर एक सिन्धुमहँ रहई । करिमाया नभके खग गहई ।।१।।

पक०–चल्यो लंक नगरको मारुत डगर ह्वैकै मारुतको नंद मारुतैकी गति धारिकै ।
दूजो मार्तण्ड सो आकाशमें प्रकाशमान मार्तण्ड डरि भाग्यो ग्रसिवो विचारिकै ।
फूलन झरत फूले फूले तरु संग उड़े चले पहुँचावे मनो बन्धु शोक टारिकै ।
रघुराज मोद छाये दुन्दुभी बजाय देव जैसे कहि गाये रामदूतको निहारिकै ।।१।।

सोइ छल हनूमानसे कीन्हा । तासुकपट कपि तुरतहि चीन्हा ।।२।।
ताहि मारि मारुतसुत वीरा । वारिधिपार गयउ मतिधीरा ।।३।।"
मशक समान रूप कपि धरी । लंका चले सुमिरि नरहरी ।।४।।
नाम लंकिनी एक निशिचरी । सो कह चलेसि मोहिं निंदरी ।।५।।
लं०-जानसि नाहिं मर्म शठमोरा । मोर अहार लंककर चोरा ।।६।।
"मुष्टिक एक ताहि कपि हनी । रुधिर वमत धरनी ठनमनी ।।७।।
पुनि संभारि उठी सो लंका । जोरिपाणि कर विनय सशंका ।।८।।"
लं०-जब रावणहि ब्रह्मवर दीन्हा । चलत विरंचि कहा मोहिं चीन्हा ।।९।।
विकलहोसि जब कपिके मारे । तब जानसि निशिचर संहारे ।।१०।।
तात मोर अति पुण्य बहूता । देखेउँ नयन रामकर दूता ।।११।।
प्रविशि नगर कीजै सब काजा । हृदयराखि कोशलपुर राजा ।।१२।।

दोहार्थ–तुम बल बुद्धि के निधान राम का काज करोगे सुरसा आशीर्वाद देकर गई महावीर प्रसन्न हो चले।।१।। एक राक्षसी समुद्र में रहती थी माया से आकाश के पक्षी की छाया पकड़ लेती थी।।१।। सोई छल महावीरजी से किया उसका कपट इन्होंने तुरत जाना।।२।। मारुतसुत वीर मति के धीर उसे मारकर सागर के पार गये।।३।। और छोटासा रूप धारणकर नरहरि को स्मरण कर लंका में चले।।४।। एक लंकिनी नाम निशाचरी बोली–मेरा निरादर कर कहाँ जाते हो।।५।। हे शठ! मेरा भेद नहीं जानता कि, मेरा अहार लंका का चोर है।।६।। तब महावीरजी ने उसके एक मुष्टिक मारा वह रुधिर वमन करती भूमि पर गिरी।।७।। फिर वह लंकिनी सँभलकर उठी और हाथ जोड शंका से विनय करने लगी।।८।। जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया तब चलते समय मुझे पहँचान कर कहा।।९।। जब कपि के मारे से व्याकुल हो जाय तब राक्षस मरे जानना।।१०।। हे तात! मेरा बड़ा पुण्य है जो नेत्रों से राम का दूत देखा।।११।। नगर में प्रवेश कर हिये में राम को धारण कर सब काज करो।।१२।।

मंदिर मंदिर प्रतिकर शोधा । देखे जहँ तहँ अगणित योधा ।।१३।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा ।।१४।।
विप्ररूपधरि वचन सुनावा । सुनत विभीषण उठि तहँ आवा ।।१५।।
वि०-करि प्रणाम पूछी कुशलाई । विप्र कहहु निज कथा बुझाई ।।१६।।
की तुम हरिदासनमहँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ।।१७।।
की तुम राम दीन अनुरागी । आयहु मोहिं करन बड़भागी ।।१८।।

दोहा–तव हनुमंत कही सब, रामकथा निजनाम ।
सुनत युगल तनु पुलक अति, मगन सुमिरि गुणग्राम ।।२।।"

हनु०–तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखा चहौं जानकी माता ।।१।।
"युक्ति विभीषण सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ।।२।।
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवा । वन अशोक सीता रह जहँवा ।।३।।"

दोहा–निजपद नयन दिये मन, रामचरण लवलीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ।।३।।

इति प्रथम दर्शन

तब महावीरजी चले और प्रत्येक मंदिर ढूंढ़े जहां जहां अनेक योद्धादि देखे रावण को सोता देखा पर कहीं जानकी न देखी।।१३।। फिर एक सुंदर मंदिर देखा जहां एक हरिमन्दिर भी बना था।।१४।। वहां महावीरजी ने ब्राह्मण का रूप धर वचन सुनाया सुनकर विभीषण उठ आये।।१५।। प्रणाम कर कुशल पूछी हे विप्र! अपनी कथा समझाकर कहो।।१६।। क्या तुम कोई हरिभक्तों में हो? तुमको देख मेरे हृदय में प्रीति अधिक होती है।।१७।। क्या तुम दीनों पर प्रेम करनेवाले राम हो? मुझे बड़ भागी करने आये हो।।१८।। दोहार्थ–तब महावीरजी ने सब राम की कथा और अपना नाम कहा सुनकर दोनों के शरीर पुलकित हुए हरि के गुण समूह स्मरण कर मगन हुए।।२।। तब महावीरजी बोले हे भ्राता! मैं माता जानकी को देखने की इच्छा करता हूं।।१।। तब विभीषण ने सब युक्ति बताई महावीर बिदा हो चले।।२।। वही रूप धारणकर वहां गये जहां अशोक वाटिका में सीता थीं।।३।। दोहार्थ–वह नेत्रों को चरणों में लगाये राम के चरणों में मन को लीन किये बैठी थीं ऐसी दीन अवस्था में जानकी को देख महावीरजी बड़े दुःखी हुए।।३।।

इति प्रथम दशर्न

अथ द्वितीय दर्शन

(अशोकवाटिका में जानकी का दर्शन)

"तरुपल्लव महँ रहा लुकाई । करै विचार करौं का भाई ।।१।।
तेहि अवसर रावण तहँ आवा । संग नारि बहु किये बनावा ।।२।।"
रा०-कह रावण सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ।।३।।
तव अनुचरी करौं प्रण मोरा । एक बार विलोकु मम ओरा ।।४।।
"तृणधरि ओट कहति वैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ।।५।।"
सी०-सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा । कबहुँ कि नलिनी करहिं विकाशा ।।६।।

शठ सूने हरि आनेसि मोहीं । अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं ।।७।।
रावण-सीता तैं ममकृत अपमाना । काटौं तव शिर कठिन कृपाना ।।८।।
नाहिंत सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होत नतु जीवनहानी ।।९।।
सी०-श्याम सरोज दाम सम सुन्दर । प्रभुभुज करिकर समदशकंधर ।।१०।।
सो भुजकंठिकि तव असिघोरा । सुनशठ अस प्रमाण प्रणमोरा।।११।।
"सुनत वचन पुनि मारन धावा । मयतनया कहिनीति बुझावा ।।१२।।"

चौ०–वृक्ष के पत्तों में छिप रहे विचारने लगे क्या करूं।।१।। उसी समय रावण बनाव किये संग में अनेक स्त्री लिये आया।।२।। रावण बोला-हे सुमुखि सयानी! यह मन्दोदरी आदि जितनी रानी हैं।।३।। सब तेरी अनुचरी कर दूंगा प्रण यह है कि, एक बार मेरी ओर देख लो।।४।। तिनके की ओटकर राम का स्मरण कर जानकी बोलीं।।५।। हे रावण! क्या पटबीजने की प्रकाश से कमलिनी खिलती है।।६।। हे मूर्ख–तू मुझे सूने में हरलाया है। हे अधम निर्लज्ज! तुझे लाज नहीं आती।।७।। रावण बोला-सीता तैंने मेरा अपमान किया है तेरा शिर कठिन तलवार से काट लूंगा।।८।। नहीं तो शीघ्र मेरी वाणी मान हे सुमुखि नहीं तो जीवन की हानि होती है।।९।। जानकी बोली-हे रावण! श्यामकमल के दाम के समान सुन्दर प्रभु की भुजा हाथी की सूंड के समान हैं।।१०।। या तो कण्ठ में वह भुजा पड़ैंगी या यह तेरी तलवार पड़ेगी हे शठ! मेरे प्रण का यह प्रमाण है।।११।। यह वचन सुन रावण मारने दौड़ा मन्दोदरी ने नीति सुनाय समझाया कि स्त्री मारने योग्य नहीं है।।१२।।

रा०-कहसि सकल निशिचरी बुलाई । सीतहि त्रास दिखावहु जाई ।।
मासदिवस महँ कहा न माना । तौ मैं मारब कठिन कृपाना ।।१४।।

दोहा–"भवन गयउ दशकंध तब, यहां निशाचरिवृन्द ।
सीतहिं त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहु मन्द ।।४।।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका । रामचरणरत निपुण विवेका ।।१।।"
सबहि बुलाय सुनायसि सपना । सीतहिं सेइ करो हित अपना ।।
स्वप्ने वानर लंका जारी । यातुधान सेना सब मारी ।।३।।
खर आरूढ नगन दशशीशा । मुण्डित शिर खण्डित भुज बीसा ।।४।।
इहिविधि सो दक्षिण दिशि जाई । लंका मनहु विभीषण पाई ।।५।।
नगर फिरी रघुवीर दुहाई । तब प्रभु सीतहि बोलि पठाई ।।६।।
यह स्वप्ना मैं कहीं विचारी । होइहि सत्य गये दिन चारी ।।७।।
"तासु वचन सुनिकै सब डरीं । जनकसुताके चरणन परीं ।।८।।"

दोहा–जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीताके मन शोच ।
मास दिवस बीते मोहिं, मारिहि निशिचर पोच ।।५।।

सब राक्षिसियों को बुलाकर कहा कि, जाकर सीता को त्रास दिखावो।।१३।। जो मास भर में मेरा कहा न माना तो मैं कठिन कृपाण से मारूंगा।।१४।। दोहार्थ–यह कह रावण घर गया यहाँ राक्षसी अनेक मन्द रूप धारण कर सीताजी को त्रास दिखाने लगीं।।४।। एक त्रिजटा नाम राक्षसी राम के चरणों में प्रीति करनेवाली विवेकयुक्त थी।।१।। उसने सबको बुलाय एक स्वप्न सुनाकर कहा कि सेवा करके अपना हित करो।।२।। स्वप्न में वानर ने लंका जलाई है और राक्षसों की सब सेना मार दी है।।३।। रावण गदहे पर चढ़ा नंगा शरीर शिरमुंडा और बीसौं भुजा से खण्डित है।।४।। इस प्रकार से दक्षिण दिशा में गया और लंका मानो विभीषण ने पाई है।।५।। नगर में रामचन्द्र की दुहाई फिरी तब प्रभु ने जानकी को बुला भेजा।।६।। मैं विचारकर कहती हूं कि थोड़े दिनों में ही यह स्वप्न सत्य होगा।।७।। उसके वचन सुनकर सब डरीं और जानकी के चरणों में पड़ीं।।८।। दोहार्थ–और सब मिलकर जहां तहां चली गईं जानकी के मन में शोच हुआ कि, महीने भर पीछे पोचमति निशाचर मुझे मारैगा।।५।।

सी०-त्रिजटासन बोली करजोरी । मातुविपति संगिनि तैं मोरी ।।१।।
तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह विरह अब सहा न जाई ।।२।।
आनि काठ रचि चिता बनाई । मातु अनल तुम देहु लगाई ।।३।।
सुनत वचन पदगहि समुझावा । प्रभुप्रताप बल सुयश सुनावा ।।४।।
निशिन अनल मिल राजकुमारी । असकहिसो निजभवन सिधारी ।।५।।
सुनहु विनय मम विटप अशोका । सत्यनाम करु हरु मम शोका ।।६।।
नूतन किसलय अनल समाना । देहु अगिनि मम करहु निदाना ।।७।।
सोरठा–"कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ।
जनु अशोक अंगार, दीन हर्ष उठि कर गहेउ ।।१।।
जब देखी मुद्रिका* मनोहर । रामनाम अंकित अति सुन्दर ।।१।।"
सी०-जीति को सकै अजय रघुराइ । मायाते असि रची न जाई ।।२।।

त्रिजटा से हाथ जोड़कर बोली हे माता! तुम विपत्ति में मेरी संगति करनेवाली हो।।१।। मैं देह त्यागन करूंगी शीघ्र उपाय करो, अब महाविरह सहा नहीं जाता।।२।। तुम काठ लाकर चिता

---

*घनाक्षरी-दृगन छुवावैं गहिं शीशपै चढ़ावै ताहि हृदय लगावैं बारम्बार दुलरावैं हैं ।
फेगि फेरि हेरैं हेरि हेरिकै कपोल भरैं भेरि कण्ठ फेरि हेरि हुलसावैं हैं ।।
पीयगति बूरुझैं बूझि बूझिकै अझैं कर जोरि कोरि कोरि विनय सुनावैं हैं ।
रसिकविहारी पति मुद्रिका निहारी सीय छिन सुधि लावैं छिन प्रेममे भुलावैं हैं।।१।।

बनाओ और पीछे उसमें अग्नि लगा दो।।३।। यह वचन सुन चरण पकड़कर समझाया प्रभु का प्रताप बल और सुयश सुनाया।।४।। राजकुमारी! रात में आग नहीं मिलैगी यह कह वह अपने स्थान को गई।।५।। सीता बोली–हे अशोकवृक्ष! मेरी विनय सुनो और अपना सत्य नामकर शोक हरो।।६।। नवीन कोंपल अग्नि के समान हैं अग्नि देकर मेरा अन्त करो।।७।। सोरठार्थ–उस समय हृदय में विचारकर महावीर ने मुद्रिका डाल दी मानो अशोक ने अंगार दिया प्रसन्न होकर उठाया।।१। जब वह मनोहर अंगूठी देखी कि, उस पर सुंदर राम का नाम अंकित है।।१।। तब व्याकुल हो बोलीं अजय रघुराज को कौन जीत सकता है और माया से ऐसी नहीं रची जायगी।।२।।

"सीता मन विचारकर नाना । मधुरवचन बोले हनुमाना ।।३।।
रामचन्द्र गुण वर्णन लागे । सुनतहिं सीताकर दुखभागे ।।४।।
सी०-श्रवणामृत जो कथा सुनाई । काहे न प्रगट होत सो भाई ।।५।।
"तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ ।।६।।
हनु०-रामदूत* मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुणा निधानकी ।।७।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्ह राम तुमकहँ सहिदानी ।।८।।
सी०-नर वानरहि संग कहु कैसे । कही कथा संगति भइ जैसे ।।९।।
दोहा–"कपिके वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास ।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिन्धु कर दास ।।६।।"
अब कह कुशल जाऊँ बलिहारी । अनुजसहित सुख भवन खरारी ।।

सीता अपने मन में अनेक विचार करने लगीं तब महावीरजी मधुर वचन बोले।।३।। रामचंद्र के गुण गाने लगे सुनते ही सीता के दुःख भागे और बोलीं।।४।। कानों के अमृतरूप जिसके कथा

---

* राग केदरा–हौं रघुवंशमणिको दूत ।।टेकं ।।
मातु मानु प्रतीत जानकि जानि मारुतपूत ।।हौं र०।।
मैं सुनी बातैं अनैसी जे कहीं निशिचर नीच ।
क्यो न मारैं गाल बैठो काल डाढ़नि बीच ।।हौं र०।।
निदरि अरि रघुवंशमणि लै जाउं जो हठि आज ।।
डरौं आयसु भङ्गते अरु विगरि है सुर काज ।।हौं र०।।
बाधि वारिधि साधि रिपु दिन चारिमें दोउ वीर ।
मिलहिंगे कपिभालुदल सँग जतनि उर धर धीर ।।हौं र०।।
चित्रकूट कथा कुशल कहि शीश नायो कीश ।।
सुहृद सेवकनाथको लखि दई अम्ब अशीश ।।हौं र०।।

सुनाई हे भाई! वह प्रगट क्यों नहीं होता॥५। तब महावीरजी समीप चले गये उस समय विस्मित हो जानकी मुख फेरकर बैठ गई॥६॥ तब महावीरजी बोले–हे माता! जानकी! मैं राम का दूत हूँ करुणानिधान राम की सत्य शपथ है॥७॥ हे माता! यह मुद्रिका मैं लाया हू, राम ने तुमको पहँचान भेजी है॥८॥ जानकी बोली–नरवानर की संगति कैसे हुई तब सब कथा कही जैसे संगति हुई॥९॥ दोहार्थ–कपि के वचन प्रेम से सुनकर मन में विश्वास हुआ और जाना कि यह मन वचन कर्म से कृपासागर राम का दास है॥६॥ अब कुशल कहो बलिहारी जाऊ भ्रातासहित सुख के सागर प्रसन्न है॥१॥

कोमल चित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥२॥
सहज वानि सेवक सुखदायक । कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥३॥
कबहुँ नयन मम शीतल ताता । होइहि निरखि श्याम मृदुगाता ॥४॥
ह०-मातु कुशल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखित सो कृपा निकेता ॥
जननी जनि मानहु मन ऊना । तुमसे प्रेम रामके दूना ॥६॥
राम* बियोग कहा सुनु सीता । मोकहँ सकल भयउ विपरीता ॥७॥
जिहि तरु रहौं करत सो पीरा । उरग श्वास सम त्रिविध समीरा ॥८॥

वह कृपालु रघुराई तो कोमलचित्त हैं हे कपि! उन्होंने निठुरता क्यों धारण की हैं॥२॥ उनकी तो सहज से यह बान है कि वह सेवक के सुख देनेवाले हैं कभी रामचंद्र मेरी सुरत करते है॥३॥ हे तात! वह सांवले मृदुगात को देखकर कभी मेरे नेत्र शीतल होंगे॥४॥ महावीरजी बोले-हे माता!

भये शीतल श्रवण तन मन सुने वचन पीयूष ।
दास तुलसी रही नयननि दरश हीकी भूख ॥हौं र०॥

* क०घना०-जबते वियोग भयो रावरे तबैते राम काहू तिय ओरहू न हेरैं नेह भरिकै ।
नव फल फूल नारि देखे जल नैन ढारि श्वास लै अधीर होत हाय प्यारी करिकै ॥
पौढ़ैं ना सुबैठैं भूमि साथरी अजिन शिला रसिकविहारी अर्ध आसन उतारिकै ।
खान पान होवे कछु आप तिहि लेत पाछे प्रेमयुत प्रथम तिहारो भाग धरिकै ॥१॥
मंद मधु कन्द मूल अरु फल फूल तजे रैन बन तन्दुलसो अशन करात हैं ।
वृश्चिक न दंश अहि मशक निवारैं अंग सन्तत विदेह ढग विपुल रहात हैं ॥
सब निशि जागैं बारबार अनुरागैं राम ध्यान तुव पावैं छिन छिन अकुलात हैं।
रसिकविहारी कबौ पलक झपात तबै झझकि उठता हाय मीते विलापात हैं॥२॥
गावैं रावरे ही गुण ध्यायैं रावरे ही रूप बन्धुमे सुरावरही चरचा चलावैं हैं।
रसिकविहारी रघुवीर ढिग आवै कोऊ नामों हठि रावरी ही चरचा चलावे हैं।
करैं कछु काम लेत रावरो प्रथम नाम रावरी कथामें वसुयाम विलमावे हैं।
परम विचित्रचित्र रावरी सुपत्रनपै लिखि लिखि बराबर हृदय लगावे हैं॥३॥

प्रभु भाई सहित कुशल हैं वह कृपासागर तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं।।५।। हे माता! मन में दुःख मत मानो राम को तुमसे दूना प्रेम है।।६।। हे सीता! राम से कहा कि तुम्हारे वियोग में मुझे सब विपरीत हो गये।।७।। जिस वृक्ष के नीचे रहता हूं सो भी पीर करता हूं तीन प्रकार की पवन सर्प के श्वास के समान है।।८।।

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ।।९।।
सो मन सदा रहत तोहिं पाहीं । जानु प्रीति रस इतने माहीं ।।१०।।
दोहा–निशिचर निकर पतंग सम, रघुपति बाण कृशानु ।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निशाचर जानु ।।७।।
जो रघुवीर होत सुधि पाई । करते नहिं बिलम्ब रघुराई ।।१।।
अबहिं मातु मैं जाऊँ लिवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई ।।२।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन सहित ऐहैं रघुवीरा ।।३।।
निशिचर मारि तुम्हैं लै जैहैं । तिहुँपुर नारदादि यश गैहैं ।।४।।
सी०-है सब कपिसुत तुम्हैं समाना । यातुधान भट अति बलवाना ।।५।।
मोरे हृदय परम संदेहा । सुन कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ।।६।।
कनकभूधराकार शरीरा । समर भयंकर अतिरणधीरा ।।७।।
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनिलघुरूप पवनसुतलयऊ ।।८।।
सी०-अजर अमर गुण निधि सुत होहू । करहिं सदा रघुनायक छोहू ।।९।।
महा०-अबकृतकृत्य भयउँ मैं माता । आशिष तव अमोघ विख्याता ।।१०।।

हे प्रिया मेरे और तेरे प्रेम का तत्त्व एक मेरा मन जानता है।।९।। सो मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है इतने में ही प्रीति का रस जानो।।१०।। दोहार्थ–राक्षस समूह पतंगे समान हैं रामचन्द्र के बाण अग्नि के समान है हे माता! हृदय में धीरज धारण करो राक्षसों को भस्मीभूति जानो।।७।। चौ०-जो रामचन्द्र ने सुधि पाई होती तो वह आने में देर नहीं करते।।१।। हे माता! मैं अभी तुमको लिवा ले जाता पर रामदुहाई उनकी आज्ञा नहीं है।।२।। हे माता! तुम कुछ दिन तक धीरज धारण करो कपियोंसहित श्रीरघुनाथजी आवेंगे।।३।। राक्षसों को मारकर तुमको ले जायँगे तीनों पुर में नारद आदि यश गावेंगे।।४।। सीता बोली हे पुत्र! क्या सब वानर तुम्हारे समान हैं राक्षस तो बड़े बली हैं।।५।। मेरे हृदय में परम सन्देह है सुनकर महावीरजी ने अपनी देह प्रगट की।।६।। सुवर्ण के पर्वत के समान शरीर समर के बड़े भयंकर रणधीर हुए।।७।। तब सीता के मन में भरोसा हुआ महावीरजी ने फिर छोटा सा रूप धारण किया।।८।। सीता बोली-हे पुत्र! तुम अजर अमर गुणनिधान हो सदा रघुनाथजी तुम पर कृपा करें।।९।। महावीर बोले-हे माता! अब मैं कृत्यकृत्य हो गया तुम्हारी अशीष अमोघ है यह जगत् में विख्यात है।।१०।।

सुनहु मातु मोहिं अतिशय भूखा । लागि देखि सुन्दर फलरूखा ।।११।।
सी०-सुन सुत करैं विपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर झारी ।।१२।।
म०-तिनकर भय माता मोहिं नाहीं । जो तुम सुख मानहु मनमाहीं ।।१३।।

दोहा–देखि बुद्धि बल निपुण कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपतिचरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ।।८।।

"चलेउ नाइ शिर पैठेउ बागा । फल खाये तरु तोरन लागा ।।१।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारे कछु जाय पुकारे ।।२।।"
दूत-नाथ एक आवा कपि भारी । तेइँ अशोकवाटिका उजारी ।।३।।
खायसि फल अरु विटप उपारे । रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे ।।४।।
"सुनि रावण पठये भट नाना । तिनहिं देखि गरजा हनुमाना ।।५।।
सब रजनीचर कपि संहारे । गये पुकारत कछु अधमारे ।।६।।
सुनि पठवा तेहि अक्षकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ।।७।।
आवत देखि विटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ।।८।।
सुनि सुत वध लंकेश रिसाना । पठवा मेघनाद बलवाना ।।९।।"
रा०-मारेसिजनिसुतबाँधे सिताही । देखौं कीश कहांकर आही ।।१०।।

हे माता! यह सुन्दर फल वृक्षों में देखकर मुझे भूख बहुत लगी है।।११।। सीता बोली हे पुत्र! बड़े बड़े योद्धा इस स्थान की रखवाली करते हैं।।१२।। महावीर बोले-हे माता! जो तुम मन में सुख मानो तो मुझे उनका भय नहीं है।।१३।। दोहार्थ–बुद्धिबल में निपुण देखकर जानकी बोलीं जाओ और राम के चरण हृदय में धरकर मीठे फल खाओ।।८।। शिर नवाय बाग में प्रवेश किया, फल खाये वृक्ष तोड़ने लगे।।१।। वहाँ जो रखवारी योद्धा थे कुछ मारे कुछ जाकर पुकारे ।।२।। हे नाथ! एक बड़ा वानर आया है उसने अशोक वाटिका उजाड़ दी है।।३।। फल खाये और वृक्ष तोड़ दिये, रक्षकों को मर्दन कर भूमि में डाल दिये।।४।। सुनकर रावण ने अनेक योद्धा भेजे उनको देख महावीरजी गर्जे।।५।। कपि ने सब राक्षस संहार कर दिये कुछ अधमरे पुकारने गये।।६।। सुनकर अक्षकुमार को रावण ने भेजा वह बड़ी सेना ले चला।।७।। उसको आता देख महावीर वृक्ष लेकर दौड़े और अक्षकुमार को मार बड़ी गर्जना करी।।८।। तब रावण पुत्र का वध सुनकर रिसाया और बलवान् मेघनाद को भेजा और कहा।।९।। हे पुत्र! मारना नहीं बांधकर लाना देखूं कि, कहां का बन्दर है।।१०।।

"चला इंद्रजित अतुलित योधा । बन्धु वधन सुनि उपजा क्रोधा ।।११।।
ब्रह्मबाण तेहि कपि कइँ मारा । परतिहुबार कटक संहारा ।।१२।।

तेहि देखा कपि मूर्छित भयऊ । नागफाँस बाँधेसि लै गयऊ ।।१३।।"
रावण-कह लंकेश कवनतैं कीशा । केहिके बल घालेसि वनखीशा ।।१४।।
कीधौं श्रवण सुनेसि नहिं मोहीं । देखौं अति अशंक शठ तोहीं ।।१५।।
मारेसि निशिचर केहि अपराधा । कहु शठतोहिं न प्राण की बाधा ।।१६।।
म०-सुन रावण ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल विरचति माया ।।१७।।
जाके बल विरंचि हरि ईशा । पालक हरत सृजत दशशीशा ।।१८।।
जा बल शीश धरे सहसानन । अंडकोश समेत गिरि कानन ।।१९।।
धरै जो विविध देह सुरत्राता । तुमसे शठन सिखावन दाता ।।२०।।
हरकोदण्ड कठिन जेइँ भंजा । तोहिं समेत नृपदल मदगंजा ।।२१।।
खरदूषण विराध अरु बाली । वधे सकल अतुलित बलशाली ।।२२।।

दोहा–जाके बल लवलेशते, जितेउ चराचर झारि ।
तासु दूत हौं जाहिकी, हरि आनेहु प्रिय नारि ।।९।।

महायोद्धा मेघनाद चला भाई का वध सुन बड़ा क्रोध हुआ।।११।। युद्ध करते हुए उसने कपि के ब्रह्मास्त्र मारा तब उन्होंने गिरने में भी सेना संहार की।।१२।। जब उसने उसको मूर्च्छित देखा तब नागफांस से बांधकर ले गया।।१३।। रावण बोला-हे वानर! तू कौन है किसके बल से तैंने वाटिका उजाड़ी।।१४।। क्या तैंने मुझे कानों से नहीं सुना। हे मूढ़! मैं तुमको बड़ा अशंक देखता हूँ।।१५।। किस अपराध से राक्षस मारे कह मूर्ख तुमको प्राणों का डर नहीं।।१६।। हनुमान्‌जी बोले हे रावण! सुन जिसका बल पाकर यह माया सब ब्रह्माण्ड रचती है।।१७।। जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु, महेश पालन सृजन और संहार करते हैं।।१८।। जिसके बल से शेषजी गिरिकानन सहित भूमि धारण करते हैं।।१९।। जो देवताओं की रक्षा करने और तुमसे मूर्खों को शिक्षा देने को अनेक देह धारण करता है।।२०।। जिसने शिवजी का कठिन धनुष तोड़कर तुम्हारे सहित राजों के दल का घमंड भंजन किया।।२१।। खर दूषण विराध और वालि यह सब बड़े बली जिसने मारे।।२२।। दोहार्थ–तथा जिसके बल से लवलेश से चर अचर सब तुमने जीते हैं तथा जिसकी तुम प्रियनारी हर लाये हो मैं उसका दूत हूँ।।९।।

जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लड़ाई ।।१।।
खायउँ फल मोहिं लागी भूखा । कपि स्वभावते तोरेउँ रूखा ।।२।।
सबके देह परमप्रिय स्वामी । मारहिं मोहिं कुमारग गामी ।।३।।
जिन्ह मोहिं मारा तेहि मैं मारा । तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारा ।।४।।
देखहु तुम निज हृदय विचारी । भ्रम तजि भजहु भक्त भयहारी ।।५।।

जाके डर अति काल डराई । जो सुर असुर चराचर खाई ॥६॥
तासौं वैर कबहुँ नहिं कीजै । मोरे कहे जानकी दीजै ॥७॥
दोहा–प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणासिन्धु खरारि ।
गये शरणप्रभु राखिहै, तव अपराध बिसारि ॥१०॥
मोद मूल बहु शूल प्रद, त्यागहु तुम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायकहि, कृपासिन्धु भगवान ॥११॥
रा०-बोला विहँसि अधम अभिमानी । मिला हमहिं कपि गुरु बड़ज्ञानी ॥१॥

मैं तुम्हारी प्रभुताई जानता हूं कि सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी॥१॥ भूख लगने से मैंने फल खाये वानरी स्वभाव से वृक्ष तोड़े॥२॥ हे स्वामी! देह तो सबको परमप्रिय है मुझे कुमार्गगामी मारते हैं॥३॥ जिसने मुझे मारा मैंने उसे मारा तिस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँधा है॥४॥ तुम अपने हृदय में विचार देखो भ्रम त्यागकर भय हरनेवाले का भजन करो॥५॥ जिसके डर से काल भी डरता है जो सुर असुर चर अचर को खा जाता है॥६॥ उससे कभी वैर मत करो मेरे कहने से जानकी दे दो॥७॥ दोहार्थ–खर के मारनेवाले रघुवंशमणि दीनों पर रक्षा करनेवाले शरण जाने से तुम्हारा अपराध विसार देंगे॥१०॥ मोह और अनेक दुःखों को करनेवाला है इससे तुम अभिमान त्याग दो और कृपासागर रघुनाथजी का भजन करो॥११॥ चौ०-तब महाअभिमानी रावण हँसकर बोला-हमको तो यह कपि बड़ा ज्ञानीगुरु मिला है॥१॥

मृत्यु निकट आई खल तोहीं । लागेसि अधम सिखावन मोहीं ॥२॥
उलटा होइ कहा हनुमाना । मतिभ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ॥३॥
सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना । बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना*॥४॥
सुनत निशाचार मारन धाये । सचिवन सहित विभीषण आये ॥५॥
नाइ शीश करि बिनय बहूता । नीति विरोध न मारिय दूता ॥६॥

---

१ कवित्त–देखि लंकनाथको निशंक कपि वन छोड़ि धर्म कीन्हों है अधर्म कर्मभारी तू ।
जनस्थान जायकै लुकायकै चुराई शठ लाजहिं बिहाय हरिल्यायो परनारी तू ॥
भयो जो सो भयो अब जनकसुताको देइ प्रभु पांय आशु परै दन्त तृणधारी तू ।
सके नहिं राखि विधि हरिहर रामद्रोही मारी जैहै हठि सीख मानि ले हमारी तू ॥

कवित्त–सुनत सकोप दशकंठ कह्यो वीरनसों सुनत कहा हौं वेगिकीश वधि डारो रे ।
उठतै भटन वैन बोलत विभीषणसे दूत है अवध्य बैठो सकल गँवारो रे ॥
नीति निरधारौ नहिं मारौ नाथ दूतै कोपि इनसों उचारो अंग भंग करि डारो रे ।
मानि लंकराय अतुराय या रजाय दीन्हों पावक लगाय याकी पूछ प्रिय जारो रे ॥१॥

वि०-आनदण्ड कछु करिय गुँसाई । सबही कहा मंत्र भल भाई ।।७।।

दोहा–कपिकर ममता पूँछपर, सबहिं कहा समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ।।१२।।

(यही करते हैं)

"बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेर पुनि पूँछ प्रजारी ।।१।।
निबुकि चढयो कपि कनक अटारी । भईं समेत निशाचर नारी ।।२।।

हे खल! तेरी मृत्यु निकट आई है हे अधम! जो तू मुझे भी सिखावन देने लगा।।२।। महावीरजी बोले-मेरी तो नहीं तेरी मृत्यु आई है मैंने तेरी मति का भ्रम प्रकट जान लिया।।३।। महावीरजी के वचन सुनकर बहुत खिसियाया कि इस मूढ़ के प्राण शीघ्र ही हरो।।४।। सुनकर राक्षस मारने दौड़े उसी समय मंत्रियोंसहित विभीषण आये।।५।। शिरनवाय कर बहुत विनय की हे प्रभु! नीति से विरोध होगा दूत को मत मारो।।६।। हे गोसाई! कुछ और दण्ड करो सबने कहा यह मंत्र भला है।।७।। दोहार्थ–सबने समझाकर कहा कि वानर की ममता पूंछ पर अधिक होती है इससे कपड़ों को तेल में बीर पूंछ में लपेट उसमें आग लगा दो।।१२।। चौ०–राक्षस यही करने लगे ढ़ोल बजाने लगे सब ताली बजाने लगे नगर में फेरकर पूंछ में आग लगा दी।।१।। उस समय महावीरजी कूदकर सुवर्ण की अटारी पर चढ़ गये निशाचर और उनकी स्त्रियें भयभीत हुईं।।२।।

दोहा–हरिप्रेरित तेहि अवसर, चलीं पवन उनचास ।
अट्टहास करि गरजेउ, कपि बढ़ि लाग अकाश ।।१३।।"

लंका दहन

(राक्षस चिल्लाते हैं महावीरजी लंका[1] जलाते हैं)

"उलटि पुलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी ।।१।।

दोहा–पूँछ बुझाइ खोय श्रम, धरि लघुरूप बहोरि ।
जनकसुताके आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ।।१४।।

ह०-मातु मोहिं दीजै कछुचीन्हा । जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा ।।१।।
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ । हर्ष समेत पवनसुत लयऊ ।।२।।

---

१ क०–वालधी विशालविकराल ज्वाल जाल मानो लंक लीलवेको कालरसना पसारी है।
कैधों भूमि वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु वीररस वीर तरवार सी उवारी है।
तुलसी सुरेश चाप कैधों दामिनीकलाप कैंधों चली मेरु है कृशानुसरि भारी है।
देखौ यातुधान यातुधानी अकुलानी कहैं कानन उजारो अब अगनी प्रचारी है ।।

सी०-कहेहु तात असमोर प्रणामा । सब प्रकार प्रभु पूरण कामा ।।३।।
दीन दयालु बिरद सम्भारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ।।४।।
तात शक्रसुत कथा सुनायहु । बाणप्रतातप प्रभुहिं समझायहु ।।५।।
मास दिवसमहँ नाथ न आवहिं । तोपुनिमोहिं जियत नहिं पावहिं ।।६।।

दोहार्थ–हरि की प्रेरणा से उस समय उनचास पवन चलने लगी तव बड़े वेग से हँसकर कपि आकाश को बढ़ने लगे।।१३।। चौ०–उलट पुलटकर सब लंका जला दी और तब सागर में कूद पड़े।।१।। दोहार्थ–पूंछ बुझाकर श्रम खोकर फिर छोटारूप धारणकर जानकी के आगे हाथ जोड़ खड़े हुए।।१४।। चौ०–हे माता! मुझे कुछ चिन्ह दीजिये जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था।।१।।तब जानकी ने चूड़ामिण उतारकर दी और महावीरजी ने प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण की।।२।। हे तात! मेरा प्रणाम कहकर विनय करना कि आप सब प्रकार पूर्णकाम हो।।३।। अपना दीनदयालु रूप विरद सँभारकर हे नाथ मेरा संकट हरो।।४।। हे तात! इन्द्रपुत्र की कथा सुनाकर वाण का प्रताप प्रभु से समझाना।।५।। जो एक महीने तक स्वामी नहीं आये तो फिर मुझे जीती न पावैगे।।६।।

कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना । तुमहूँ तात कहत अब जाना ।।७।।
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती । पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती ।।८।।
दोहा–"जनकसुतहिं समुझाइकरि, बहुविधि धीरज दीन्ह ।
चरणकमल शिर नाइ करि, गमन रामपहँ कीन्ह ।।१५।।"

इति द्वितीर्य दर्शन

हे कपि! कहो कैसे प्राण रखूं तुम भी अब जाने को कहते हो।।७।। तुम्हें देखकर छाती शीतल हुई अब मुझे फिर वही दिनरात है।।८।। दोहार्थ–महावीरजी ने जानकीजी को समझाकर बहुत धीरज दिया और चरणकमलों में शिर नवाय राम पर गमन किया।।१५।।

इति द्वितीय दर्शन

---

२ राग केदारा–कबहुँ कपि राघव आवहिंगे ।।टेक।।
मेरे नयन चकोर प्रीतिवश राकाशशिमुख दिखरावहिंगे ।।कबहुँ।।
मधुप मराल मोर चाकत ह्वै लोचन बहुप्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ।।कबहुँ।।
विरह अगिनि जाररही लता ज्यों कृपादृष्टि जल पलुहावहिंगे ।
निज वियोग दुख जानि दयानिधि मधुर वचन कहि समुझावहिंगे ।।कबहुँ।।
लोकपाल सुर नागराज सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे ।।
रावण वध रघुनाथ विमलयश नारदादि मुनिजन गावहिंगे ।।कबहुँ।।
यह अभिलाष रैन दिन मेरे राज्य विभीषण कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रमभेदबुद्धि कब विसरावहिंगे ।।कबहुँ क०।।

अथ तृतीय दर्शन

(महावीरजी का रघुनाथजी के निकट गमन)

"नांघि सिन्धु यहि पारहि आवा। शब्द किलकिला कपिन सुनावा ॥१॥
मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जनु बारी ॥२॥
तब मधुवन भीतर सब आये। अंगदसहित मधुर फल खाये ॥३॥

टीका—समुद्र लांघकर इस पार आये वानरों को किलकिला शब्द सुनाया॥१॥ तब सब मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, मानो तड़फती मछली को जल मिल गया॥२॥ तब सब मधुवन के भीतर आये और सबने अंगदसहित मीठे फल खाये॥३॥

आइ सबन नायउ पद शीशा। मिलेउ सबन अति प्रेम कपीशा ॥४॥
दा०—नाथकाजकीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन कर प्राना ॥५॥
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेउ। कपिन सहित रघुपतिपै चलेऊ ॥६॥

दोहा—"प्रीति सहित भेंटे सकल, रघुपति करुणापुञ्ज।
पूँछी कुशल कुशल अब, नाथ देखि पदकंज ॥१६॥"

जा०—जाम्बवन्त कह सुनु रघुराया। जापर नाथ करहु तुम दाया ॥१॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर। सुरनरमुनि प्रसन्न तेहि ऊपर ॥२॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सफल भा आजू ॥३॥
नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी। सोमुख लाख उजाइन वरणी ॥४॥
"सुनिकृपालु उठि हृदय लगाये। जानि सुभट रघुपति मन भाये ॥५॥"
रा०—कहहु तात केहि भांति जानकी। रहति करति रक्षा सुप्रानकी ॥६॥

फिर सबने आय सुग्रीव के चरणों में शिर नवाया। कपीश बड़े प्रेम से सबसे मिले॥४॥ जांबवंत बोले—हे नाथ! महावीर ने सब कार्य किया और सब कपियों के प्राण रखे॥५॥ सुनकर सुग्रीव

---

*व०—मेरी प्राणप्यारी तुम निजदृग देखी सत्य भाषौ बेगि नेकहू न शंकहिय राखौ वीर।
कित है कहां है किहि देश किहि वेषमाहिं ग्राम नाम ठाम धाम वरणि धरावो धीर।
रसिकविहारी कही जनकदुलारी काह जीवै किमि बाला कैसे सहत वियोग पीर।
मेरे दिन रात विरहानल जराबै मात सपदि सिरावो वरसायकै सुवैन नीर ॥१॥

फिर मिले और सबके सहित रघुनाथ के पास चले।।६।। दोहार्थ–रघुनाथजी सबसे प्रेमपूर्वक मिले। कुशल पूछी तब सब बोले–हे नाथ! अब आपके चरणकमल देखकर सब कुशल।।१६।। जांबवंत बोले–हे रघुराज! जिस पर आप दया करते हो।।१।। उसे निरन्तर शुभ कुशल है सुर नर मुनि उस पर सब प्रसन्न रहते हैं।।२।। प्रभु की कृपा से काज सब हुआ। हमारा जन्म आज सफल हुआ।।३।। हे नाथ! पवनसुत ने जो करणी की वह लाख मुख से भी वरणी नहीं जाती।।४।। सुनकर कृपालु ने उठकर हनुमान को हृदय से लगाया और सुभट जानकर रघुपति के मन को भाये।।५।। हे तात! कहो तो जानकी किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती रहती है।।६।।

हनू०–दोहा–नामपाहरू दिवसनिशि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपद यंत्रिका, प्राणजाहिं केहि वाट* ।।१७।।

चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्हीं । रघुपति हृदय लाय** तेहि लीन्हीं ।।१।।
नाथ युगल लोचन भरि वारी । वचन कह्यो कछु जनककुमारी ।।२।।
अनुज समेत गहेहु प्रभुचरणा । दीनबन्धु प्रणतारति हरणा ।।३।।
मन क्रम वचन चरण अनुरागी । केहि अपराध नाथ मोहिं त्यागी ।।४।।
अवगुण एक मोर मैं जाना । बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ।।५।।
नाथ सो नयनकर कर अपराधा । निसरत प्राण करहिं हठिबाधा ।।६।।
विरह अग्नि तनु तूल समीरा । श्वास जरै क्षणमाहिं शरीरा ।।७।।

दोहार्थ–महावीर बोले–तुम्हारा नाम दिन रात पहरा देता है। तुम्हारा ध्यान किवांड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाये रहती हैं, यही ताला है फिर प्राण किस वाट से जायँ?।।१७।। चौ०–चलते समय मुझे चूड़ामणि दी, रामचन्द्र ने हृदय से लगाई।।१।। हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकी ने कुछ वचन कहे हैं।।२।। कि अनुजसहित प्रभु के चरण स्पर्श करना कि हे

---

*पद–अतिहि अधिक दरशन की आरति ।
राम वियोग अशोक विटपतर सीय निमेष कलप सम टारति ।।१।।
बार बार वर वारिज लोचन भरि भरि बरत वारि उर ढारति ।।
मनहुँ विरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीर ततारति ।।२।।
तुलसिदास यद्यपि निशिवासर छिन छिन प्रभु मूरतहि निहारति ।।
मिटति न दुसह ताप तउ तनकी यह विचारि अन्तर्गत हारति ।।३।।
**कवित्त–चूडामणिपाये रघुराजजू लगाये हिये भरि आये पदुम पलास हिय नैन हैं ।
क्षण एक रहों नहिं अगन की सुधि नेक थकित ह्वै रहे नहिं बोलि आये बैन हैं ।।
सुख दुख रोष उर भये हैं समान तीनों सुरति सम्हारी मिले कीसे मुद ऐन हैं ।
मानो रूपवान वातसल्य दास्यरस दोऊ मिलै बराबर भूरि भरे चित्त चैन हैं।।१।।

दीनबंधु! आप दीनों के दुःख हरनेवाले हो।।३।। हे नाथ! मैं मन वचन कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूं। मुझे किस अपराध से त्यागन किया है।।४।। हाँ मैंने जाना कि मेरा एक अवगुण है कि आपके बिछुड़ते ही अपने प्राण नहीं दिये।।५।। हे नाथ! सो यह नेत्रों का अपराध है कि प्राणों के निकलने में बाधा करते हैं।।६।। तुम्हारा वियोग अग्नि है, शरीर रुई है, श्वास पवन है, क्षण में शरीर जल जाय।।७।।

नयन स्रवैं जल निजहित लागी । जरै न पाव देह विरहागी ।।८।।
सीताकी अति विपति विशाला । विना कहे भल दीन दयाला ।।९।।
दोहा–निमिष २ करुणायतन, जाहिं कल्प शत बीति ।
वेगि चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खलदल जीति ।।१८।।
रा०–सुनकपितोहीं समानउपकारी ।नहिं कोउ सुरनरमुनितनुधारी ।।१।।
प्रतिउपकार करौं का तोरा । सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ।।२।।
सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं । देखउँ करि विचार मनमाहीं ।।३।।
दोहा–"सुनि प्रभुवचन विलोकि मुख, हृदय हर्ष हनुमन्त ।
चरण परेउ परमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ।।१९।।
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा । करगहिपरम निकट बैठावा ।।१।।"
राम–कहु कपि रावण पालित लंका।केहिविधि दहेउ दुर्ग अतिबंका ।।२।।
शाखामृग की अति मनुसाई । शाखाते शाखा पर जाई ।।३।।
नाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा । निशिचर गणवधि विपिन उजारा ।।४।।

पर नेत्र अपने हित के निमित्त नीर त्यागते हैं इससे विरहाग्नि से देह नहीं जलने पाता।।८।। हे दीनदयालु! सीता पर जो बड़ी विपत्ति है वह बिना कहे ही अच्छी है।।९। दोहार्थ–हे करुणासागर! एक एक पल कल्प के समान बीतता है, आप शीघ्र चलकर राक्षसों को मार जानकी को लाओ।।१८।। रामचन्द्र बोले–सुनो कपि! तुम्हारे समान उपकार करनेवाला सुरनरों में कोई नहीं है।।१।। मैं तुम्हारा प्रति उपकार क्या करूं। मेरा मन सन्मुख नहीं हो सकता।।२।। हे कपि! मैं तुमसे उऋण नहीं हूं। मन में विचारकर देख लिया।।३। दोहार्थ–प्रभु के वचन सुन उनका मुख देख महावीर के मन में बड़ा हर्ष हुआ और त्राहि त्राहि कह कर परम व्याकुल हो भगवान् के चरणों में गिर गये।।१९।। चौ०–कपि को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़ अति निकट बैठाया।।१।। और बोले–कहो कपि! रावण से पालित बड़ा बांका लंकादुर्ग तुमने कैसे जलाया?।।२।। हनुमानजी बोले–शाखामृग की यही वीरता है कि एक शाखा से दूसरी पर जाना।।३।। सागर लांघकर सोने का पुर जलाया। राक्षसों को माकर वन उजाड़ा।।४।।

सो सब तव प्रताप* रघुराई । नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ।।५।।

दोहा–ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल ।
तव प्रताप वडवानलहिं, जारि सकैं खल तूल ।।२०।।

"तबरघुपति कपिपतिहि बुलावा । कहा चलैकर करहु बनावा ।।१।।"
रा०–अबविलम्ब केहि कारण कीजै । तुरत कपिनकहँ आयसु दीजै ।।२।।
हर्षि राम तब कीन्ह पयाना । शकुन भये सुन्दर शुभनाना ।।३।।

दोहा–इहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागरतीर ।
जह तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर ।।२१।।

इति तृतीय दर्शन

हे रघुराई! सो सब आपका प्रताप है। कुछ मेरी प्रभुताई नहीं है।।५।। दोहार्थ–हे प्रभु! जिस पर तुम अनुकूल हो उसको कुछ भी अगम नहीं है। आपका प्रताप वडवानल रुईरूप खलों को भस्म कर सकता है।।२०।। तब रघुनाथजी ने सुग्रीव को बुलाय कहा कि, अब चलने का उद्योग करो।।१।। अब विलम्ब किस कारण करते हो। वानरों को शीघ्र आज्ञा दो।।२।। तब रघुनाथजी ने प्रसन्न हो पयान किया और सुन्दर शकुन हुए।।३।। दोहार्थ–और इस प्रकार जाकर कृपानिधि सागर के किनारे उतरे। भालु और कपिवीर जहां तहां फल खाने लगे।।२१।।

इति तृतीय दर्शन

अथ चतुर्थ दर्शन

रावण मन्दोदरी संवाद (रावण बैठा है, मन्दोदरी खड़ी है)

रही जोरि कर पतिपद लागी । बोली वचन नीतिरस पागी ।।१।।
मं०–कन्तकर्ष हरिसन परिहरहू । मोरकहा अतिहित चितधरहू ।।२।।
समुझत जासु दूत की करनी । स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ।।३।।

रावण मन्दोदरी संवाद

टीका–मन्दोदरी हाथ जोड़ पति के चरणों में प्रणामकर नीति के वचन बोली।।१।। हे स्वामी!

---

*क०–बोले हरषाय रघुनाथ बैन बार बार देइबे को आज तीनो लोक तोहिं थोरा है।
ताते कै विचार मनमाहँ ठीक यों ही दियो उऋण न तोसो सदा यही मन मोरा है ।
प्रभु के वचन सुनि कीश कर जोरि कहैं काज तू प्रतापै कियो मोहिना निहोरा है ।
कीश सेवकाई तैसे प्रभु प्रभुताई लखि झूलैं रघुराज मन हरषि हिडोरा है ।।१।।

रघुनाथ से विरोध त्यागो और मेरे वचन हित से सुनो।।२।। जिसके दूत की करनी समझकर राक्षसों की घरनियों के गर्भ गिर जाते हैं।।३।।

तासु नारि निज सचिव बुलाई । पठवहु कन्त जो चहहु भलाई ।।४।।
तव कुलकमल विपिन दुखदाई । सीता शीत निशा सब आई ।।५।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हें ।।६।।

दोहा—रामबान अहिगणसरिस, निकर निशाचर भेक ।
जौंलगि ग्रसतन तबहिं लागि, यतनकरहु तजि टेक ।।२२।।

रा०—सभयस्वभावनारिकरसाँचा । मंगलमाहिं अमंगल राँचा ।।१।।
जो आवै मर्कट कटकाई । जियहिं विचारे निशिचर खाई ।।२।।
कम्पहिंलोकप जाके त्रासा । तासु नारि सभीत बड़िहाँसा ।।३।।
(गया)
बैठेउ सभा खबरि अस पाई । सिन्धुपार सेना सब आई ।।४।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मौन करि रहहू ।।५।।
रा०—जितहु सुरासुर तवश्रम नाहीं । नर वानर केहि लेखेमाहीं ।।६।।
अवसर जानि विभीषण आवा । भ्राताचरण शीश तेहि नावा ।।७।।
वि०—जो कृपालु पूछेहु मोहिं बाता । मति अनुरूप कहब मैं ताता ।।८।।
जो आपन चाहो कल्याना । सुयश सुमति शुभगति सुखनाना ।।९।।

उसकी स्त्री को मंत्री को बुलाय भेज दो हे कन्त! जो भला चाहते हो।।४।। तुम्हारे कुलकमलरूप वन को सीता शीत रात के समान आई है।।५।। हे नाथ! सुनो सीता के बिना दिये शम्भु और अज तुम्हारे हितकारी नहीं हो सकते।।६।। दोहार्थ—राम के बाण सर्पों के समान हैं। राक्षस समूह मेंढ़क हैं। वे जब तक ग्रास नहीं करते तब तक हठ छोड़कर यत्न करो।।२।। चौ०—रावण ने कहा सत्य है स्त्रियां स्वाभाविक भीरु होती हैं। मंगल के अमंगल करती हैं।।१।। जो वानरों की सेना आवेगी तो विचारे राक्षस खाकर जियेंगे।।२।। जिसके भय से लोकपाल कांपते हैं उसकी स्त्री भयभीत हो बड़ी हँसी की बात है।।३।। यह कह सभा में जा बैठा। वहां खबर पाई कि सागर पार सब सेना आ गई।।४।। मंत्रियों से पूछा—उचित मत कहो वे सब हँसे कि मौन हो।।५।। जब कि सुर असुरों के जीतने में श्रम नहीं हुआ तो नर वानर किस लेख में हैं।।६।। अवसर जानकर विभीषण ने आय भ्राता के चरणों में शिर नवाया।।७।। विभीषण ने कहा—हे कृपालु! जो मुझसे पूछते हो तो मैं अपनी मति के अनुसार कहता हूं।।८।। जो तुम अपना भला, सुमति अच्छी गति और सुख अनेक चाहते हो।।९।।

तो परनारि लिलार गुसांई । तजो चौथि चन्दाकी नांई ।।१०।।

दोहा–काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पन्थ ।
सब परिहरि रघुवीरपद, भजहु कहहिं सदग्रंथ ।।२३।।

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेश्वर कालहु के काला ।।१।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिन्धु मानुष तनुधारी ।।२।।
ताहि वैर तजि नाइय माथा । प्रणतारति भंजन रघुनाथा ।।३।।
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही । भजहु राम विनु काज सनेही ।।४।।
शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा । विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा ।।५।।
जासु नाम त्रयताप नशावन । सो प्रभु प्रगट समुझ जिय रावन ।।६।।

दोहा–बार बार पद लागौं, विनय करौं दशशीश ।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश ।।२४।।

मा०–तातअनुज तवनीतिविभूषण । सोउउरधरहुजोकहतविभीषण ।।१।।
रा०–रिपुउत्कर्ष कहत शठ दोऊ । दूर न करहु यहाँते कोऊ ।।२।।
वि०–सुमतिकुमति सबके उर रहई । नाथ पुराणनिगम अस कहई ।।३।।

तो हे गोसाई! भादों की चौथ के चन्दा के समान पराई स्त्री का मुख देखना त्यागन करो।।१०।। दोहार्थ–हे नाथ! काम क्रोध मद लोभ यह सब नरक के पंथ है। सबको छोड़ रघुवीर के चरणों का भजन करो। यह सद्ग्रंथ कहते हैं।।२३।।

चौ०–हे तात! रघुनाथजी नर भूपाल नहीं हैं। वह भुवनेश्वर काल के भी काल हैं।।१।। गो द्विज धेनु देवताओं के हित के निमित्त कृपासागर ने मनुष्य का शरीर धारण किया है।।२।। उनको वैर त्याग माथा नवाओ। रघुनाथ दीनों का दुःख दूर करनेवाले हैं।।३।। हे नाथ! प्रभु को जानकी दे दो वह विना ही कारण स्नेह करते हैं। उनका भजन करो।।४।। शरण जाने पर तो प्रभु ने विश्वद्रोह करनेवाले पापी को भी नहीं त्यागा।।५।। जिसका नाम तीनों ताप को नाश करता है वही प्रभु प्रगट हैं। हे रावण! यह समझो।।६।। दोहार्थ–हे दशशीश! बार बार पद लगकर विनय करता हूं। मान मोह मद त्यागनकर कोशलाधीश का भजन करो।।२४।। चौ०–मालवन्त बोला–हे तात! तुम्हारे भ्राता नीति के गहने हैं जो विभीषण कहते हैं सो मानो।।१।। रावण बोला–दोनों ही शत्रुका उत्कर्ष करते हैं। यहां कोई है जो इनको दूर करे।।२।। विभीषण बोला–सुमति कुमति सबके हृदय में रहती है हे नाथ! ऐसा पुराण और शास्त्र कहते हैं।।३।।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ।।४।।
तव उर कुमति बसी विपरीती । हित अनहित मानत रिपु प्रीती ।।५।।

दोहा–तातचरण गहि मांगौं, राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु रामकहँ अतिहित होइ तुम्हार ॥२५॥
रा०–जियसिसदाशठमोरजिआवा । रिपुकरपक्षसदातोहिंभावा ॥१॥
कहसि न खल अस को जगमाहीं । भुजबल जिहि जीता मैं नाहीं ॥२॥
मम पुरवसि तपसिन सन प्रीती । शठमिलु जाहि ताहि कहनीती ॥३॥
"अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा । अनुजगहे पद बारहिंबारा ॥४॥"
बि०–तुमपितुसरिसभलेमोहिंमारा । राम भजे हित होइ तुम्हारा ॥५॥
"सचित संग लै नभपथ गयऊ । सबहिं सुनाय कहत अस भयऊ ॥६॥"
दोहा–राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवश* तोरि ।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥२६॥

जहां सुमति है वहां अनेक सम्पत्ति हैं, जहां कुमति है वहां अन्त में विपत्ति हैं॥४॥ तुम्हारे मन में विपरीत कुमति बसी है जो हित को अनहित माने शत्रु को प्रीति मानते हो॥५॥ दोहार्थ–हे तात! चरण पकड़कर मांगता हूं मेरा प्यार रखो। राम की सीता दो, तुम्हारा मंगल होगा॥२५॥ चौ०–रावण बोला–हे शठ! सदा मेरे जियाने से जीता है, शत्रु का पक्ष सदा तुझको भाता है॥१॥ अरे मूर्ख! कह तो ऐसा कौन जगत् में है जिसको मैंने अपनी भुजा के बल से न जीता हो॥२॥ मेरे पुर में निवासकर तपस्वियों से प्रीति करता है हे शठ! उन्हीं से जाकर मिल और उन्हीं से नीति कह॥३॥ यह कह चरण प्रहार किया। छोटे भ्राता ने बारंबार चरण स्पर्श किये॥४॥ तुम पिता के समान हो। मुझे मारा अच्छा किया। राम के भजन से तुम्हारा मंगल होगा॥५॥ यह कह मंत्रियों को साथ ले आकाश मार्ग में गया। सबको सुनाकर ऐसा कहने लगा॥६॥ राम तो सत्यसंकल्प हैं। तेरी सभा कालवश हैं। मैं अब रघुनाथजी की शरण जाता हूं। मुझे दोष मत दीजो॥२६॥

यहि विधि करत सप्रेम विचारा* । आयउ सपदि सिन्धु के पारा ॥१॥
ताहि राखि कपि पति पहँ आये । समाचार सब जाइ सुनाये ॥२॥

---

*घ०–तब कछु वीरता न काहूते बनैगी नेक जब कपि भालु बीर धाय आय जूटैंगे ।
ताछिन बचैना कोऊ भागेहू त्रिलोक माहिं जाही छिन रामबाण पन्नग से छूटेंगे ।
राघव विरोधी यातुधान के रहेना प्राण सहित समाज राजा काज सब खूटैंगे ।
रसिकविहारी सिय दीने ही भली है बात नतु बहुमुण्ड दधिकुण्ड सब फूटैंगे ॥१॥

* घ०–सुन्दर ललाम सुखधाम अभिराम अति सेय वसुयाम उर आनंद बगारिहौं ।
ऊरध कमल बज्र अंकुशादि चिह्न सबै परसि प्रमोद पाय शोक श्रम टारिहौं ॥
रसिकविहारी रज नैनन लगाय नित्त लोचन सिराय निज जनम सुधारिहौं ।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । आवा मिलन दशानन भाई ।।३।।
कह प्रभु सखा बूझिये काहा । कहै कपीश सुनहु नरनाहा ।।४।।
सु०–जानि न जाय निशाचर माया । कामरूप केहि कारण आया ।।५।।
भेद हमार लेन शठ आवा । राखिये बांधि मोहिं अस भावा ।।६।।
राम–सखा नीति तुम नीक विचारी । मम प्रण* शरणागत भयहारी ।।७।।

चौ०–इस प्रकार कह राम के दर्शन का प्रेमपूर्वक विचार करता शीघ्र ही सागर के पार आया।।१।। वानर उसे रख सुग्रीव पर आये और समाचार सुनाये।।२।। सुग्रीव बोले–हे रघुराज! रावण का छोटा भाई मिलने आया है।।३।। श्रीरामचंद्र बोले–सखा फिर क्या पूछते हो? सुग्रीव बोले–हे नरनाह! सुनो।।४।। राक्षस की माया नहीं जानी जाती। यह कामरूप जाने क्यों है।।५।। यह शठ हमारा भेद लेने आया है। मेरा मत यह है, इसे बांध लो।।६।। राम–हे सखा! तुमने भली विचारी पर मेरा प्रण है शरणागत का भय दूर करता हूं।।७।।

दोहा–शरणागत को जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि ।।२७।।

कोटि विप्र वध लागहि जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ।।१।।
सन्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं । जन्म कोटि अघ नाशौं तबहीं ।।२।।
पापवन्तकर सहज स्वभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ।।३।।
जोपै दुष्ट हृदय सो होई । मोरे सन्मुख आव कि सोई ।।४।।

नाथ हैं अनाथनके ऐसे रघुराजजू के दृग भरि आज पदपंकज निहारिहौं ।।१।।
मेटत सकल दुःख द्वन्द्व भ्रमफन्द घने रहत अमन्द सुखकन्द छबि पेखिहौं ।
जाहिलखि कोटिचन्द होत हैं दुचन्दमद ताहि मैं बिलोकोंधन्य सुकृति विशेषिहौं ।।
दरशत भूले छलछन्दके प्रबन्ध सबै रसिकबिहारी युग पल सम लेखिहौं ।
दशरथनन्द हैं अनन्द के अनन्दानि आजु रघुचन्दजी को मुखचन्द देखिहौं ।।२।।
आयहैं लषन कपिराय हैं सुभाय भले पायकै, रजाय धाय धाय बेग ही बुलाय हैं ।
देखि रघुराय मुसकायकै बढ़ाय प्रीति सुख सरमाय मीठे वचन सुनाय हैं ।।
रसिकविहारी कृपा लाय है दिवाय अभै मोद उमगाय तनु तपन सिराय हैं ।
मुख दरशाय करकज परसाय शीश कोशलकिशोर आज मोहिं अपनाय हैं ।।२।।
**सवैया–एकहि बेर कहौं सुखहौं कहिकै पुनि और को न और भाखौं ।
कीन्ही कृपा जेहिपै तेहिपै अपराध विहारि न रचहु माखौं ।
जाहि लिये गहिके अपनाय तिन्हैं रसिकेश न भूलिहु नाखौं ।
लाओ कपीश बिभीषणको करि देउ अभय शरणागत राखौं ।।१।।

निर्मलमन जन सो मोहिं पावा । मोहिं कपट छलछिद्र न भावा ।।५।।
भेद लेन पठवा दशशीशा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ।।६।।
जगमहँ सखा निशाचर जेते । लक्ष्मण हनहिं निमिषमहँ तेते ।।७।।
जो सभीत आवा शरनाईं । रखिहौं ताहि प्राण की नाईं ।।८।।

दोहा–उभय भांति लै आवहु, हँसि कह कृपानिधान ।
जयकृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान ।।२८।।

(विभीषण को लाते हैं)

विभी०–नाथ दशाननकर मैं भ्राता । निशिचरवंश जन्म सुरत्राता ।।१।।

दोहार्थ–जो अपना अनहित जानकर शरणागत को त्यागते हैं वे मनुष्य पापमय हैं, उनके दर्शन से हानि है।।२७।। चौ०–कोटि विप्रों का वध किसी को लगा हो तो भी शरण आये पर उसे नहीं त्यागूंगा।।१।। जबही जीव मेरे सन्मुख होगा तबहीं कोटि कल्प के पाप नाश करूंगा।।२।। पापी का तो यह सहज स्वभाव है कि उसको मेरा भजन भला नहीं लगता।।३।। जो दुष्टहृदय होगा वह मेरे सन्मुख नहीं आवेगा।।४।। निर्मलमन के भक्त ही मुझे पा सकते हैं। मुझे कपट छल छिद्र भला नहीं लगता।।५।। हे सुग्रीव! जो रावण ने भेद लेने भेजा है तो भी कुछ भय हानि नहीं।।६।। हे सखा! जगत् में जितने राक्षस हैं उतनों को लक्ष्मण एक ही पल में मार सकते हैं।।७।। और जो भय से शरण में आया है प्राण के समान उसे रखूंगा।।८।। दोहार्थ–दोनों ही प्रकार से ले आओ। यह बात राम ने हँसकर कही, कारण कि कृपा निधान हैं हे कृपालु! आपकी जय हो, ऐसा कह अंगदादि हनुमान् चले।।२८।। विभीषण (आकर) हे नाथ! मैं रावण का भाई हूं, हे सुररक्षक! मेरा निशाचर वंश में जन्म है।।१।।

दोहा–श्रवण सुयश सुनि आयऊं, प्रभुभंजन भय भीर ।
त्राहि त्राहि आरतिहरण, शरण सुखद रघुवीर ।।२९।।

(विभीषण दण्डवत् करता है)

"दीनवचन सुनि प्रभुमन भावा । भुजविशाल गहि हृदय लगावा ।।१।।"
राम-कहु लंकेश सहित परिवारा । कुशल कुठाहर वास तुम्हारा ।।२।।

दोहार्थ–हे प्रभु! आप संसार का भय दूर करते हो, मैं आपका यश सुनकर आया हूँ हे शरणागतों को सुखदेनेवाले! दुःखियों के दुःख दूर करनेवाले रघुवीर! मेरी रक्षा करो।।२९।। चौ०–यह दीनवचन सुन प्रभु प्रसन्न हुए और बड़ी भुजाओं से ग्रहणकर हृदय से लगाया।।१।। हे लंकापति! कहो परिवार सहित कुशल हो तुम्हारा निवास बड़ी कुठौर है।।२।।

---

१ रागकेदारा–दीनहित विरद पुराणन गायो ।।टेक ।।
आरतबन्धू कृपालु मृदुलचित जान शरण हौं आयो ।।

खल मण्डली बसहु दिन राती । सखाधर्म निबहै केहि भांती ।।३।।
बि०-अब पद देखि कुशल रघुराया । जो तुम कीन्ह जानि जनदाया ।।४।।
अब मैं कुशल मिटे भय भारे । देखि रामपद कमल तुम्हारे ।।५।।
तुम कृपालु जापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवशूला ।।६।।
दोहा–अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुखपुंज ।
देखउँ नयन विरंचि शिव, सेव्य युगल पदकंज ।।३०।।
राम०-सुनु लंकेश सकलगुण तोरे । ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ।।१।।
'पदअम्बुज गहि बारहिं बारा । हृदय समात न प्रेम अपारा ।।२।।
वि०-सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रणतपाल उर अन्तर्यामी ।।३।।
उर कछु प्रथम वासना रही । प्रभुपद प्रीति सरित सो वही ।।४।।
अब कृपालु निज भक्ति पावनी । देहु दयाकर शम्भु भवानी ।।५।।
राम-"एवमस्तु कहि प्रभु रणधीरा । मांगा तुरत सिन्धुकर नीरा ।।६।।"
यदपि सखा तोहिं इच्छा नाहीं । मम दर्शन अमोघ जगमाहीं ।।७।।

–तुमरे रिपुको अनुज विभीषण वंश निशाचर जायो ।
सुन गुण भील स्वभाव नाथको मैं चरणन चितलायो ।
जानत प्रभु दुखसुख दासनके ताते कहि न सुनायो ।
कर करुणा भर नयन विलोको तब जानों अपनायो ।।
वचन विनीत सुनत रघुनायक हँसकर निकट बुलायो ।।
भेंट्यो हरि भर अंक भरत जिमि लंकापति मनभायो ।।
करपंकज शिर परस अभय कियो जनपर हेतु दिखायो ।
तुलसिदास रघुवीर भजन कर को न अभय पद पायो ।।१।।

राग धनाश्री–सत्य कहों मेरो सहज स्वभाऊ ।।टेक।।
सुनो सखा कपिपति लंकापति, तुमसों कहा दुराऊ ।।
सब विधि दीन हीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाऊ ।
आए शरण भजों न तजों तिहि यह जानत ऋषिराऊ ।।
जिनको हौं हित सब प्रकार चित नाहिंन और उपाऊ ।
तिन हित लगि धर देह करों सब डरों न सुयश नाशाऊ।
पुनि पुनि भुजा उठाय कहत हौं सकल सभा पतियाऊ ।।
नाहिंन कोउ प्रिय मोहिं दास सम कपट प्रीति वह जाऊ ।।
सुन रघुपति के वचन विभीषण प्रेम मगन मनचाऊ ।
तुलसिदास तज आस त्रास सब ऐसे प्रभुको गाऊ ।।१।।

दिनरात खलमण्डली में निवास करते हो, हे सखा धर्म किस प्रकार निभता है।।३।। विभीषण-हे रघुराज! आपके पद देखकर कुशल हुई जो तुमने अपना भक्त जान दया की।।४।। अब मैं कुशल हुआ मेरे भय मिट गये हे राम! तुम्हारे चरणकमल देखे।।५।। हे कृपालु! तुम जिस पर अनुकूल रहते हो उसे तीन प्रकार के संसार के ताप नहीं व्यापते।।६।। दोहार्थ—अहो मेरे बड़े भाग्य हैं जो राम की कृपा सुख की पुंजता प्राप्त हुई और ब्रह्माशिव से सेवित दोनों चरणों का दर्शन किया।।३०।। चौ०—राम-हे लंकेश! तुममें सबही गुण हैं इससे तुम मेरे परमप्रिय हो।।१।। यह सुन विभीषण बार बार चरण गहे और हृदय में प्रेम नहीं समाता और बोला।।२।। हे चराचर के स्वामी देव! सुनो आप दीनों के पालक और हृदय को जानते हो।।३।। पहले तो कुछ हृदय में वासना रही वह आपके चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई।।४।। अब तो हे कृपालु! अपनी पवित्रभक्ति जो शिव के मन को भाती है सो दो।।५।। यही होगा यह कह प्रभु रणधीर ने कहा समुद्र का जल लाओ।।६।। हे सखा! यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है।।७।।

"अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमनवृष्टि नभ भयउ अपारा ।।८।।"
सुनु कपीश लंकापति वीरा । केहि विधि उतरिय जलधि गँभीरा ।।
वि०-कह लंकेश सुनहु रघुनायक । कोटिसिन्धु शोषै तव सायक ।।१०।।
यद्यपि तदपि नीति अस गाई । विनय करिय सागरपहँ जाई ।।११।।
दोहा—प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि ।
विन प्रयासे सागर तरहिं, सकल भालु कपि धारि ।।३१।।
ल०-नाथ दैवकर कवनभरोसा । सोखिय सिन्धु करिय मनरोसा ।।१।।
कादर मनकर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।।२।।
"सुनत विहँसि बोले रघुवीरा । ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ।।३।।
प्रथम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई । बैठे तट पुनि दर्भ डसाई ।।४।।
जबहिं विभीषण प्रभुपहँ आये । पाछे रावण दूत पठाये ।।५।।
रिपुका दूत कपिन जब जाना । ताहि बांधि कपिपतिपहँ आना ।।६।।
कह सुग्रीव सुनहु सब वनचर । अंगभंग करि पठंवहु निशिचर ।।७।।
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये । बांधि कटक चहुँपास फिराये ।।८।।
बहुप्रकार मारन कपि लागे । दीन पुकारत तदपि न त्यागे ।।९।।"

यह कह राम ने बिभीषण को तिलक किया और आकाश से फूलों की वर्षा हुई।।८।। राम—हे सुग्रीव! हे लंकापति वीर! यह गंभीर सागर किस प्रकार उतरै।।९।। विभीषण बोले—हे राम! आपका तो बाण कोटि सागर शोष सकता है।।१०।। पर तो भी यही नीति है कि चलकर

सागर से विनय करो।।११।। दोहार्थ–हे प्रभु! सागर तुम्हारा कुलगुरु है विचार कर कोई उपाय कहेगा जिससे बिना परिश्रम भालु कपि पार हो जायँगे।।३१।। चौ०–लक्ष्मण-हे नाथ! दैव का क्या भरोसा है मन में रोषकर सागर को सोख लीजिये।।१।। यह तो कादरों के मन का आधार है दैव दैव आलसी पुकारते हैं।।२।। सुनकर रघुनाथजी बोले ऐसा ही करेंगे मन में धीरज धरो।।३।। यह कह सागर के समीप जाय कुश बिछाय बैठे।।४।। जभी बिभीषण प्रभु के पास आये पीछे रावण ने दूत भेजे।।५।। शत्रु के दूत जानकर बानर उन्हें बांध कपीश पर लाये।।६।। सुग्रीव बोले, हे वानरो! सुनो अंग भंग कर इन दूतों को भेजो।।७।। सुग्रीव के वचन सुन वानर चले और उन्हें बांधकर कटक के चारों ओर फिराया।।८।। और फिर बहुत प्रकार से मारने लगे दीन पुकारने से भी नहीं त्यागा।।९।।

राक्ष०-जो हमार हर नासाकाना । तेहि कोशलाधीश कर आना ।।१०।।
"सुनि लक्ष्मण तेहि निकट बुलाई । दयालागि हँसिदीन छुड़ाई ।।११।।
ल०-रावणकर दीन्हेउ यह पाती । लक्ष्मण वचन बांच कुलघाती ।।१२।।
दोहा–कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देश उदार ।
सीता देहु मिलहु न तो, आवा काल'तुम्हार ।।३२।।
"तुरत नाइ लक्ष्मणपद माथा । चला दूत वर्णत गुणगाथा ।।१।।"

(रावण की सभा)

रा०-विहँसि दशानन पूँछसि बाता । कहसिनशुक आपनि कुशलाता ।।२।।
पुनि कहु कुशल विभीषण केरी । जासु मृत्यु आई अतिनेरी ।।३।।
करत राज्य लंका शठ त्यागा । होइहि यवकर कीट अभागा ।।४।।
पुनि कहु भालु कीश कटकाई । कठिनकाल प्रेरित चलिआई ।।५।।
तिनके जीवनकर रखवारा । भयउ मृदुल चितसिन्धु विचारा ।।६।।
कहु तपसिनकर बात बहोरी । जिनके हृदय त्रास बहु मोरी ।।७।।
दोहा–भई भेंट की फिर गये, श्रवण सुयश सुनि मोर ।
कहसि न रिपुदल तेजबल, कस चकित चित तोर ।।३३।।

राक्षस–जो हमारी नाक कान काटै उसे कोशलाधीश की आन है।।१०।। सुनकर लक्ष्मण ने समीप बुलाया और दयाकर हँसकर छुड़ा दिया।।११।। यह पत्री रावण के हाथ में देकर कहना हे कुलनाशक! यह लक्ष्मण के वचन बांच ।।१२।। दोहार्थ–और उस मूर्ख से मेरा यह उदार संदेश मुख से भी कह देना, सीता देकर शीघ्र मिलो नहीं तो तुम्हारा काल आया है।।३२।। चौ०–तुरत लक्ष्मण के चरणों में शिर नवाय दूत गुणों को वर्णन करता चला।।१।। हँसकर रावण ने कहा शुक अपनी कुशल क्यों नहीं कहता?।।२।। फिर बिभीषण की कुशल ः जिसकी मृत्यु बहुत समीप

है।।३।। मूर्ख ने लंका का राज्य त्याग दिया अब अभागा यव का कीड़ा हो जायगा।।४।। फिर भालू कीश की सेना का वर्णन करो जो कठिन काल की प्रेरणा से चली आई है।।५।। उनके जीवों का रखवाला कोमल चित्त विचारा समुद्र हुआ है।।६।। फिर तपस्वियों की बात कहो जिनके हृदय में मेरा बड़ा भय है।।७।। दोहार्थ–तुम्हारी भेंट हुई कि वे मेरा यश सुनकर लौट गये रिपु का दल तेज बल क्यों नहीं कहता? तेरा चित्त क्यों चकित हो रहा है।।३३।।

शुक-नाथ कृपाकरि पूछहु जैसे । मानहु वचन क्रोध तजि तैसे ।।१।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं रामतिलक तेहि सारा ।।२।।
रावण दूत हमहिं सुनि काना । कपिन बांधि दीन्हें दुखनाना ।।३।।
श्रवण नासिका काटन लागे । राम शपथ दीन्हीं तब त्यागे ।।४।।
पूछेहु नाथ कीश कटकाई । वदन कोटिशत वरणि न जाई ।।५।।
नानावरण भालु कपि भारी । विकटानन विशाल भयकारी ।।६।।
जेइ पुर दहेउ बधेउ सुत तोरा । सकल कपिन महँ तेहिबल थोरा ।।७।।
अमित नाम भट कठिन कराला । विपुलवरण तनु तेज विशाला ।।८।।

दोहा–द्विविद मयन्द नील नल, अंगदादि विकटासि ।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जाम्बवन्त बलरासि ।।३४।।

ये कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटि गनै को नाना ।।१।।
अस मैं श्रवण सुना दशकंधर । पद्म अठारह यूथप बन्दर ।।२।।
नाथ कटकमहँ सो कपि नाहीं । जो न तुमहिं जीतहिं रणमाहीं ।।३।।
राम तेज बल बुधि विपुलाई । शेष सहस शत सकहिं न गाई ।।४।।

हे नाथ! जैसे कृपाकर पूछते हो वैसे क्रोध त्याग वचन मानो।।१।। जभी तुम्हारा लघुभ्राता उनसे जाकर मिला जाते ही रामने उसको लंका राज्य का तिलक कर दिया।।२।। हमें तुम्हारा दूत जानकर वानरों ने बांधकर बड़े बड़े दुःख दिये।।३।। वे नाक कान भी काटते थे पर राम की शपथ दिवाने से छोड़ा।।४।। हे नाथ! जो वानरों की कटकाई पूंछते हो वह तो कोटिसौ मुख से भी नहीं कही जायगी।।५।। अनेक वर्ण के भालु और कपि हैं विकट मुख बड़े भयदाई हैं।।६।। जिसने नगर को जलाकर तुम्हारे पुत्र को मारा सब बन्दरों में उसमें थोड़ा बल है।।७।। योद्धा बड़े कठिन कराल हैं उनके अनेक नाम हैं अनेक वर्ण के शरीर में बड़ा तेज है।।८।। दोहार्थ–द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, विकटासि, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव, जाम्बवन्त यह बल के समूह हैं।।३४।। चौ०–यह तो सब सुग्रीव के समान हैं और इनके समान करोड़ों हैं कौन गिन सकता है।।१।। रावण! मैंने ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो वानरों के यूथपति हैं।।२।। हे नाथ! कटक में ऐसा तो एक बन्दर भी नहीं जो तुमको युद्ध में न जीत ले।।३।। राम का तेज बल बुद्धि की बहुताई लाख शेष भी नहीं कर सकते।।४।।

सकशर एक शोषि शतसागर । तव भ्रातहिं पूछेउ नयनागर ।।५।।
तासु वचन सुनि सागरपाहीं । माँगत पन्थ कृपा मनमाहीं ।।६।।
रा०-सुनत वचन विहँसा दशशीशा । जो असमति सहाय कृतकीशा ।।७।।
सहज भीरु करि वचन दृढ़ाई । सागरसन ठानी मचलाई ।।८।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई । रिपुबल बुद्धि थाह मैं पाई ।।९।।
सचिव सभीत विभीषण जाके । विजयविभूति कहाँ लगि ताके ।।१०।।
शुक-राम अनुज दीन्हीं यह पाती । नाथ बचाय जुड़ावहु छाती ।।११।।
"विहँसि वामकर लीन्हों रावन । सचिव बोलि शठ लाग बँचावन ।।१२।।

दोहा-बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीश ।
रामविरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश ।।३५।।
होउ मान तजि अनुज इव, प्रभुपद लोचन भृंग ।
होहि राम शर अनलजनि, खलकुल सहित पतंग ।।३६।।

रा०-भूमि पराकर गहत अकाशा । लघु तापसकर वागविलासा ।।१।।

एक ही बाण से सौ सागर शोष सकते हैं पर आपके भ्राता से नीति पूछी।।५।। उनके वचन मान मन में कृपाकर सागर से मार्ग माँगते हैं।।६।। रावण-(हँसकर) जो ऐसी मति है तभी वानरों की सहाय है।।७।। स्वाभाविक डरपोक के वचन मान अब सागर से हठ ठानी है।।८।। अरे मूढ़! वृथा क्यों बड़ाई करता है शत्रु के बल बुद्धि की थाह मैंने पाली।।९।। जिसके विभीषण से भयभीत मन्त्री हैं उसको विजय विभूति कहां हो सकती है।।१०।। शुक बोला-यह राम के छोटे भैया ने पत्री दी है, इसे बँचाय छाती ठंढ़ी करो।।११।। रावण ने हँसकर बायें हाथ में ली, मंत्री को बुलाकर बँचवाने लगा।।१२।। दोहार्थ-हे शठ! बातों से मन को मत रिझावै कुल को मत नष्ट कर चाहे विष्णु, अज, ईश की शरण जाओ पर रास के विरोध से उद्धार न होगा।।३५।। मान को त्यागकर छोटे भ्राता के समान प्रभु के चरणकमल के भ्रमर बनो नहीं तो हे खल! राम के अग्निसमान बाणों से पतंग के समान कुलसहित भस्म हो जाओगे।।३६।। चौ०-रावण बोला भूमि में पड़ा आकाश को ग्रहण करना चाहता है ऐसा लघुतापस का वाक्य विलास है।।१।।

शु०-अतिकोमल रघुवीर स्वभाऊ । यद्यपि अखिल लोककर राऊ ।।२।।
मिलत कृपा प्रभु तुमपर करिहैं । उर अपराध न एकौ धरिहैं ।।३।।
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै । इतना कहा मोर प्रभु कीजै ।।४।।
जब तेइ देन कहेउ वैदेही । चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ।।५।।

दोहा–विनय न मानत जलधिजड़, गये तीनदिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय विनु होय न प्रीति ।।३७।।
राम-लक्ष्मण बाण शरासन आनू । शोषौं वारिधि बिशिख कृशानू ।।१।।
शठसन विनय कुंटिलसन प्रीती । सहज कृपणसन सुन्दर नीती ।।२।।
क्रोधहि शम कामिहि हरिकथा । ऊपर बीज बये फल यथा ।।३।।
"संधानेहु शरविशिष कराला । उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ।।४।।
कनकथार भरि मणिगणनाना । विप्ररूप आयो तजि माना ।।५।।"
सा०–सभयसिन्धु गहि पद प्रभु केरे । क्षमहु नाथ अवगुण बहु मोरे ।।६।।
गगनसमीर अनल जलधरणी । इनकी नाथ सहज जड़करणी ।।७।।

शुक बोला-हे महाराज! यद्यपि रघुनाथजी त्रिलोकी के अधिपति हैं पर उनका स्वभाव बड़ा कोमल है।।२।। वह प्रभु तुम पर मिलते ही कृपा करेंगे हृदय में कोई अपराध नहीं धरेंगे ।।३।। हे प्रभु! जानकी रामचन्द्र को दे दो इतना मेरा कहना करो।।४।। जब उसने जानकी देने को कहा रावण ने उसके लात मारी वह राम पर गया।।५।। दोहार्थ–इधर मूर्खतावश सागर ने विनय न मानी तब राम क्रोध कर बोले भय के बिना प्रीति नहीं होती।।३७।। चौ०–राम-हे लक्ष्मण! धनुषबाण लाओ! अग्निबाण से सागर शोष लूं।।१।। शठ से विनय कुटिल से प्रीति स्वाभाविक कृपण से नीति कहनी।।२।। क्रोधी से शांति और कामी से हरिकथा कहनी ऊषर में बीज बोने के समान है।।३।। यह कह कठिन बाण चढ़ाया और समुद्र के भीतर अग्नि बली।।४।। तब सुवर्ण के थाल में मणि भरकर ब्राह्मण का रूपधर मान छोड़ सागर आया।।५।। और भय से प्रभु के चरण पकड़कर कहा-हे नाथ! मेरे अवगुण क्षमा करो।।६।। आकाश, पवन, आग, जल, भूमि हे नाथ! इनकी तो स्वाभाविक जड़ करनी है।।७।।

तव प्रेरित माया उपजाये । सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये ।।८।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहही । सो तेहि भाँति रहै सुखलहही ।।९।।
प्रभुभल कीन्ह मोहिं शिख दीन्हीं । मर्य्यादा सब तुम्हरी कीन्हीं ।।१०।।
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी । ये सब ताड़न के अधिकारी ।।११।।
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ।।१२।।
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई । करहु बेगि जो तुमहिं सुहाई ।।१३।।
राम-दोहा–सुनत विनीतवचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ ।
जेहि विधि उतरै कपिकटक, तात सो करहु उपाइ ।।३८।।

सा०-नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाईं ऋषि आशीष पाई ।।१।।
तिनके परश किये गिरिभारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ।।२।।
मैं पुनि उरधरि प्रभु प्रभुताई । करिहौं बल अनुमान सहाई ।।३।।
इहिविधि नाथ पयोधि बँधाइय । जेहि असमुयश लोक तिहुँ गाइय ।।४।।
इहि शर मम उत्तर तटवासी । हतहुनाथ खलगण अघराशी ।।५।।

आपकी माया से प्रेरणा से उपजाये हुए सृष्टि के कारण सब ग्रन्थों ने गाये हैं।।८।। प्रभु की आज्ञा जिसको जैसी है वह उसी प्रकार सुख पा रहा है।।९।। आपने मुझे शिक्षा दी भला किया पर यह मर्यादा सब तुम्हीं की है।।१०।। ढ़ोल, गवाँर, शूद्र, पशु, नारी यह सब ताड़न के अधिकारी हैं।।११।। प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊंगा सेना उतर जायगी पर इसमें मेरी बड़ाई न होगी।।१२।। प्रभु की आज्ञा अपेल है ऐसा वेद कहता है जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो।।१३।। दोहार्थ–यह वचन सुन श्रीरघुनाथ हँसकर बोले-जिस प्रकार वानरों का कटक उतरे हे तात! सो उपाय करो।।३९।। चौ०–सागर-हे नाथ! नील नल नामक जो दोनों भाई वानर हैं उन्होंने लरिकाई में मुनि की आशीश पाई है।।१।। उनके स्पर्श किये पर्वत तुम्हारे प्रताप से तर जायँगे।।२।। मैं भी आपकी प्रभुताई हृदय में धर बल के अनुसार सहाय करूंगा।।३।। इस प्रकार से आप सागर बँधवाओ जिससे यह सुयश त्रिलोकी गावै।।४।। और इस बाण से मेरे उत्तर तट के रहनेवाले पापी दुष्टों का नाश करो।।५।।

"सुनि कृपालु सागर मनपीरा । तुरतहि हरी राम रणधीरा ।।६।।
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरणवन्दि पाथोधि सिधावा ।।७।।
दोहा–सकल सुमंगलदायक, रघुनायक गुणगान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु विना जलयान ।।३९।।

इति चतुर्थ दर्शन

इति सुन्दरकाण्ड ५

भगवान् राम रणधीर ने सागर के मन की पीर सुनकर तुरत हरी।।६।। इस प्रकार सब चरित्र कह चरणों को प्रणाम कर सागर गया।।७।। दोहार्थ–रघुनाथजी के गुणों का गान सब सुमंगल की खान है जो आदर से सुनते हैं वे बिना जहाज भवसागर तर जाते हैं।।३९।।

इति चतुर्थ दर्शन

इति सुन्दरकाण्ड ५

रामलीला रामायण

लंकाकाण्ड ६

अथ प्रथम दर्शन

(स्थान सागर तट)

सेतुबंधन–

सो०-"सिन्धुवचन सुनिराम, सचिवबोलि प्रभु अस कहेउ ।।"
राम-अब विलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटक ।।१।।
जाम्ब०-जाम्बवन्त बोले द्वौभाई । नलनीलहि सब कथा सुनाई ।।१।।
राम प्रताप सुमिरि उरमाहीं । करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ।।२।।
राम चरण पंकज उर धरहू । कौतुक एक भालु कपि करहू ।।३।।
धावहु मर्कट विकट वरूथा । आनहु विटप गिरिन के यूथा ।।४।।

(वानर सेतुरचना करते हैं)

दोहा–"अतिउतंग तरु शैलगण, लीलहि लेइँ उठाय ।
आनि देहिं नल नील कहँ, विचरहिं सेतु बनाय ।।१।।

सोरठा–सागर के वचन सुन रान ने मंत्रियों को बुलाकर यह कहा अब विलम्ब क्यों है सेतु बांधो कटक उतरे।।१।। चौ०–जाम्बवन्त ने नल नील दोनों भाइयों को बुलाय सब कथा सुनाई।।१।। कि राम का प्रताप हृदय में स्मरण कर पुल बांधो, प्रयास न होगा।।२।। हे रीक्ष वानरो! राम के चरणकमल हृदय में धरकर यह कौतुक करो।।३।। मर्कटों के विकट वरूथ धावमान हो और पर्वत तथा वृक्ष लाओ।।४।। दोहार्थ–बड़े ऊँचे पर्वत तथा वृक्षों को लीला से ही वानर उठा लेते हैं। वे नल नील को लाकर देते हैं और वे पुल बाँधते हैं।।१।।

राम–परम रम्यसुन्दर यहधरणी । महिमा अमित जाय नहिं वरणी ।।१।।
करिहौं इहां शंभु थापना । मोरे हृदय परम कल्पना ।।२।।
लिंग थापि विधिवत करि पूजा । शिवसमान प्रिय मोहिं न दूजा ।।३।।
शिवद्रोही मम दास कहावै । सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावै ।।४।।

शंकर विमुख भक्ति चह चोरी । सो नर मूढ़ मन्दमति थोरी ।।५।।

दोहा–शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कल्पभर, घोर नरकमहँ बास ।।२।।

जो रामेश्वर दर्शन करिहैं । सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं ।।१।।
जो गंगाजल आनि चढ़ाई । सो सायुज्य मुक्ति नर पाई ।।२।।
रामवचन सबके मन भाये । मुनिवर निजनिज आश्रम आये ।।३।।
चली सेन कछु वरणि न जाई । गर्जहिं मर्कटभट समुदाई ।।४।।
सेन सहित उतरे रघुवीरा । कहि न जाय कछु यूथप भीरा ।।५।।
सिन्धुपार प्रभु डेरा कीन्हा । सकलकपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा ।।६।।

चौ०–रामचन्द्र–यह धरणी परम मनोहर है। इसकी महिमा वरणी नहीं जाती।।१।। यहां शिवजी की स्थापना करूँगा। यह मेरे हृदय में परम संकल्प है।।२।। लिंग थापकर विधिपूर्वक पूजाकर बोले कि शिव के समान कोई दूसरा मुझे प्रिय नहीं है।।३।। जो शिव का द्रोह करे और मेरा दास कहावे, वह मुझे स्वप्न में भी नहीं पा सकता।।४।। जो शिव से विमुख होकर मेरी भक्ति चाहता है वह मूढ़ बड़ा मन्दमति है।।५।। दोहार्थ–शिव का प्रिय मेरा द्रोही हो वा शिव का द्रोह करके मेरा दास बने। वह मनुष्य कल्पपर्यन्त घोर नरक में वास करेगा।।२।।

चौ०–जो रामेश्वर के दर्शन करेंगे, वह शरीर त्यागकर मेरे स्थान में सिधार जायँगे।।१।। जो आनकर गंगाजल चढ़ावेंगे वह सायुज्यमुक्ति पावेंगे।।२।। राम के वचन सबके मन को भाये, सब मुनि अपने अपने आश्रम को गये।।३।। सेना चली कुछ कही नहीं जाती मर्कट भटों के यूथ गर्जते हैं।।४।। सेनासहित श्रीरामचन्द्र उतरे। यूथपों की भीर कही नहीं जाती।।५।। सागर के पार डेराकर प्रभु ने सब वानरों को आज्ञा दी मूल फल खाओ।।६।।

(रामचन्द्र निवास करते हैं)

(स्थान लंकापुरी)

रावण की सभा

बैठेउ सभा खबरि अस पाई । सिन्धुपार सेना सब आई ।।१।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्टिकरि रहहू ।।२।।
मं०–कहहुकवन भय करिय विचारा । नरकपि भालु अहार हमारा ।।३।।
प्र०–सचिवकहहिं सब ठकुरसुहाती । नाथ न पुर आइहि इहि भाँती ।।४।।
वारिधि लांगि एक कपि आवा । तासु चरित मनमहँ सब गावा ।।५।।
क्षुधा न रही तुमहि सब काहू । जारत नगर न सकधरि खाहू ।।६।।

सुनत नीक आगे दुख पावा । मंत्रिन अस मत प्रभुहि सुनावा ।।७।।
सुनु मन वचन तात अति आदर । जनिमन गुणहु मोहिं कर कादर ।।८।।
प्रथम वशीठ पठव सुनु नीती । सीतहि देइ करिय पुनि प्रीती ।।९।।
दोहा—नारि पाय फिर जाहिं जो, तौं न बढ़ाइय रारि ।
नाहिं तो सन्मुख समरमहँ, नाथ करिय हठ मारि ।।३।।
यह मत जो मानहु प्रभु मोरा । उभय प्रकार सुयश जगतोरा ।।१।।
रा०—सुतसन कह दशकंठ रिसाई । असमति तोहि शठकवन सिखाई ।।२।।

रावण की सभा

चौ०—रावण सभा में बैठा खबर पाई कि सागर के पार सब सेना आ गई।।१।। मंत्रियों को बुलाकर कहा कि उचित मत कहो। वे सब हँसे कि मौन हो रहो।।२।। कहो किस भय से विचार करें। नर कपि भालु तो हमारे आहार हैं।।३।। प्रहस्त—हे महाराज! मंत्री तो ठकुरसुहाती कहते हैं पर इसमें पूरा न पड़ेगा।।४।। एक वानर सागर लांघकर आया, मन में सबका उसका चरित्र कहते हैं।।५।। उस समय तुम सबको भूख नहीं रही, नगर जलता रहा, पकड़कर खा न गये।।६।। सुनने में अच्छा पर आगे दुःखदाई, ऐसा मत मंत्रियों ने तुमको सुनाया है।।७।। हे तात! मेरे वचन आदर से सुनो मुझे मन में कातर मत जानिये।।८।। पहले तो नीति के अनुसार एक दूत भेजो फिर सीता को भेजकर प्रीति करो।।९।। दोहार्थ—यदि वह स्त्री को पाकर फिर जायँ तो रार मत करो। यदि न माने तो युद्ध में मार करो।।३।। चौ०—हे प्रभु! जो तुम यह मत मानोगे तो जगत् में दोनों प्रकार तुम्हारा यश होगा।।१।। रावण पुत्र से रिसाकर बोला—मूर्ख! तुझे ऐसी मति किसने सिखाई।।२।।

अबहीं ते उर संशय होई । वेणुवंश सुत भयो घमोई ।।३।।
प्र०—हितमत तोहिं न लागत कैसे । कालविवश कहँ भेषज जैसे ।।४।।

(जाता है और रावण लंका के शिखर पर बैठकर नाच देखता है)

(स्थान सुवेलपर रामचन्द्र विराजमान हैं)

राम—देख विभीषण दक्षिण आसा । घनघमण्ड दामिनी विलासा ।।१।।
मधुर मधुर गर्जत घन घोरा । होयवृष्टि जनु उपल कठोरा ।।२।।
बि०—लंकाशिखर रुचिर आगारा । तहँ दशकंधर केर अखारा ।।३।।
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा । सोइरवसरस सुनहु सुरभूपा ।।४।।
छत्रमेघडम्बर शिर धारी । सोइ प्रभु जलदघटा अतिकारी ।।५।।
मन्दोदरी—श्रवण—ता—टंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ।।६।।

"प्रभु मुसुकान देख अभिमाना । चाप चढ़ाय बान सन्धाना ।।७।।
दोहा–छत्र मुकुट ताटंक सब, हते एक ही बान ।
सबके देखत महि गिरे, मर्म न काहू जान ।।४।।"

(रावण सभा विसर्जन करता है) गया

इति प्रथम दर्शन

अबही से मन में शंका होती है वेणुवंश में तू घमोई (एक वांस का कीड़ा) हुआ।।३।। प्रहस्त बोला–तुमको हित मत इस प्रकार भला नहीं लगता जैसे काल विवश हो औषधि।।४।। चौ०–राम–हे विभीषण! दक्षिण ओर देखो, मेघ घुमड़ रहे, बिजली चमकती है।।१।। मेघ मधुर मधुर गर्जता है, मानो कठोर ओले पड़ेंगे।।२।। विभीषण–हे महाराज! लंका के शिखर पर एक स्थान में रावण का अखाड़ा है, बड़ा विचित्र है।।३।। वहाँ श्रेष्ठ ताल मृदंग बजते हैं हे सुरभूप! वही यह मधुर शब्द है शिर पर।।४।। जो मेघाकार बड़ा छत्र है सो कालीघटा है।।५।। मन्दोदरी के कर्णफूल ही मानो बिजली चमकती है।।६।। यह अभिमान देख प्रभु मुसुकाये और धनुष चढ़ाय बाण संधान किया।।७।। दोहार्थ–छत्र मुकुट कर्णफूल सब एक ही बाण से उड़ा दिये। सबके देखते भूमि पर गिरे, मर्म किसी से न जाना।।४।।

अथ द्वितीय दर्शन

(अंगद गमन)

"इहां प्रात जागे रघुराई । पूछा मत सब सचिव बुलाई ।।१।।
जा०–मंत्रकहौ निजमति अनुसारा । दूतपठाइय बालिकुमारा ।।२।।
रा०–बालितनय बलबुधि गुणधामा । लंका जाहु तात मम कामा ।।३।।
काज हमार तासु हित होई । रिपुसन करहु बतकही सोई ।।४।।"

अंगद–जो आज्ञा! (गया)

(स्थान लंकापुरी)

"पुर पैठत रावणकर बेटा । खेलत रहा सो हुइगइ भेटा ।।५।।
तेहि अंगदकहँ लात उठाई । गहि पद पटक्यो भूमिभ्रमाई ।।६।।"

(रावण की सभा में गयें) (वार्तिक)

अंगद–हे द्वारपाल! जाकर कहो द्वार पर एक दूत आया है।

द्वार०–अच्छा कहता हूँ (गया)

द्वार०–(रावण से) महाराज! एक दूत बाहर खड़ा है।

रावण—तुरंत लाओ।

द्वार०—जो आज्ञा! (जाता है, अंगद को लाता है)

रावणाङ्गदसम्वाद—

कह लंकेश कवन तैं बंदर । मैं रघुवीर दूत दशकंधर ।।७।।
मम जनकहिं तोहिं रही मिताई । तवहित कारण आयउँ भाई ।।८।।

अंगद गमन

चौ०—यहां प्रभातकाल जागकर प्रभु ने मंत्रियों को बुलाय कहा—क्या करें।।१।। जाम्बवन्त ने कहा—वालिकुमार को दूत बनाकर भेजो।।२।। राम—हे वालिपुत्र! तुम बल बुद्धि गुण के धाम हो। मेरे निमित्त लंका जाओ।।३।। हमारा काम और उसका हित हो शत्रु से वही बात करो।।४।। अंगद चले, पुर में प्रवेश करते ही रावण का बेटा खेल रहा था उससे भेंट हो गई।।५।। उसने बात बात में अंगद को लात उठाई। उसको अंगद ने उठाय घुमाय भूमि पर दे मारा।।६।। सभा में जाने पर रावण ने पूछा—हे बन्दर! तुम कौन हो? अंगद—हे रावण! मैं राम का दूत हूं।।७।। मेरे पिता की तुमसे मित्रता थी सो मैं तुम्हारे हित के कारण आया हूं।।८।।

उत्तम कुल पुलस्त्यकर नाती । शिवविरंचि पूजे बहुभांती ।।९।।
बर पायउ कीन्हेउ सब काजा । जीतेउ लोकपाल सुरराजा ।।१०।।
नृप अभिमान मोहवस किम्बा । हरि आनेसु सीताजगदम्बा ।।११।।
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा । सब अपराध क्षमहि प्रभु तोरा ।।१२।।
दशन गहहु तृणकंठ कुठारी । पुरजनसंग सहित निज नारी ।।१३।।
सादर जनकसुतहिंकर आगे* । इहिविधि चलहु सकल भय त्यागे ।।१४।।

दोहा—प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं ।
सुनतहिं आरत वचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं ।।५।।

रा०—रे कपिपोच बोल संभारी । मूढ़ न जानसि मोहिं सुरारी ।।१।।
कहु निज नाम जनककर भाई । केहि नाते मानिये मिताई ।।२।।
अं०—अंगद नाम बालिकर बेटा । तोसों कबहुँ भई धौं भेंटा ।।३।।

---

*घ०—बोले पुनि अंगद अरे मलीन मन्दमति भयो मतवारो तोहिं रञ्चहू न चेत है ।
कायर कलंकी निशिचारी अनाचारी चोर देवदुखकारी दुष्ट पातक निकेत है ।।
सीख या हमारी तू सुरारी शुभकारी मान रसिकविहारी होय भारी तुव हेत है ।
त्याग अभिमान सिय लैकै अगवान गहु राम पद त्रान क्यों वृथा ही प्राण देते हैं।।१।।

रा०–अंगद तुही वालिकर बालक । उपजेउ वंश अनलकुलघालक ।।४।।

तुम्हारा उत्तमकुल पुलस्त्य के नाती हो शिव विरंचि को अनेक बार पूजा है।।९।। वर पाकर अनेक काज किये। लोकपाल और सुरराज जीते हो।।१०।। फिर हे नृप! अभिमान या मोह के वश से तुम जगदम्बा जानकी को क्यों हर लाये?।।११।। अब तुम मेरा शुभ कहा करो, प्रभु तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे।।१२।। दाँतों में तृण कंठ में कुठार धारणकर पुरजन और अपनी नारी संग लो।।१३।। आदर से जानकी को आगे कर तुम सब भय त्यागकर चलो।।१४।। दोहार्थ–और कहो हे दीनों के पालक श्रीराम! मेरी अब रक्षा करो। तुम्हारे आर्त्तवचन सुनते ही प्रभु अभय करेंगे।।५।। चौ०–रावण–रे बंदर के बच्चे! सँभालकर नहीं बोलता रे मूढ़! नहीं जानता कि मैं सुरारी हूं।।१।। पहले अपने पिता का नाम तो कह किस नाते से मित्रता मानता है।।२।। अंगद–मेरा नाम अंगद है बालिपुत्र हूँ तुमसे कभी भेंट हुई है।।३।। रावण–अंगद! तुम्हीं बालि के पुत्र हो अपने वंश के जलाने को अग्नि रूप प्रगट हुए।।४।।

गर्भ न खसेउ वृथा तुम जाये । निज मुख तापस दूत कहाये ।।५।।
अब कह कुशल वालिकहँ अहई । बिहँसि वचन अंगद अस कहई ।।६।।
अं०–दिनदश गये वालिपहँ जाई । पूछँहु कुशल सखा उरलाई ।।७।।
राम विरोध कुशल जस होई । सो सब तुम्हैं सुनाइहि सोई ।।८।।
सुनु शठ भेद होय मन ताके । श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके ।।९।।

दोहा–हम कुलघातक सत्य तुम, कुलपालक दशशीश ।
अंधौ बधिर न कहहिं अस, श्रवण नैन तोहिं बीस* ।।६।।

---

*रागकान्हारा०–तू दशकण्ठ भले कुल उपज्यो ।।टेक।।
तामहँ शिवसेवक विरञ्चिवर भुजबल विपुल जगत यश पायो ।।तू० दश०।।
खरदूषण त्रिशिरा कबन्ध रिपु जेहि वाली यमलोक पठायो ।
ताको दूत पुनीत चरित हरि शम्भु सन्देह कहन हों आयो ।।तू दश०।।
श्रीमद नृप अभिमान मोहवश जानत अनजानत हरि लायो ।
तजि व्यलीक भजु कारुणीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समुझायो ।।तू० दश०।।
याते तव हित होइ कुशलकुल अचल राज चलि है न चलायो ।
नाहिता राम-प्रताप-अनलमहँ ह्वै पतंग परिहै शठ धायो ।।तू दश०।।
यद्यपि अंगद नीति परमहित कह्यो तथापि न कछु मनभायो ।
तुलसिदास सुनि वचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो ।।तू० दश०।।
रावण–तैं मेरो मरम कछु नहिं पायो० ।।टेक।।
रे कपि कुटिल ढ़ीठ पशु पामर मोहिं दास ज्यों डाटन आयो।।तैं।।
भ्राता कुम्भकरण रिपुघातक सुत सुरपतिहि बंदिकर लायो ।

गर्भ ही न गिरा, तुम्हारा जन्म वृथा हुआ। अपने मुख से तपस्वी दूत कहाये।।५।। अच्छा तब वालि की कुशल कहों। हँसकर अंगद ने कहा।।६।। दश दिन पीछे वालिपर जाकर कुशल पूछना।।७।। राम के विरोध करने से कुशल होती है वह तुमको सब सुनावेगा।।८।। हे शठ! यह भेद तो उसके मन में होता है श्रीराम जिसके हृदय में नहीं होते।।९।। दोहार्थ–हे रावण! हम तो कुलनाशक और तुम ही सत्य ही कुलपालक हो, ऐसा तो अंधे बहरे भी न कहेंगे। तुम्हारे कान और नेत्र बीस हैं।।६।।

शिव विरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरण सेवकाई ।।१।।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा । ऐसी मति उर विहर न तोरा ।।२।।
रा०–खल तव वचन कठिन मैं सहऊँ । नीति धर्म सब जानत अहऊँ ।।३।।
अं०–दशशिर धर्मशीलता तोरी । हमहुँ सुनीकृत परतिय चोरी ।।४।।
देखेउँ नैन दूत रखवारी । बूड़ि न मरहु धर्मव्रतधारी ।।५।।
नाक कान विनु भगिनि निहारी । क्षमा कीन्ह तुम धर्म विचारी ।।६।।
रा०–दोहा–जनिजल्पसिजडजन्तुकपि, शठविलोकुममबाहु ।
लोकपाल बल बिपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु ।।७।।
तुम्हरे कटकमाहिं सुन अंगद । मोसनभिरहिं कवन योधावद ।।१।।
तव प्रभु नारि विरह बलहीना । अनुजतासु दुख दुखित मलीना ।।२।।
तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । बंधु हमार भीरु अति सोऊ ।।३।।
जाम्बवन्त मन्त्री अति बूढ़ा । सो किमि होय समर आरूढ़ा ।।४।।
शिल्प कर्म जानत नलनीला । है कपि एक महाबल शीला ।।५।।
आवा प्रथम नगर जेहि जारा । सुनि हँसि बोलेउ वालि कुमारा ।।६।।

शिव, विरंचि, देवता, मुनि जिसके चरणों की सेवकाई चाहते हैं।।१।। उसके दूत बनकर हमने कुल बोरा जो ऐसी मति है तो तेरा हृदय क्यों नहीं फटता।।२।। रावण–रे मूढ़! मैं नीतिधर्म को

–निजभुजबल अति अतुल कहो क्यों कन्दुकलों कैलास उठायो ।।तैं।।
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मनभायो ।
निश्चर रुचिर अहार मनुज तनु ताको यश खल मोहिं सुनायो ।।तैं।।
कहा भया वानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिन्धु बंधायो ।
जो तरि है भुज बीस घोर निधि ऐसो को त्रिभुवन में जायो।।तैं।।
सुनि दशशीश वचन कपिकुञ्जकर विहँसि ईश माथहिं शिरनायो ।
तुलसिदास लंकेश कालवश गनत न कोटि यतन समुझायो ।।तैं।।

जानते हैं। हाँ, एक कपि बहुत बली है।।५।। जो पहले आकर नगर जला गया, सुनकर अंगद ने हँसकर कहा।।६।।

अं०-सत्यवचन कह निशिचरनाहा । सांचेउ कीश कीन्ह पुरदाहा ।।७।।
रावण नगर अल्प कपि दहई । को अस झूठ सुनै को कहई ।।८।।
जो अति सुभट सराहेउ रावण । सो सुग्रीवकेर लघु धावन ।।९।।
चलै बहुत सो वीर न होई । पठवा खबर लेन हम सोई ।।१०।।

दोहा-अब जाना पुर दहेउ कपि, बिन प्रभु आयसुपाय ।
गयउ न फिर निजनाथपहँ, तेहि भय रहेउ लुकाय ।।८।।
सत्य कहसि दशकंठ तैं, मोहिं न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस, तुमसन लरत जो सोह ।।९।।
यद्यपि लघुता राम कहँ, तोहिं वधे बड़ दोष ।
तदपि कठिन दशकन्ध सुन, क्षत्रि जातिकर रोष ।।१०।।

रा०-धन्यकीशजे निज प्रभु काजा । जहँतहँ नाचहिं परिहरि लाजा ।।१।।
नाच कूद कर लोक् रिझाई । पतिहित करत कर्म निपुणाई ।।२।।
अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभगुण कस न कहसि इहि भाँती ।।३।।
मैं गण गाहक परम सुजाना । तव कटुवचन करौं नहिं काना ।।४।।

क्या यह वचन सत्य है? सत्य ही तुम्हारा नगर बानर ने जलाया?।।७।। ऐसा छोटा कपि रावण का नगर जलावे, ऐसे झूंठ को कौन कहै सुनेगा।।८।। हे रावण! जिसकी तुमने महायोद्धा कह सराहना की है वह तो सुग्रीव का छोटा दूत है।।९।। जो बहुत चलता है, वह वीर नहीं होता, हमने उसे सुध लेने को भेजा था।।१०।। दोहार्थ-अब जाना कि, बिना प्रभु की आज्ञा के तुम्हारा नगर जलाया, इसी से वह लौटकर न गया, कहीं छिप रहा।।८।। दोहार्थ-हे रावण! तुमने सत्य कहा। मुझे भी सुनकर क्रोध नहीं है। हमारे कटक में ऐसा कोई नहीं जो तुमसे लड़कर शोभा पावे।।९।। यद्यपि तुमसे युद्ध में राम को लघुता है तो भी हे रावण! क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा होता है।।१०।। रावण-चौ०-वानर धन्य हैं जो अपने प्रभु के काज जहां तहा लाज त्याग नाचते हैं।।१।। नाच कूदकर लोगों को रिझाते हैं। अपने स्वामी के निमित्त निपुण कर्म करते हैं।।२।। हे अंगद! तुम्हारी जाति ही स्वामिभक्त है फिर इस प्रकार प्रभु के गुण क्यों न कहोगे।।३।। मैं परम चतुर गुणगाहक हूं। तुम्हारे वचन कान नहीं करता हूं।।४।।

अ०–कहकपितवगुण गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई ।।५।।
वन विध्वंश सुतवध पुर जारा । तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा ।।६।।
सोइ विचार तव प्रकृत सुहाई । दशकंधर मैं कीन्ह ढ़िठाई ।।७।।
देखेउँ आय जो कपि कछु भाषा । तुम्हरै लाज न रोष न माषा ।।८।।
रा०–जो असमति पितुखायउ कीशा । कहिअसवचन हँसादशशीशा ।।९।।
अं०–पितहिखाय खातेउँ अबतोहीं । अबहीं समुझि पराकछु मोहूं ।।१०।।
बालि विमलयश भाजनजानी । हतौं नतोहिं अधम अभिमानी ।।११।।
कहु रावण रावण जग केते । मैं निज श्रवण सुने सुनु* तेते ।।१२।।
बलिजीतन इक गयउ पताला । राखाबांधि शिशुन हयशाला ।।१३।।
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छुड़ाई ।।१४।।
एक बहोरि सहसभुज देखा । धाय धरा जनु जन्तु विशेखा ।।१५।।
कौतुकलागि भवन ले आवा । सो पुलस्त्यमुनि जाय छुड़ावा ।।१६।।

अंगद–तुम्हारी गुणग्राहकता सत्य ही पवनसुत ने मुझे सुनाई थी।।५।। तुम्हारा बन उजार पुत्र मार पुर जार दिया तो भी तुमने उसका कुछ अपकार नहीं किया।।६।। सो इसी तुम्हारे स्वभाव की बड़ाई विचार मैंने भी दर्शन की ढ़िठाइ की।।७।। जो कुछ कपि ने कहा सो आकर देखा। तुम्हारे लाज रोष और मान नहीं है।।८।। रावण–जो ऐसी मति है तभी तो पिता को खा गये, यह कह रावण हँसा।।९।। अंगद–पिता को खाकर अब तुम्हें खाता पर अभी एक समझ आ गई।।१०।। वालि के विमलयश के तुम पात्र हो। हे अधम अभिमानी! इसीसे तुमको नहीं मारता।।११।। कहो तो जगत् में कितने रावण हैं जो मैंने अपने कानों से सुने हैं, सो सुनो।।१२।। एक बलि को जीतने पाताल में गया जिसको बालकों ने घुड़शाला में बांध रखा।।१३।। बालक खेल में जाकर मारते थे, दयामय बलि ने कृपाकर उसे छुड़ाया।।१४।। फिर एक सहस्रबाहु ने देखा जिसे जन्तु के समान पकड़ लिया।।१५।। और कौतुक ने लिये घर ले आये सो पुलस्त्य ने जाकर छुटाया।।१६।।

---

*क०–एक को सहस्रबाहु बांध लै गयो अवास ऐसो त्रास दीनो तोहि कैसेकै सुनाइये ।
दूसरे को राजा बलि बांधि ले गयो पताल दासन के आगे नाचै जोत तव पाइये ।।
तीसरे को वाली मेरो पिता मेरे काज लायो छौना लखि लौना बांध पालने झुलाइये ।
रावण सुने अनेक तिनमें तू कौन एक गरबकी टेक मेरे आगे न जनाइये ।।१।।

दोहा–एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालिकी कांख ।
तिनमहँ रावण कवन तुम, सत्य कहो तजि मांख ।।११।।

रा०–सुनुशठसोइ* रावणबलशीला । हरिगिरिजा सुजान भुजलीला ।।१।।
जान उमापति जासु शुराई । पूजे जेहिशिर सुमन चढ़ाई ।।२।।
शिरसरोज निजकरन उतारी । पूजे अमित बार त्रिपुरारी ।।३।।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जबजबभिरेउँ जाय बरिआई ।।४।।
जिनके दशन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ।।५।।
जासु चलत डोलत इमि धरणी । चढ़इमत्तगजजिमिलघुतरणी ।।६।।
सोइ रावण जग विदित प्रतापी । सुने न श्रवण अलीक प्रलापी ।।७।।

दोहार्थ–एक कहने में तो बड़ा संकोच है कि मेरे पिता की कांख में रहा, उसमें तुम कौन रावण हो अभिमान छोड़ कहो।।१।। चौ०–रावण–हे शठ! मैं वह रावण हूं जिसके भुजबल को कैलास जानता है।।१।। जिसकी शूरता शंकर जानते हैं कि मैंने फूलों के स्थान में अपने शिर शंकर को चढ़ाये।।२।। शिररूपी कमल अपने हाथ से उतारकर अनेक बार शंकर का पूजन किया।।३।। दिग्पाल मेरे हृदय की कठिनता जानते हैं, जब जब उनसे बलकर भिड़ा हूँ।।४।। जिनके कठिन दांत कहीं नहीं टूटे वे मेरे हृदय में लगकर मूली के समान टूट गये।।५।। जिसके चलते में भूमि ऐसी डोलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने से नाव।।६।। सोई रावण बड़ा प्रतापी जगत् में प्रसिद्ध है। हे असम्बद्धप्रलापी! तैंने सुना नहीं।।७।।

दोहा–तेहि रावणकहँ लगु कहसि, नरकर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ज्ञान ।।१२।।

---

* क०–भाई कुंभकरन सनमान जाको करैविधि बल को प्रमाण ताको कैसे उर आनिये ।
पूत मेघनाद जिन इन्द्र आदि जीते सब औरन को बूझ देख कैसेकै बखानिये ।
धार तरवारकी न वज्र से समारी जाय ऐसो चन्द्रहास जाको तेज नभ मानिये ।
ऐसे राजा रावण को तू न पहचानत है आज जाको पौरुष त्रिलोकी माहि जानिये ।।१।।
इन्द्र मेरे माली अशुमाली दरबार पाली तारापति छत्र हाथ लियेई रहत है ।
वरुण समीर मेरो मंदिर बुहारत है नीर अँचवत पाछे जग में बहत हैं ।।
पाक करै पावक प्रवीण वीण लीन्हें ऋषि नारद औ बाकपति सभा में रहत हैं ।
सुनो रामदूत धर एती है विभूत मेरे रावण सुपूत विधि आपन कहत हैं ।।२।।

अं०–सुनिसकोप अंगद कहवानी । बोलसँभार अधम अभिमानी ।।१।।
सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सब जासु कुठारा ।।२।।
जासु परशु सागर खरधारा । बूड़े नृप अगणित बहुबारा ।।३।।
तासु गर्व जेहि देखत भागा । सोनर किमि दशकंठ अभागा ।।४।।
मूढ़ मृषा जनि मारसि गाला । राम विमुख अस होइहिं हाला ।।५।।
तव शिर निकर कपिन के आगे । परिहैं धरणि रामशर लागे ।।६।।
जबहिं समर कोपहिं रघुनायक । छूटहिं अतिकराल बहुसायक ।।७।।
तब कि चलै अस गाल तुम्हारा । अस विचार भजु राम उदारा ।।८।।

राव०–दोहा–कुम्भकरणसम बन्धु मम, सुतप्रसिद्ध शक्रारि ।
मोर पराक्रम सुनेसिनहिं, जितेउँ चराचर झारि ।।१३।।

जोपै समर सुभट तव नाथा । पुनि २ कहसि जासु गुणगाथा ।।१।।
तौ वसीठ पठवा केहि काजा । रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा ।।२।।

दोहार्थ–उस रावण को लघु कहकर नर का बखान करता है रे नीच! छोटे कपि! अब तेरा ज्ञान जाना।।१२।। चौ०–अंगद कोपकर बोले–अरे अधम अभिमानी! सँभालकर बोल।।१।। सहस्त्रबाहु की घनी भुजा भस्म करने को जिसका कुठार अग्निसम है।।२।। जिसके परशेरूप सागर की खरधारा में अनेक बार अनेकों राजा डूबे।।३।। उस परशुराम का गर्व जिसके देखते ही भाग गया हे दशकंठ अभागे! वह मनुष्य कैसे हैं।।४।। हे मूढ़! व्यर्थ गाल मत मारे, राम के विमुख होने से यह हाल होगा।।५।। कि राम के बाण लगने से बानरों के आगे भूमि में तेरे शिर गिर पड़ेंगे।।६।। जब ही युद्ध में रघुनाथजी कोप करेंगें और बड़े बाण छूटेंगे।।७।। तब क्या तुम्हारा यह गाल चल सकता है? ऐसा विचार उदार राम का भजन करो।।८।। दोहार्थ–रावण–कुम्भकर्ण के समान मेरा भाई इन्द्र का जीतनेवाला प्रसिद्ध पुत्र और मेरा पराक्रम नहीं सुना कि मैंने चराचर को जीत लिया है।।१३।। जो तुम्हारे स्वामी समर के सुभट हैं, बारबार जिनके गुणों की कथा कहते हो।।१।। तो दूत किस निमित्त भेजा है, शत्रु से प्रीति करने में लाज नहीं आती।।२।।

हरिगिरि मथन निरखि ममबाहू । पुनिशठकपि निजस्वामि सराहू* ।।३।।

---

*क०–रावण कहत मैं तो रामबल जान्यों एक जाजरो पुरानो शिवधनुष चढ़ायो है ।
दूसरहु सप्तताल छेदे हैं जु कर्मकाल क्यों हूँ बन गई बूढ़ो शाखामृग धायो है ।।

दोहा-शूर कौन रावण सरिस, निजकर काटे शीश ।
हुने अनलमहँ बार बहु, हर्षित साखि गिरीश ।।१४।।
आन वीर को शठ मम आगे । पुनि २ कहसि लाज परित्यागे ।।१।।
अं०-शिर*अरुशैल कथाचित रही । ताते बार बीसतैं कही ।।२।।
सो भुजबल राखेउ उर घाली । जितेउ न सहसबाहु बलिवाली ।।३।।
बाजीगर कहँ कहिय न वीरा । काटै निजकर सकल शरीरा ।।४।।

शिवजी के पर्वत का मान मथनेवाली मेरी भुजाओं को देख फिर अपने स्वामी की सराहना करना।।३।। दोहार्थ-रावण के समान शूर कौन है जिसने अपने हाथ से शिर काट प्रसन्नता से अनेक बार अग्नि में होम दिये, शिवजी इसके साक्षी हैं।।१४।। चौ०-हे शठ! मेरे आगे दूसरा वीर कौन है जो तू बार बार लाज त्याग ऐसा कहता है।।१।। अंगद-शिर और शैल की कथा चित्त में रही इसी से वह तुमने बीस बार कही है।।२।। सो वह भुजाओं का बल हृदय में ही धारण किये रहे, सहस्रबाहु बली और वालि को न जीता।।३।। बाजीगर वीर नहीं कहा जाता, वह अपने हाथ से सब शरीर काटता है।।४।।

दोहा-जरहिं पतंग विमोह वश, भार बहहिं खरवृन्द ।
ते नहिं शूर कहावहीं, समुझि देखि मतिमंद ।।१५।।
दशमुख मैं न वसीठी आयउँ । अस विचार रघुवीर पठायउँ ।।१।।
बार बार इमि कह्यो कृपाला । नहिं गजारियश बधे शृगाला ।।२।।
मनमहँ समुझि वचन प्रभुकेरे । सहउँ कठोर वचन शठ तेरे ।।३।।
नाहिंतकर मुखभंजन तोरा । ले जातेउँ सीतहिं बरजोरा ।।४।।

-लाखन निहोरे कर तेरे मेरे पांयपर लैल कपि रीछ नीर वारिधि पठायो है ।
अंगद विकलवाके एई चारो बलताके आए लंक चौगुनो चबाव तैं चलायो है ।।१।।
और एक पैंडे चली जाती ताड़का निपाती ताके मारे शूरन को बड़ा उपहास है ।
कञ्चन के लोग मृग कंचन को मारयो मुनि यह कछु और कपि पौरुष विश्वास है ।
मेरे भुजदण्ड के प्रतापं को न जाने राम इन्द्र यम वरुण कुबेर मानैं त्रास है ।
तापर तो लंककी निशंक चल्यो आवत है प्राण से उदास पै न सीता ते उदास है।।२।।
* क०-जौलौं दशशीश भुजबीस न नशाय तौलौं चार दिन औरहु अनन्द उर धरिले ।।
ये रे मतिमन्द निज वीरता बढ़ाय झूठी सकल बृथा ही अभिमान हीय भरिले ।।
रसिकबिहारी तोहि जनता जहान जैसो होवें जो लबारी तिनै फेरिहू उबरिले ।।
और तो न कोऊ तो को नेकहू सराहै यातै आपनी बड़ाई तू घनेरी आप करिले ।।१।।

दोहा—तोहिं पटकिमहि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ ।
मन्दोदरी समेत शठ, जनकसुतहि लै जाउँ ।।१६।।
रा०—रेकपि पोचमरण अबचहसी । छोटे बदन बात बड़ कहसी ।।१।।
कटुजल्पसिजड़ कपिबल जाके । बुधि बल तेज प्रताप न ताके ।।२।।
दोहा—अगुण अमान विचार तेहि, दीन्ह पिता बनवास ।
सो दुख अरु युवती विरह, पुनि निशि दिन मम त्रास ।।१७।।
दोहा—जिनके बल को गर्व तोहिं, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहिं निशाचर दिवसनिशि, मूढ़* समुझि तज टेक ।।१८।।

दोहार्थ—मोहवश पतंग दीपक पर जला करते हैं, गदहे भार वहन करते हैं, हे मतिमंद! समझ देख वे शूर नहीं कहाते हैं।।१५।। चौ०—हे रावण! मैं दूत बनकर नहीं आया हूँ, ऐसा विचारकर रघुनाथजी ने कहा है।।१।। बार बार रघुनाथजी ने यह कहा है सिंह का यश शृगाल के मारने से नहीं होता।।२।। वह प्रभु के वचन मन में समझकर हे शठ! तेरे कठोर वचन सहता हूँ।।३।। नहीं तो तेरा मुख भंजनकर बरजोरी सीता को ले जाता।।४।। दोहार्थ—तुझे भूमि में पटककर और तेरी सेना को मार तेरा गांव चौपट कर हे शठ! मंदोदरी समेत जानकी को ले जाता।।१६।। चौ०—रावणरेकपि! नीच अब मरना चाहता है जो छोटे मुख से बड़ी बात कहता है।।१।। हे कपि! जिसके बल से तू यह कल्पना करता है उसके बुद्धि बल तेज प्रताप नहीं है।।२।। दोहार्थ—अगुण अमान विचार कर तो पिता ने वनवास दिया वह दुःख, युवती का विरह और फिर दिनरात मेरा त्रास।।१७।। जिनके बलका तुझको गर्व है ऐसे मनुष्य बहुत हैं निशाचर उनको दिनरात खाते हैं हे मूढ़! समझ और टेक छोड़।।१८।।

(अंगद क्रोधित होता है पृथ्वी पर हाथ मारता है, सभासद उलटेमुख गिर पड़ते हैं)

अं०—राममनुज बोलत असबानी । गिरत न तव रसना अभिमानी ।।
गिरिहै रसना संशय नाहीं । शिरन समेत समर महिमाहीं ।।२।।
मैं तव दशन तोरिबे लायक । आयसुपै न दीन्ह रघुनायक ।।३।।
अस रिस होत दशौं मुख तोरौं । लंका गहि समुद्र में बोरौं ।।४।।

---

* घ०—येरे कपि मूढ़ क्यों बखानत बड़ाई बहु जाहिर जहानमाहिं जेतो हाल सारो है ।
रसिकबिहारी तू वही है जो पिता को नेकु बदलो न लीनो और सुकंठ साथ धारो है ।।
सुकंठसो जो बालि डरते भगो है बालि सोई जाहि राम एक बाण हीते छिन मारो है ।
सोई राम जाको देखि निपट निकाम बन्धु वामके समेत बाप धामते निकारो है ।।१।।

गूलरफल समान तव लंका । बसहिं मध्य जनजन्तु अशंका ।।५।।
मैं वानर फल खात न बारा । आयुस दीन्ह न राम उदारा ।।६।।
रा०–वालिकबहुँ असगालन मारा मिलितपसिनतैं भयउ लबारा ।।७।।
अं०–सांचहु मैं लबार भुजवीहा । जो न उपारौं तव दशजीहा ।।८।।
"रामप्रताप सुमिरिकपिकोपा । सभामांझ करिप्रणपदरोपा ।।९।।"
जो मम चरण सकहि शठ टारी । फिरहिं राम सीता मैं हारी ।।१०।।
रा०–सुनहुसुभट सबकहदशशीशा । पदगहि धरणि पछारहुकीशा ।।११।।

चौ०–अंगद–हे अभिमानी! तू राम को मनुष्य कहता है? तेरी रसना नहीं गिरती?।।१।। इसमें सन्देह नहीं समरभूमि में शिरों समेत तेरी रसना गिरेगी।।२।। मैं तेरा मुख तोड़ने योग्य हूँ पर रघुनाथजी की आज्ञा नहीं है।।३।। रिस ऐसी होती है दशों मुख तोड़ लंका लेकर समुद्र में बोर दूं।।४।। यह सब लंका गूलर के फल के समान है इसमें राक्षस रूपी जन्तु अशंक रहते हैं।।५।। मैं वानर फल खाते देर न लगाऊंगा। पर क्या करूं? राम की आज्ञा नहीं है।।६।। रावण–वालि ने कभी ऐसा गाल नहीं मारा, तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया।।७।। अंगद–हे रावण! यदि मैं तेरी बीस जीभ न उखाड़ं तो अवश्य लबार हूं।।८।। राम का प्रताप समझकर कपिने कोप किया। सभा में प्रण करके पग रोपा।।९।। कि जो शठ मेरा चरण इस स्थान से चलायमान कर दे तो राम फिर जायँगे, सीता मैंने हारी।।१०।। रावण–हे सब योद्धाओं! सुनो चरण पकड़कर भूमि में वानर को डाल दो।।११।।

(इन्द्रजीत आदिक बलवान योद्धा चरण उठाते हैं जब नहीं उठा
तब रावण ही उठाता है)

अं०–गहतचरण कह वालिकुमारा । मम पद गहे न तोर उबारा ।।१२।।
गहसि न रामचरण शठ जाई । सुनत फिरामन अति सकुचाई ।।१३।।
अबही मुखका करौं बड़ाई । हतिहौं तोहिं खिलाय खिलाई ।।१४।।
दोहा–रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, वालितनय बलपुंज ।
सजलनैन तनु पुलक अति, गहे रामपद कंज ।।१९।।

रावण मन्दोदरी सम्वाद (गये)

मं०–कंतसमुझिमनतजहुकुमतिही । सोह न समर तुमहिं रघुपतिही ।।१।।

---

* अब देखो रामजी धुजा फहरानी ।।
हलकत ढ़ाल फडक्कत तेगा गरद उठी असमानी ।

राम अनुज धनुरेख खिंचाई । सो नहिं लाँघेउ असिमनुसाई ।।२।।
पिय तेहिते जीतब संग्रामा । जाके दूतन के अस कामा ।।३।।

रावण के चरण पकड़ने पर अंगद ने कहा–मेरे चरण पकड़ने से तेरा उद्धार नहीं होगा।।१२।। हे मूढ़! राम के चरण जाकर नहीं पकड़ता, सुनकर मन में सकुचाकर रावण लौटा।।१३।। अंगद–अवही बहुत क्या बड़ाई करूं, तुझको खिला खिलाकर मारूँगा।।१४।। दोहार्थ–इस प्रकार शत्रु का बल चूर्णकर मन में प्रसन्न हो बलनिधान बालिपुत्र ने आय प्रभु के चरण गहे।।१९।। चौ०–मन्दोदरी–हे कन्त! मन में समझकर कुमति त्यागो। तुम्हारा और राम का समर शोभा नहीं देता।।१।। राम के छोटे भ्राता ने धनुष की रेख खैंची थी वह भी तुमसे नहीं लांघी गई, यह तो वीरता है।।२।। हे स्वामी! उससे संग्राम जीतोगे जिसके दूतों के यह काम हैं कि।।३।।

रखवारे हति विपिन उजारा । देखत तुमहिं अक्ष जिन मारा ।।४।।
जाहि नगर जेहि कीन्हेसि क्षारा । कहां रहा बल गर्व तुम्हारा ।।५।।
पियरघुपतिहि मनुज जनिजानहु । अगजग नाथ अजित अजमानहु ।।६।।
बाणप्रताप जान मारीचा । तासु कहा नहिं मानेहु नीचा ।।७।।
जनकसभा अगणित महिपाला । रहेउ तहां बल गर्व विशाला ।।८।।
भंजि धनुष जानकी विवाही । सक संग्राम जीति को ताही ।।९।।
सुरपति सुत जाना बल थोरा । राखा जियत आंख इक फोरा ।।१०।।
शूर्पणखा की गति तुम देखी । तदपि हृदय नहिं लाज विशेखी ।।११।।

दोहा–वध विराध खरदूषणहिं, लीला हतेउ कबंध ।
बालि एक शर मारेऊ, तेहि जानहु दशकन्ध ।।२०।।

–लक्ष्मण वीर बालिसुत अंगद हनूमान अगवानी ।।
कहत मंदोदरि सुनि पिय रावन कौन कुमति सिय आनी ।
जेहि सागर को मान करत हो तापर शिलातरानी ।।
तिरिया जात बुद्धि की ओछी उनकी करत बड़ाई ।।
ध्रुवमण्डल से पकड़ मँगाऊँ वे तपसी दोउ भाई
हनुमान से पायक उनके लछमन से बलभाई ।
जलती अगन में कूद पड़ेंगे शोच कभू नहिं पाई ।।
मेघनाद से पुत्र हमारे कुम्भकर्ण से भाई ।।
एक वेर सन्मुख होय लरिहैं युग युग होय बड़ाई ।।
यक लख पूत सवा लख नाती मीचु आपुनी आनी ।
अग्नि के स्वामी लंका घेरी अजहुँ समझ अभिमानी ।।१।।

जेहि जल नाथ बँधायउ हेला । उतरे कपिदलसहित सुबेला ।।१।।
कारुणीक दिनकर कुलकेतू । दूत पठायउ तव हित हेतू ।।२।।
सभामाँझ जेइँ तव बल मथा । करि बरूथ महँ मृगपति यथा ।।३।।
अंगद हनुमत अनुचर जाके । रणबाँकुरे बीर अति बांके ।।४।।
तेहि कहँ पिय पुनि २ नरकहहू । वृथा मान ममता मद गहहू ।।५।।

रखवारों को मारकर वन उजाड़ा। तुम्हारे देखते ही अक्ष को मारा।।४।। नगर जलाय क्षार कर दिया। तुम्हारा बल गर्व कहाँ रहा।।५।। हे स्वामी! राम को मनुष्य मत जानो, अगजगनाथ अजित और अज मानो।।६।। देखो मारीच बाण का प्रताप जानता था, उसका कहना नीचतावश तुमने न माना।।७।। जनक की सभा में अनेक राजा थे और बल गर्व में विशाल तुम भी थे।।८।। वहां राम ने धनुष तोड़ जानकी विवाही उनको संग्राम में कौन जीत सकता है।।९।। इन्द्रपुत्र ने थोड़ा बल जाना तब उसकी एक आंख फोड़ कर छोड़ दिया।।१०।। शूर्पणखा की तुमने गति देखी तो भी हृदय में लाज नहीं आती।।११।। दोहार्थ–विराध और खरदूषण को मार लीला से ही कबन्ध को मार दिया तथा वालि को एक ही बाण से मार दिया। ऐसा पुरुष हैं सो उसे जानो।।२०।। चौ०–जिसने खेल से ही सागर बांध लिया, कपिदलसहित सुबेल पर डेरा किया।।१।। उन दयामय भगवान् ने तुम्हारे हित निमित्त दूत भेजा।।२।। उसने हाथियों में सिंह के समान सभा में तुम्हारा बल मथन किया।।३।। जिसके अंगद हनुमान् से अनुचर रण के बांके बड़े वीर हैं।।४।। हे पिय! बारंबार उनको नर कहते हो। तुम वृथा मान और ममता करते हो।।५।।

अहह कन्त कृत रामविरोधा । काल विवश मन उपजनबोधा ।।६।।
निकटकाल जेहि आव गुसांई । तेहि भ्रम होय तुम्हारी नांई ।।७।।

दोहा–दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहुँ पूरि पियदेहु ।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ विमलयश लेहु ।।२१।।

रा०–रिपुकररूप सकलतैं गावा । अतिविशालभय मोहिं दिखावा ।।१।।
सो सब प्रिया सहज वस मोरे । समुझि परा प्रभाव अब तोरे ।।२।।
जानेउँ प्रिय तोरि चतुराई । इहिमिसि कहेउ मोरि प्रभुताई ।।३।।

इति द्वितीय दर्शन (सभा को जाता है)

---

* अहंकार तजि अमर न हुई हौं समझै तू ना रानी री ।।
जाको जप तप योग रटत हैं तीरथ जिन्हैं नवावैं ।।
ब्रह्मा इन्द्र सकल मुनि मिलिकै शेष पार नहिं पावैं ।।
शंकर ध्यान धरत युग बीते तेहु दरश न पावैं ।।
सो रघुनाथ संग कपिदल ले घर बैठे पायेरी ।।१।।
एक चोट सन्मुख हुइ लरिहौं पौरुष उन्हैं दिखैहौं ।

हे कन्त! राम से विरोध करते हो। काल के विवश मन में बोध नहीं होता।।६।। हे गोसाईं! जिसके समीप काल आता है तुम्हारी ही समान उसको भ्रम होता है।।७।। दोहार्थ–दो पुत्र मारे, पुर जलाया। अब तो समझ करो। कृपासागर रघुनाथ का भजन कर हे नाथ! निर्मल यश लो।।२१।। चौ०–रावण–तुमने सब शत्रु का रूप गाया और मुझे बड़ा भय दिखाया।।१।। हे प्रिया! सो सब मेरे वश में है अब तैने प्रभाव जाना।।२।। हे प्रिया! मैंने तेरी चतुराई समझी, इस बहाने मेरी प्रभुताई कही है।।३।।

इति द्वितीय दर्शन

अथ तृतीय दर्शन

स्थान सुवेलपर्वत

(राम लक्ष्मण जाम्बवन्त वानर भालु की सेना स्थित है)

राम–लंका बाँके चारि दुआरा। केहि विधि लाँघिय करहु विचारा।।

(वार्ता)

जा०–महाराज सेना के चार भाग बनाकर चारों द्वार लंकापुरी को घेर लो।

राम–तो अभी वानरों को आज्ञा दो।

सु०–जो आज्ञा (वानरों से) हे वानरो! अभी जाय लंका के द्वार तोड़ दो।

(वानर जाकर लंका घेरते हैं)

राव०–देखहु वनरन केरि ढिठाई। यातुधान सुनि सेन बुलाई।।२।।

–काटि पिशाच खेत ले डारौं सो रण नदी बहैहौं।।
चढ़त कबंध वीर सब जूझैं हरि हथियार गहैहौं।
कीरति चलै जुगाजुग मेरी तो शिवभक्त कहैहौं री।।२।।
चौंसठ युगलौं राज किया है सुख समाज कियो भारी।
तीनों लोक जीत वश कीन्हें सुर मुनि आज्ञाकारी।।
अब मोहिं उचित मिले नहिं शोभा मैं रावण हंकारी।
कुल कुटुम्ब कहिवेको हुइहैं युग युग मिटत न गारी री।।३।।
तुलसी कह मिथ्या नहिं भाषौं मान वचन हित मोरा।
एकदिना सागर के तटपर प्रबल युद्ध कियो घोरा।।
कुलकुटुम्बपरिवारसकल मिल पीछे पग नहिं मोरा।
जब रघुनाथ काट दशमस्तक लेकर सियासिधारे री।।४।।

आये कीश काल के प्रेरे । क्षुधावन्त रजनीचर मेरे ॥३॥
सुभट सकल चारहु दिशि जाहू । धरि धरि भालु कीश सब खाहू ॥४॥
जो रणविमुख फिरा मैं जाना । तेहि मारिहौं कराल कृपाना ॥५॥

(राक्षस चलते हैं और वानरों के साथ संध्या तक युद्ध होता है। वानर लंका को खण्ड खण्ड करते हैं। सन्ध्या को सब अपने अपने स्थानों को जाते हैं।)

रावण की सभा

रा०-आधाकटककपिन्हसंहारा । कहहु वेगि का करिय विचारा ॥६॥
माल०-जबते तुम सीता हर आनी । अशकुन होहिं न जात बखानी ॥७॥
वेद पुराण जासु यश गावा । तासुविमुख सुख काहु न पावा ॥८॥

स्थान सुवेलपर्वत

टीका-लंका के बड़े बड़े चार दरवाजे हैं वह कैसे लांघे जावेंगे यह विचार करो॥१॥ वानरों की ढिठाई देखो, यातुधान ने सुनकर सेना बुलाई॥२॥ यह वानर काल के प्रेरे आये हैं, मेरे राक्षस इनके भूखे हैं॥३॥ सब ओर को हमारे योद्धा जायँ और रीछ वानरों को पकड़ पकड़ कर खा जायँ॥४॥ जिसको मैंने सुना है कि, युद्ध से विमुख हुआ है उसे तीक्ष्ण खड्ग से मारूंगा॥५॥ रावण-वानरों के आधाकटक संहारा अब कहो क्या विचार करें॥६॥ मालवन्त-जब से तुम जानकी को हर लाये हो, बड़े अपशकुन होते हैं। कहे नहीं जाते॥७॥ वेद पुराण जिसका यश गाते हैं उससे विमुख होने से किसी को सुख नहीं मिलता॥८॥

परिहरि वैर देहु वैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥९॥
रा०-बूढ़भय सिनती मरतेउँ तोहीं । अबजनि बदन दिखावसि मोहीं॥१०॥
"सो उठि गयउ कहत दुर्वादा । तब सकोप बोल्यो घननादा ॥११॥
कौतुक प्रात देखिहौ मोरा । करिहौं बहुत कहतहौं थोरा ॥१२॥

(प्रभात में फिर युद्ध होता है और मेघनाद युद्ध को चलता है)

मे०-कहँकौशलाधीशदोउभ्राता । धन्वी सकललोक विख्याता ॥१३॥
कहँ नलनील द्विविद सुग्रीवा । कहँ हनुमत अंगदबलसीवा ॥१४॥
कहां बिभीषण भ्राता द्रोही । आजु शठहि हठ मारहुँ ओही ॥१५॥
असकहि कठिन बाण संधाने । अतिशय कोपि श्रवण लगि ताने ॥१६॥

दोहा-मारिसि दश दश विशिख उर, परे भूमि सब वीर ।
सिंहनाद करि गर्ज तब, मेघनाद रणधीर ॥२२॥

(महायुद्ध करता है)

दोहा–आयसु मांगि रामपहँ, अंगदादि कपि साथ ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाय रामपद माथ ।।२३।।

लक्ष्मण मेघनाद दोउ योधा । लरत परस्पर करि अतिक्रोधा ।।१।।

वैर छोड़कर जानकी दो परम स्नेही कृपानिधि का भजन करो।।९।। रावण–अरे मूढ़! बड़ा हो गया नहीं तो मैं तुझे मारता, अब मुझे मुख मत दिखावे।।१०।। वह दुर्वचन कहता उठ गया तब क्रोधकर मेघनाद बोला।।११।। प्रभात समय मेरा कौतुक देखना, करूंगा बहुत, कहता हूं थोड़ा।।१२।। मेघनाद–कौशलाधीश दोनों भाई लोक विख्यात धनुषधारी कहां हैं।।१३।। नल नील द्विविद सुग्रीव हनुमान बलसीव अंगद कहाँ हैं।।१४।। भ्राता से द्रोह करनेवाला विभीषण कहाँ है, आज हठ से उस शठ को मारूंगा।।१५।। यह कह कठिन बाण सन्धान किये और कोपकर कानों तक तानें।।१६।। दोहार्थ–दश दश बाण सबके हृदय में मारे सब वीर भूमि पर गिरे तब रणधीर मेघनाद सिंहनाद कर गर्जने लगा।।२२।। तब रघुनाथजी से आज्ञा मांग अंगदादि कपियों के साथ ले राम के चरणों में माथा नवाय कोप कर लक्ष्मण चले।।२३।। चौ०–लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा परस्पर क्रोध करकर लड़ते हैं।।१।।

क्रोधवंत तब भयउ अनंता । भंजेउ रथ सारथी तुरंता ।।२।।
रावणसुत निजमन अनुमाना । संकट भये हरहि मम प्राना ।।३।।
वीरघातिनी छांडेसि सांगी । तेजपुंज लक्ष्मण उर लागी ।।४।।
मूर्छा भई शक्ति के लागे । तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ।।५।।

दोहा–मेघनाद सम कोटि शत, योधा रहे उठाय ।
जगदाधार अनन्तसो, उठहिं न चला खिसाय ।।२४।।

(महावीर लक्ष्मण को लाते हैं। रामचन्द्र दुःखी होते हैं)

(वार्त्ता)

जा०–हे महावीर! तुम अभी जाओ, लंका से सुखेन वैद्य को लाओ।

महा०–अभी जाता हूं, भवनसमेत उठाये लाता हूं।

(सुखेन को भवन समेत लाते हैं)

सुखेन–लक्ष्मण की नाड़ी देख हे महावीर! तुम द्रोणाचल पर्वत पर जाओ और सजीवन मूल लेकर आओ।

महा०–मैं अभी जाता हूं। (गया)

रावणकालनेमि संवाद

रा०–हे कालनेमि! तुम जाकर मार्ग में हनुमान को मायाकर प्रभात तक बिलमाओ।

का०-देखत तुमहिं नगर जेहिजारा । तासु पन्थको रोकनहारा ।।१।।
भजि* रघुपतिहि करहुहित अपना । तजहु नाथ अब वृथा कल्पना ।।२।।

तब लक्ष्मण ने क्रोध कर उसका रथ सारथी नष्ट किया।।२।। तब मेघनाद ने विचारा अब यह संकट पड़ने से मेरे प्राण हरेंगे।।३।। तब बीरघातिनी सांग छोड़ी, वह तेज की पुंज लक्ष्मण के हृदय में लगी।।४।। शक्ति के लगने से मूर्च्छा हुई तब भय त्याग समीप गया।।५।। दोहार्थ-लक्ष्मण को मेघनाद के समान अनेक योद्धा उठा रहे थे पर वह जगदाधार अनन्त कैसे उठैं न उठे तब खिसियाकर चला।।२४।। चौ०-तुम्हारे देखते देखते जिसने नगर जला दिया उसका मार्ग कौन रोक सकता है।।१।। तुम रघुनाथ का भजन कर अपना हित करो, यह व्यर्थ कल्पना छोड़ो।।२।।

कालव्यालकर भक्षक जोई । सपनेहु समर कि जीतिय सोई ।।३।।

रा०-जो मैं कहूं सो करो ज्ञान सिखाओगे तो मार दूंगा, अभी जाकर माया रचो।
का०-तो अभी जाता हूं (गया) और आश्रम बनाय बैठा ।
मं०-(आश्रम को देख) हे मुनिराज! प्रणाम है मुझे प्यास लगी है थोड़ा जल दो।

का०-होतमहारणरावणरामहिं । जीतहिं राम न संशय या महिं ।।४।।
यहां भये मैं देखहु भाई । ज्ञानदृष्टि बलमोहि अधिकाई ।।५।।
'मांगा जल तेहि दीन्ही कमंडल । कहकपि नहिं अघाउँ थोरेजल ।।६।।"
का०-सरमज्जनकर आतुर आवहु । दीक्षा देहुँ ज्ञान जे पावहु ।।७।।
दोहा-"सर पैठत कपिपद गहे, मकरी अति अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु, चली गगन चढ़ि यान ।।२५।।"
म०-कपितव दरश भयउँ निष्पापा । मिटातात मुनिवरकर शापा ।।१।।
मुनि न होय यह निशिचर घोरा । मानहु सत्य वचन कपि मोरा ।।२।।

---

* भजन-नाथ नेकु जौ शासन पाऊँ ।
तो चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा शिर नाऊँ ।।
-कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृतकुंड महि लाऊं ।
भेद भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दे ताऊं ।।
विबुध वेद बरबस आनो धरि तो प्रभु अनुग कहाऊं ।
पटकौं मीज नीज मूषक ज्यों सबहि को पाय बहाऊं ।।
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेक विलम्ब न लाऊं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भाऊं।।१।।

"असकहिगई अप्सरा जबहीं । निशिचर निकट गयो कपि तबहीं ।।३।।"

ह०–पहले मुनि गुरुदक्षिणा लेहू । पाछे हमहिं मंत्र तुम देहू ।।४।।

जो कालरूपी सर्प को भी खा जाता है, क्या उससे कोई स्वप्न में भी समर जीत सकता है।।३।। कालनेमि–राम और रावण में बड़ा युद्ध होता है। राम जीतेंगे, इसमें सन्देह नहीं।।४।। मैं यहां बैठे ही देखता हूं मुझे ज्ञानदृष्टि का बड़ा बल है।।५।। तब जल मांगने से कमण्डलु दिया। महावीर बोले–थोड़े जल से प्यास नहीं बुझेगी।।६।। कालनेमि–अच्छा सरोवर में मज्जन कर शीघ्र जाओ, ऐसी दीक्षा दूंगा जिससे ज्ञान पाओगे।।७।। दोहार्थ–महावीरजी के सरोवर में प्रवेश करते ही एक मकरी ने उनका चरण पकड़ा और व्याकुल हुई। महावीर के मारने पर वह दिव्ययान में चढ़ दिव्यरूप धर आकाश को गई और बोली।।२५।। चौ०–हे कपि! मैं तुम्हारे दर्शन से निष्पाप हुई मुनिराज का शाप मिट गया।।१।। यह मुनि नहीं घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो।।२।। यह कह जब अप्सरा गई तब महावीरजी मुनि के समीप गये।।३।। हनु०–हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा लो। पीछे तुम मंत्र दो।।४।।

शिर लंगूर लपेट पछारा । निज तनु प्रगटसि मरतीबारा ।।५।।

(पर्वत पर जाकर औषधि न पहचानकर पर्वत उखाड़कर अयोध्या की ओर को आते हैं)

दोहा–"देखा भरत विशाल अति, निशिचर मन अनुमानि ।
विनु फर शर तकि मारेउ, चाप श्रवनलगि तानि ।।२६।।

परेउ मूर्च्छि महिलागत सायक । सुमिरत राम नाम रघुनायक ।।१।।
सुनि प्रिय वचन भरत उठि धाये । कपिसमीप अति आतुर आये ।।२।।

यह कह शिर पर लंगूर लपेट पछाड़ा और उसने मरती बार अपना शरीर प्रगट किया।।५।। दोहार्थ–भरत ने इनको विशाल देखकर मन में निशाचर मान धनुष पर बिना फर का बाण चढ़ाकर तककर मारा ।।२६।। चौ०–बाण के लगते ही मूर्च्छित हो भूमि पर गिरे लंगूर पर पर्वत रहा। राम राम रघुनायक का स्मरण करने लगे।।१।। यह प्रिय वचन सुन भरत उठ दौड़े और बड़ी शीघ्रता से कपि के समीप आये।।२।।

---

* भजन–कौतुकही कपि कुधर लियो है ।।टेक।।
चल्यो नभनाइ माथ रघुनाथहि सरिस न वेग वियो है।।कौतु०।।
देख्यो जात जानि निशिचर विनु फर शर हयो हियो है ।।
परचो कहि राम पवन राख्योगिरि पुरतेहि तेज पियो है।।कौ०।।
जाइ भरत भरि अंक भेंट निज जीवन दान दियो है ।
दुख लघु लषण परम घायल मुनि सुख बड़ो कीश जियो है।।कौ०।।

भ–जेहिविधि राम विमुख मोहिं कीन्हा । तेहि पुनि यह दारुण दीन्हा ।।३।।
जो मोरे मन वच अरु काया । प्रीति रामपद कमल अमाया ।।४।।
तो कपि होउ विगतश्रम शूला । जो मोपर रघुपति अनुकूला ।।५।।

(महावीरजी उठ बैठते हैं)

तात कुशलकहु सुखनिधानकी । सहित अनुज अरु मातु जानकी ।।६।।
"कपि सब चरित संक्षेप बखाने । भये दुखी मनमें पछिताने ।।७।।
भ०–अहह दैव मैं कत जग जायउँ । प्रभुके एकौ काज न आयउँ ।।८।।
तात गहरु होइहि तोहि जाता । काज नशाई होत प्रभाता ।।९।।
चढ़ मम सायक शैल समेता । पठवों तोहिं जहँ कृपानिकेता ।।१०।।
ह०–तव प्रताप उर राखि गुसाईं । जैहों नाथ बाणकी नाईं ।।११।।

दोहा–तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहों नाथ तुरंत ।
अस कह आयसु पाय पद, वंदि चले हनुमंत ।।२७।।

अर्धरात गइ कपि नहिं आवा । राम उठाय अनुजउर लावा ।।१।।

आयुस इतहि स्वामि संकट उत परत न कछू कियो है।।
तुलसिदास बिहंरचो प्रकाश सो कैसेकै जात सियो है।।कौ०।।
सुमित्रा–सुनि रणघायल लषण परे हैं।।टेक।।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं।।सु०।।
सुवन शोक संतोष सुमित्रहिं रघुपति भगति वरे हैं ।
छिनछिन मातु सुखाति छिनहिं छिन हुलसनि होत हरे हैं।।सुनि०।।
कपिसों कहत सुभाय अम्बके अम्बु भरे हैं ।
रघुनंद बिनु बंधु कुअवसर यद्यपि धनुष धरे हैं।।सु०।।
तात जाहु कपिसंग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं ।।
प्रमुदित पुलकित नैन परे जनु विधिवश सुढ़र ढ़रे हैं ।।सु०।।
अब अनुज गति लखि पवनजन भरतादि गलानि गरे हैं ।
हुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ।।सु०।।२।।

राग केदारा–राम लषण उर लाय लये हैं ।।टेक।।
भरे नीर राजीव नयन सब अंगपर ताव तये हैं ।
कहत सशोक विलोकि बन्धुमुख वचन प्रीति गथये हैं ।।रा०।।

स्थान राम का शिविर

भरत–जिस विधाता ने मुझे राम से विमुख किया उसीने मुझे वह दारुण दुःख दिया।।३।। जो मेरे वचन कर्म से राम के चरणों में अमायिक प्रीति है।।४।। तो यह कपि श्रम और शूलरहित हो जाय।।५।। हे तात! सुखनिधान की कुशल कहो अनुज माता जानकी कुशल हैं।।६।। कपि ने सब चरित्र संक्षेप से वर्णन किये तब सुनकर दुःखी हो मन में पछताये।।७।। हा विधाता! मैं जगत् में क्यों उत्पन्न हुआ जो प्रभु के एक काम भी नहीं आया।।८।। हे तात! तुमको जाते में देर होगी और प्रभात होते ही काज नाश हो जायगा।।९।। मेरे बाण पर तुम शैल समेत चढ़ो मैं कृपासागर के समीप भेज दूंगा।।१०।। हनूमान– हे गोसाईं! आपका प्रताप हृदय में धरकर बाण के समान ही जाऊंगा।।११।। दोहार्थ-हे नाथ! तुम्हारा प्रताप हृदय में रखकर तुरन्त जाऊंगा यह कह आज्ञा पाय पद वन्द हनूमान चले।।२७।। चौ०–अर्धरात तक जब महावीर नहीं आये तब राम ने लक्ष्मण को उठाय हिये लगाया।।१।।

रा०-सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।२।।
मम हित लागि तजे पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतपवाता।।३।।
सो अनुराग कहां अब भाई। उठहु न सुनि मम वच विकलाई।।४।।
जो जनतेउँ वन बन्धु विछोहू। पितावचन मनतेउँ नहिं ओहू।।५।।
सुतवित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।६।।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता।।७।।
यथा पंख विनु खगपति दीना। मणिविनु फणिकरिवर करहीना।।८।।
अस मम जिवन बंधु बिन तोहीं। जो जड़ दैव जियावै मोहीं।।९।।
जैहौं अवध कवन मुख लाई। नारिहेतु प्रियबंधु गँवाई।।१०।।
बरु अपयश सहतेउँ जगमाहीं। नारिहानि विशेषक्षति नाहीं।।११।।
अब अवलोक शोक यह तोरा। सहै कठोर निठुर मन मोरा।।१२।।

सेवक सखा भगति भायपगुण चाहत अब अथये हैं।
निज कीरति करतूति तात तुम सुकृती सकल जये हैं।।राम०।।
मैं तुम विनु तन राखि लोक अपने अपलोक लये हैं।
मेरे प्राण की लाज यहां लौं हठि प्रिय प्राण दये हैं।।राम ल०।।
लागन सांगि विभीषण ही परसी पर आयु भये हैं।
सुनि प्रभुवचन भालु कपि गण सुर शोच सुखाइ गये हैं।।राम ल०।।
तुलसी आइ पवनसुत विधि मानो फिरि निरमये नये हैं।।रामल० १।।

हे भ्राता! तुम तो मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे हे बंधु! सदा तुम्हारा कोमल स्वभाव है।।२।। मेरे निमित्त पिता माता त्यागकर वन में शरदी धूप और पवन सही।।३।। हे भ्राता! अब वह अनुराग कहां है, मेरे विकलता के वचन सुनकर उठते नहीं।।४।। जो जानता कि वन में बंधु का बिछोह होगा तो पिता के वह चार दिनवाले भी वचन न मानता।।५।। पुत्र, धन, स्त्री, परिवार जगत् में अनेक बार होकर जाता रहता है।।६।। हे तात! ऐसा विचारकर जागो कि जगत् में सहोदर भाई नहीं मिलते।।७।। जैसे पंख के बिना खगपति दीन हो मणि के बिना सर्प और सूंड के बिना हाथी हो।।८।। इस प्रकार से हे बंधु! तुम्हारे बिना मेरा जीवन है जो जड़ दैव मुझे जिवावै।।९।। मैं क्या मुख लेकर अयोध्या में जाऊंगा। नारि के हेतु प्रिय बधु को गमा दिया।।१०।। चाहे जगत् में अपयश सहता कारण कि नारि की हानि से कोई विशेष हानि नहीं।।११।। पर अब यह तुम्हारा शोक देख कठोर निठुर मन सब सहता है।।१२।।

निज जननीके एक कुमारा । तात तासु तुम प्राण अधारा ।।१३।।
सौंपेहु मोहिं तुमहिं गहिपानी । सबविधि सुखद परमहितु जानी ।।१४।।
उतर ताहि देहौं का जाई । नारिहेतु प्रियबंधु गँवाई* ।।१५।।

सोरठा–"प्रभुप्रलाप सुनि कान, विकल भये वानर निकर ।
आय गये हनुमान, जिमि करुणा में वीररस ।।२८।।

तुरत वैद्य तब कीन्ह उपाई । उठि बैठे लक्ष्मण हर्षाई ।।१।।
पुनि कपि वैद्य तहां पहुँचावा । जेहिविधि तबहिं ताहि ले आवा ।।२।।

इति तृतीय दर्शन

अपनी माता के तुम ऐसे एक ही कुमार हो और उसके प्राणों के आधार हो।।१३।। हाथ पकड़ मुझको तुम्हें सौंप दिया था। मुझे सब प्रकार सुखदाई और परमहितू जाना था।।१४।। उसे जाकर क्या उत्तर दूंगा। नारि के निमित्त मैंने अपना प्रिय बंधु गँवा दिया।।१५।। सोरठार्थ–प्रभु का प्रलाप सुनकर सब वानर व्याकुल हुए। उसी समय करुणा में वीररस के समान महावीर आये।।२८।। चौ०–तुरत ही वैद्य ने उपाय किया और प्रसन्न हो लक्ष्मण उठ बैठे।।१।। फिर कपि जिस प्रकार वैद्य को लाये थे उसी प्रकार पहुँचा दिया।।२।।

इति तृतीयदर्शन

---

*सवैया–तात को शोच न मात को शोचरु शोच नहीं मोहि अवध तजीको ।
शोच नहीं वनवास भये अरु शोच नहीं मोहिं सीय हरीको ।।
शोच नहीं अस वालिके घातको शोच नहीं कछु विपत्ति परीको ।
तुलसी शोच भयो इक मोहिं सुभक्त विभीषण वांह गहीको ।।१।।

चतुर्थ दर्शन

रावण का कुंभकर्णको जगाना

(कुंभकर्ण वध)

"यह वृत्तांत दशानन सुनेऊ। अति विषाद पुनि २ शिर धुनेऊ ॥१॥
व्याकुल कुंभकर्ण पहँ गयऊ। करि बहु यतन जगावत भयऊ ॥२॥
कुम्भकर्ण पूछा सुन भाई। काहे तव मुख रहा सुखाई ॥३॥

टीका–रावण ने यह वृत्तान्त सुना तो विषाद से बारबार शिर धुना ॥१॥ व्याकुल हो कुंभकर्ण पर गया और अनेक यत्न कर जगाया॥२॥ कुंभकर्ण ने पूछा भाई! तुम्हारा मुख क्यों सूख रहा है॥३॥

कही कथा तेहि सब अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरिआनी ॥४॥"
रा०–तात कपिन निशिचर संहारे। महा महायोधा सब मारे ॥५॥

दोहा–दशकंधर के वचन सुनि, कुंभकर्ण विलखान।
कुंभ०–जगदम्बा हरि आनिकै, शठ चाहिस कल्यान ॥२९॥

भलन कीन्हतैं निशिचरनाहा। अब मोहिं आन जगायहु काहा ॥१॥
अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना ॥२॥
अहह बन्धु तैं कीन्ह खुटाई। प्रथमहिं मोहिं न जगायहु आई ॥३॥
कीन्हेउ प्रभु विरोध तेहि देवक। शिव विरंचि सुर जाके सेवक ॥४॥
नारदमुनिमोहिं ज्ञान जो कहेऊ। कहतेउँ तोहिं समय नहिं रहेऊ ॥५॥
अब भरि अंक भेंट मोहिं भाई। लोचन सफल करौं मैं जाई ॥६॥
श्यामगात सरसीरुह लोचन। देखौं जाय तापत्रय मोचन ॥७॥
"कुम्भकर्ण दुर्मद रण रंगा। चला दुर्ग तजि सेनन संगा ॥८॥
देखि विभीषण आगे आयउ। पुनि पदगहि निजनाम सुनायउ ॥९॥"

तब उस अभिमानी ने सब कथा कही जिस प्रकार जानकी हर लाया था॥४॥ हे तात! कपियों ने सब निशाचर जो बड़े बली योद्धा थे, मार दिये॥५॥ दोहार्थ–रावण के वचन सुन कुंभकर्ण व्याकुल हो बोला–अरे शठ! जगन्माता को हरकर अब कल्याण चाहता है॥२९॥ चौ०–हे निशिचरपति! तुमने अच्छा नहीं किया। अब मुझे आनकर जगाने से क्या है॥१॥ हे तात! अब भी अभिमान त्यागो राम का भजन करो, कल्याण होगा॥२॥ हे भाई! तुमने बड़ी खुटाई की। प्रथम ही मुझे आकर न जगाया॥३॥ हे प्रभु! उस देवता से तुमने विरोध किया है। शिव विरंचि देवता

जिसके सेवक हैं।।४।। नारदमुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था सो मैं तुमसे कहता पर समय नहीं रहा।।५।। हे भाई! अब अंक भरकर मुझसे भेंटौं मैं जाकर नेत्र सफल करूं।।६।। श्यामशरीर कमललोचन तीन ताप के मुक्त करनेवाले जाकर देखूंगा।।७।। कुंभकर्ण दुर्मद रण में रंग गया। बिना ही सेना के दुर्ग को छोड़कर चला।।८।। देखकर विभीषण आगें आया और फिर चरण स्पर्श कर अपना नाम सुनाया।।९।।

वि०–तात लातमोहिं रावण मारा। कहत परमहित मंत्र विचारा ।।१०।।
तेहिगलानि रघुपतिपहँ आयउँ। दीनजानि प्रभु के मन भायउँ ।।११।।
कु०–सुनसुत भयो कालवशरावण। सोकिमि मानै परम सिखावन ।।१२।।
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण। भयउ तात निशिचर कुलभूषण ।।१३।।
दोहा–मन क्रम वचन कपट तजि, भजहु तात रघुवीर।
जाहु न निज परसूझ मोहिं, भयउँ कालवश वीर ।।३०।।
"बंधुवचन सुनि फिरा विभीषण। आयो जहँ त्रैलोक विभूषण ।।१।।"
विभी०–नाथ भूधराकार शरीरा। कुंभकर्ण आवत रणधीरा ।।२।।

(युद्ध को वानर दौड़ते हैं)

राम–दोहा–सुन सौमित्रि विभीषण, सकल सँभारहु सैन।
मैं देखो खलबल दलहि, बोले राजिव नैन ।।३१।।

हे तात! परम हितकारी विचार का मंत्र कहते भी रावण ने मेरे लात मारी।।१०।। उसी ग्लानि से रघुनाथजी पर आया और दीन जानकर रघुनाथजी के मन को भाया हूँ।।११।। कुंभकर्ण बोला–हे पुत्र! रावण को कालवश हुआ है वह परम सिखावन कैसे मानेगा।।१२।। हे विभीषण! तू धन्य है जो निशिचर कुल में भूषण हुआ।।१३।। दोहार्थ–हे तात! मन वचन कर्म से कपट

---

* भजन–कुंभकर्ण से आज भई है लड़ाई।
धाय धाय निशिचर चहुँ दिशि को भाल कपिन गयो खाई ।।
श्रवण नासिका माहिं निकसकै कीश भालु सब चलहिं पराई ।।१।।
राम लषण दोउ वीर बली तब कोपबाण झरलाई ।।
हाथ पाँव निशिचर के काटे शीशकाट भूदियो गिराई ।।२।।
मार असुर प्रभु शोभित दल में महिमा कही न जाई ।।
रघुनायक सुखदायक प्रभु की वन देसब जय जयति सुनाई ।।३।।
महाबलिष्ठ असुर जब मारो देव सुमनझरलाई।
मिश्र तुम्हारी महिमा वरणै ऐसा है कौन जगत कविराई ।।४।।

तजकर रघुनाथ का भजन करो। अब जाओ मुझे अपना पराया नहीं सूझता। कालवश हुआ हूँ। हे वीर! जाओ।।३०।। चौ०–बन्धु का वचन सुन बिभीषण लौटकर त्रिलोकी के भूषण राम के समीप गया।।१।। और बोला–हे नाथ! यह पर्वत के समान शरीरवाला बड़ा रणधीर कुंभकर्ण आता है।।२।। दोहार्थ–हे लक्ष्मण विभीषण! सब अपनी सेना सँभालो, मैं दुष्ट का बल और दल देखूं, यह राम ने कहा।।३१।।

"धनुसंधानि छाँड़ि शर लक्षा । कालसर्प जनु चले सपक्षा ।।१।।
अतिबल चले निकर नाराचा । लगे कटन भट विकट पिशाचा ।।२।।
राम सेन निज पाछे घाली । चले सकोप महाबलशाली ।।३।।
खैंच धनुष शत शर संधाने । छूटे तीर शरीर समाने ।।४।।
शरनि भरा मुख सन्मुख धावा । कालत्रोण सजीव जनु आवा ।।५।।
तब प्रभुकोपि तीव्र शर लीन्हा । धड़से भिन्न तासु शिर कीन्हा ।।६।।
सो शिर परा दशानन आगे । विकलभयउ जिमिफणिमणित्यागे ।।७।।
दोहा–छन्द–संग्रामभूमि विराज रघुपति अतुलबल शोभा धनी ।
श्रमबिन्दु मुखराजीव लोचन रुचिरतनु शोणित कनी ।।
भुजयुगल फेरत शर शरासन भालु कपि चहुँ दिशि बने ।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि शेषजेहि आनन घने ।।१।।"

इति चतुर्थ दर्शन

धनुष संधानकर लाखबाण छोटे मानो पंखसहित कालरूपी सर्प चले।।१।। अतिबल से वह बाण चले और राक्षस कटकटकर गिरने लगे।।२।। रामचन्द्र सेना पीछे कर आप क्रोधकर उससे सन्मुख हुए।।३।। धनुष खैंच सौ बाण मारे वह उसके शरीर में समा गये।।४।। बाणों का भरा ऐसे सन्मुख आया जैसे काल का तरकस सजीव आता हो।।५।। तब क्रोधकर तीक्ष्ण बाण ले प्रभु ने उसका शिर धड़ से पृथक् कर दिया।।६।। वह शिर रावण के आगे पड़ा। मणि नष्ट होने से सर्प के समान रावण व्याकुल हुआ।।७।। छन्दार्थ–अतुलबली शोभाके धनी रामचन्द्र संग्रामभूमि में विराजे। मुख पर श्रम के बिन्दु कमललोचन सुन्दर शरीर पर रुधिर के कण विराजमान हैं। धनुष बाणों पर दोनों हाथ फेरते हैं। चारों ओर रीछ वानर विराजमान हैं। तुलसीदास कहते हैं अधिक मुखवाले शेषजी भी यह छबि नहीं कह सकते।।१।।

इति चतुर्थ दर्शन

पंचम दर्शन

(मेघनादवध)

बहु विलाप दशकंधर करई । पुनि पुनि बन्धु शीश उर धरई ।।१।।
मेघनाद तिहि अवसर आवा । कहि बहुकथा पितहि समुझावा ।।२।।
मे०–देखहुकाल्हि मोरि मनुसाई । अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ।।३।।
इहि विधि जलपत भयो विहाना । लगे भालु कपि चहुँ दिशि नाना ।।४।।

(मेघनाद माया के रथ पर चढ़ नागपाश से सबको बाँधता है और महायुद्ध होता है)

धरु धरु मारु सुनहिं कपिकाना । जो मारै तेहि काहु न जाना ।।५।।
जाहिं कहां व्याकुल भय बंदर । सुरपति बंदि परे जनु मंदर ।।६।।
मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि विकल सकल बलशीला ।।७।।
पुनि लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण । शरन मार कीन्हेसि जर्जर तन ।।८।।
पुनि रघुपति सन जूझै लागा । शर छांड़त होइ लागहिं नागा ।।९।।
व्याल फांस वश भये खरारी । स्ववश अनंत एक अविकारी ।।१०।।
व्याकुल कटक कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट कहत दुर्वादा ।।११।।

(समरभूमि में मेघनाद का वध)

टीका–रावण बहुत विलाप करता और बारबार बंधुका शिर हृदय में धरता है।।१।। उसी समय मेघनाद ने आय बहुत कथा कह पिता को समझाया ।।२।। कि कल मेरा पराक्रम देखना। अबही बहुत बड़ाई क्या करूं।।३।। इस भांति प्रभात हुआ और वानर लंका के चारों ओर धाये।।४।। पकड़ो, मारो, ऐसा कपि सुनते हैं पर जो मरता है उसे किसी ने नहीं जाना।।५।। डर से व्याकुल बंदर कहां जायँ। मंदरपर्वत इन्द्र के बन्धन में जैसे हुआ तैसे हुए।।६।। महावीर, अंगद, नल, नील इन सब बलियों को विकल किया।।७।। फिर लक्ष्मण सुग्रीव, विभीषण का शरीर, बाण मार मार कर जर्जर कर दिया।।८।। फिर रघुनाथ से युद्ध करने लगा। उसके बाण छूटकर सर्प हो जाते थे।।९।। अपने वश अनंत अविकारी भगवान् नागफांस के वश हुए।।१०।। इस प्रकार कटक को व्याकुल कर दुर्वचन कहता मेघनाद प्रकट हुआ।।११।।

जा०–जाम्बवन्त कह खल रहुठाढ़ा । सुनकरताहि क्रोध अति बाढ़ा ।।१२।।
मे०–बूढ़जानि शठ छांड़ेउँ तोहीं । लागेसि अधम प्रचारन मोहीं ।।१३।।

अस कहि तरल त्रिशूल चलावा । जाम्बवन्त सो करगहि धावा ॥१४॥
मारेउ मेघनाद की छाती । परा धरणि घुर्मित सुरघाती ॥१५॥
पुनि रिसाय गहि चरण फिरावा । महिपछारि निजबलहि दिखावा ॥१६॥
बर प्रसाद सो मरै न मारा । तब पद गहि लंका पर डारा ॥१७॥
इहां देवऋषि गरुड़ पठाये । राम समीप सपदि चलि आये ॥१८॥

दोहा–पन्नगारि खाये सकल, क्षणमहँ व्याल वरूथ ।
भई विगत माया तुरत, हर्षे वानरयूथ ॥३२॥

(मेघनाद यज्ञ)

मेघनादकी मूर्छा जागी । पितहिं विलोकि लाज अति लागी ॥१॥
तुरत गयउ सो गिरिवरकंदर । करों अजय मख अस निजमन धर ॥२॥
सो सुधि पाय विभीषण कहई । सुन प्रभु समाचार अस अहई ॥३॥
विभी०–मेघनाद मखकरै अपावन । खल मायावी देव सतावन ॥४॥
जो प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि रिपु जीति न जाइहि ॥५॥

जाम्वन्त ने कहा–अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, सुनकर मेघनाद बड़ा क्रोधित हुआ॥१२॥ हे शठ! मैंने तुझे बूढ़ा जान कर छोड़ा था, तू मुझे ही ललकारता है॥१३॥ ऐसा कह एक तीक्ष्ण त्रिशूल चलाया, जाम्बवन्त बीच में ही पकड़ धावमान हुआ॥१४॥ और उसे मेघनाद की छाती में मारा। लगते ही वह सुरघाती घायल हो घूमकर भूमि में गिरा॥१५॥ फिर रिसाय चरण पकड़ घुमाया। पृथ्वी पर पछारकर अपना बल दिखाया॥१६॥ वर के कारण मार से नहीं मरा, तब चरण पकड़कर लंका पर फेंक दिया॥१७॥ यहाँ नारदजी ने गरुड़ को भेजा वह बहुत शीघ्र राम के समीप आये॥१८॥ दोहार्थ–और गरुड़जी ने क्षण में वह सर्प खा लिये। तुरत माया छुटने से रीछ वानर प्रसन्न हो धावमान हुए॥३२॥ चौ०–मेघनाद की मूर्च्छा जागी तब पिता को देख बड़ी लाज लगी॥१॥ तुरत पर्वत की कन्दरा में अजय यज्ञ करने चला गया॥२॥ यह सुधि पाकर विभीषण बोला–हे प्रभु! ऐसा समाचार है कि॥३॥ वह दुष्ट मायावी देवताओं का सतानेवाला मेघनाद अपावन यज्ञ करता है॥४॥ प्रभु! जो वह सिद्ध हो जायगा तो शीघ्रता से शत्रु न मारा जायगा॥५॥

(लक्ष्मण सज्जित होते हैं)

राम–लक्ष्मणसंग जाहु सब भाई । करहु विध्वंस यज्ञ करजाई ॥६॥
तुम लक्ष्मण रणमारेउ ओही । देखि सभयसुर दुख अतिमोही ॥७॥
जाम्बवन्त कपिराज विभीषण । सेनसमेत रहहु तीनों जन ॥८॥

ल०–जोतेहि आजु वधेबिनुआवौं । तौ रघुपति सेवक न कहावौं ।।९।।

दोहा–वंदि रामपद कमल युग, चले तुरन्त अनन्त ।
अंगद नील मयंद नल, संग सुभट हनुमन्त ।।३३।।

जाय कपिन देखा सो वैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ।।१।।
तब कीशनकृत यज्ञ विध्वंसा । जब न उठहि तब करहि प्रशंसा ।।२।।
तदपि न उठै धरहि कच जाई । लातन हति हति चलहिं पराई ।।३।।
ले त्रिशूल धावा कपि भागे । आवा राम अनुज के आगे ।।४।।
आवा परम क्रोधकर मारा । गर्जि घोर रव बारहिंबारा ।।५।।
कोपि मरुतसुत अंगद धाये । हति त्रिशूल उर धरणिगिराये ।।६।।
विविध वेषधरि करैं लराई । कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ।।७।।
सुमिरि कौशलाधीश प्रतापा । शरसंधान कीन्ह अतिदापा ।।८।।

राम बोले–हे वीरो! तुम सब लक्ष्मण के संग जाओ और यज्ञविध्वंस करो।।६।। लक्ष्मण! तुम उसे युद्ध में मारना, देवताओं को भयभीत देख मुझे अति दुःख है।।७।। जाम्बवन्त सुग्रीव बिभीषण यह तीनों जन सेना सहित संग रहना।।८।। लक्ष्मण बोला–जो मैं आज मेघनाद को मारे बिना आऊँ तो रघुनाथ का सेवक न कहाऊँ ।।९।। दोहार्थ– यह कह राम के चरणों में प्रणामकर अंगद नील मयन्त नल बली महावीर के साथ लक्ष्मण चले।।३३।। चौ०–जाकर वानर देखते हैं कि वह रुधिर और भैंसे की आहुती देता है।।१।। तब वानरों ने यज्ञ विध्वंस किया। जब न उठा तब प्रशंसा की।।२।। तब भी न उठने से बाल पकड़े और लातें मार मारकर भागने लगे।।३।। तब वह त्रिशूल लेकर उठा। वानर भागे, वह लक्ष्मण के आगे आया।।४।। और बारंबार गर्जकर लक्ष्मण को मारा।।५।। क्रोधकर महावीर अंगद चले। त्रिशूल मार उन्हें भूमि में गिराया।।६।। अनेक वेष धर लड़ाई कर कभी प्रगट हो कभी छिप जाय।।७।। लक्ष्मण ने कोशलाधीश का प्रताप स्मरण कर प्रतिज्ञापूर्वक बाण चढ़ाया।।८।।

छांड़ा बाण तासु उर लागा । मरतीबार कपट सब त्यागा ।।९।।

दोहा–राम अनुज कहि राम कहि, अस कहि छाँड़सि प्रान ।
धन्य शक्रजित मातु तव, कहि अंगद हनुमान ।।३४।।

विनु प्रयास हनुमान उठाये । लंकाद्वार राखि पुनि आये ।।१।।
प्रभुहि विलोकि शीशपद नाये । उठि प्रभु अनुज हर्षि उर लाये ।।२।।
प्रभु कौतुकी निरखि रिपुशीशा । राखन कहेउ कोशलाधीशा ।।३।।

(सब विश्राम करते हैं)

(स्थान सुलोचना का मंदिर)

(वार्ता)

सखी–देखो तो आज आंगन में एक भूषणजटित भुजा किसकी पड़ी है ?

सुलोचना की कथा क्षेपक–

सु०–होत महारण रावण रामहिं । बीर धुरीण मोर पियतामहिं ।।१।।
"इतना कहत गई चलि आपू । पतिभुजलखि करि कोटि विलापू ।।२।।
नींद नारि भोजन परिहरई । बारह वर्ष तासु कर मरई ।।३।।
दोहा–करि बिचार मन टेक दे, मैं पतिदेवत नारि ।
भुजलिखि मेटहु दुचितई, सुनि कर दीन पसारि ।।३५।।

बाण छोड़ते ही उसके हृदय में लगा मरतीबार उसने सब कपट त्यागा।।९।। दोहार्थ–राम और लक्ष्मण कहां हैं ऐसे नाम लेकुर प्राण त्यागे अंगद हनूमान ने कहा तेरी माता धन्य है।।३४।। बिना प्रयास हनुमानजी उठाकर लंका के द्वार पर उसे धर आये।।१।। और सबने आय प्रभु के चरणों में शिर नवाया प्रभुने उठ लक्ष्मण को हृदय से लगाया।।२।। कौतुकी प्रभु ने वह शिर देख रखने को कहा।।३।। सुलोचना–राम रावण में महायुद्ध होता है वीरधुरीण मेरा पति उसी युद्ध में है।।१।। इतना कह आपही चली गई और पति की भुजा देख विलाप करने लगी।।२।। जो बारह वर्ष नींद, नारि, भोजन छोड़ दे उसके हाथ से मृत्यु होनी थी।।३।। दोहार्थ–फिर विचारकर मन में टेक दे कहा जो मैं पतिव्रता स्त्री हूं तो यह भुजा लिखकर मेरी दुचितई मेटे सुनकर हाथ फैल गया।।३५।।

लकि रुख तासु सखी उठिधाई । सो तेहि खोज खरी ले आई ।।१।।
भुजा–नींदनारि भोजनशत कोटी । तजत तासु महिमा अतिछोटी ।।२।।
लीला तनु सुरसेवक हेतू । जासु नाम भवसागर सेतू ।।३।।
दोहा–कोटि कल्प वर्णत निगम, अगम जासु गुणगाथ ।
तम शरीर जड़ जीव विनु, किमि वर्णत लिखि हाथ ।।३६।।
मम शिर गयो जहाँ रघुराई । तव प्रतीत लगि भुजा पठाई ।।१।।

(सुलोचना अनेक विलाप करती है)

सुलो०–जेहि भुजबल सुरनाथ विगोवा । सो भुज आज समरमें सोवा।।२।।
छूटि वृंदि अब सुरगणकेरी । निज निज पुरन दुहाई फेरी ।।३।।
मुनि पुलस्त्यकर भाकुलनाशा । अब रवि शशि सुखकरहिं प्रकाशा ।।४।।
तेजवन्त पावक परिहरि दुख । बहब समीर आज अपने सुख ।।५।।
विजद राम लक्ष्मण कहँ आवा । सुयश सकल कर्कटकुल पावा ।।६।।

कुल कलंक बड़ लहेउ विभीषण । कुलकुठार अस सुनेउ न दीखन* ।।७।।

चौ०-रुखदेख सखी ढूँढ़कर खरीलाई और वह हाथ आंगन में लिखने लगा।।१।। नींद नारि और शतकोटि भोजन आदि त्यागना भी उसकी छोटी महिमा है।।२।। उसने देवता और सेवकों के निमित्त लीला से शरीर धारण किया है जिसका नाम भवसागर पार जाने को सेतुरूप है।।३।। दोहार्थ-जिसके गुण वेद कोटिकल्प तक वर्णन करके भी पार नहीं पा सकते फिर यह तमोगुणी शरीर जड़ जीव के बिना हाथ मात्र क्या लिख सकैगा।।३६।। मेरा शिर रघुराज के पास गया और तुम्हारी प्रतिज्ञा प्रतीति के लिये भुजा पठाई है।।१।। सुलोचना-जिसने अपने भुजबल से इंद्र को व्याकुल कर दिया वह भुजा आज समर में पड़ी है।।२।। अब देवताओं की बन्दि छूट गई उन्होंने अपने अपने पुरों में दुहाई फेर दी।।३।। पुलस्त्यमुनि का कुल नाश हुआ अब सूर्य चन्द्र सुख से प्रकाश करैंगे।।४।। अग्नि दुःख त्याग तेजवन्त होगा पवन आज अपने सुख से चलेगी।।५।। राम लक्ष्मण की विजय हुई वानरों का यश हुआ।।६।। विभीषण ने बड़ा कुल का कलंक पाया ऐसा कुलकुठार नहीं सुना न देखा।।७।।

(रावण के पास पालकी में जाती है)

सु०-तुमहिं अक्षत अस दशा हमारी । सुखतजि भई शोक अधिकारी ।।८।।
रणकबन्ध भुज मम गृह आई । शिर तहँ गयउ जहाँ रघुराई ।।९।।
करहु सो यतन मिलै जेहि शीशा । तुमसामर्थ्य निशाचर ईशा ।।१०।।

रावण-दोहा–रामलषण सुग्रीव नल, नील द्विदिव हनुमन्त ।
माथ विभीषण ऋषभकर,आनब मारि तुरन्त ।।३७।।

अबलगि रहैउ भरोसा भारी । कुंभकर्ण घननाद सुरारी ।।१।।
मुहू आज लग कीन्ह न जूझा । इन सबकर पुरुषारथ बूझा ।।२।।
मरेउ सो नर बानरके मारे । बात सुनत अति लाज हमारे ।।३।।
गिनती कवन वीरमें तिनकी । अतिदुर्दशा कीन्ह कपि जिनकी ।।४।।
तजहु शोक कुल वधू पतोहू । उन समान जनि जानहु मोहू ।।५।।
पुत्रि विलम्ब करहु घटिचारी । देखहु मोर भयंकर मारी ।।६।।

सु०-रावण-तुम्हारे होते हमारी यह दशा हुई कि, सुख त्याग दुःख की अधिकारी हुई ।।८।। युद्धमें कबंध भुजा मेरे घर आई शिर रामचन्द्र पर गया।।९।। वह यत्न करो जिससे शिर मिलै हे निशाचरराज! तुम समर्थ हो।।१०।। दोहार्थ-रावण-राम लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, द्विविद, हनुमान,

---

* भजन–देखिके भुजा सुलोचन रोई ।।
कैसे भुजा गिरि आंगनमें मोहि समझावे कोई ।
बारह वर्ष नींद नारी संग जो त्यागै पिय मारैं सोई ।।१।।

बिभीषण और ऋषभ इनको मारकर अभी इनके शिर लाता हूं।३७।। चौ०-अब तक इस बात का बड़ा भरोसा था कि, कुंभकर्ण मेघनाद बड़े बली हैं।।१।। इसीसे मैंने आज तक युद्ध नहीं किया इन सबका पुरुषार्थ देखा।।२।। सो यह नर वानरों के मारे मर गये सुनकर हमको बड़ी लाज आती है।।३।। क्या उनकी वीरों में गिनती हो सकती है जिनकी बन्दरों ने बड़ी दुर्दशा कर दी।।४।। हे कुलवधु! शोक त्यागन करो उनके समान मुझे मत जानो।।५।। हे पुत्री! एक चार घड़ी विलम्बकर मेरा पराक्रम देखो।।६।।

आनि शीश तव शत्रुन केरा । बिना प्रयास न लाउब बेरा ।।७।।
भोगत जन्तु पुराकृत भोगा । नतु किमि निशिचर वनचर योगा।।८।।

दोहा-मेरु उखारन हार जे, धरा धरत कर बीच ।
ते भट खाये मशक शिशु, काल कुटिलता नीच ।।३८।।

सु०-नर वानर पुरुषारथ देखत । बड़ो प्रभाव छोटकरि लेखत ।।१।।
कुंभकर्ण अतिकाय महोदर । मम पति गिरेउ समेत सहोदर ।।२।।
ते रिपु चहत दशानन जीती । देखहु महा मोहकर रीती ।।३।।
उतर देउँ तौ पातक होई । कह विवादकर सर्वस खोई ।।४।।
फिरहि राज्य कछु मोहिं न काजू । विनु पिय सकल नरककर साजू ।।५।।

दोहा-तुरतहि उठी सुलोचना, गइ मयतनया पास ।
पद गहि रोवत सकल कह, प्रगट शोक इतिहास ।।३९।।

आदिहिते सब कथा बखानी । सुनि सुनि रोवत रावणरानी ।।१।।"
मन्दो०-सुनि निज पुत्रवधूकी वानी । बोली दुखित मँदोदरि रानी।।२।।
कहत सो मानहु सत्य सयानी । सुनी जो नारद मुनिकी बानी ।।३।।

बिना प्रयास मैं तुम्हारे शत्रुओं का शिर ले आऊंगा देर न होगी।।७।। यह प्राणी पूर्वजन्मानुसार भोग भोगता है न तो क्या निशाचर वानरों के योग्य थे।।८।। दोहार्थ-जो सुमेरु के उखारनेवाले भूमिको हाथ में धरनेवाले थे उन योद्धाओं को मच्छर के बालक खा गये यह नीचकाल की कुटिलता है।।३८।। चौ०-सुलोचना नर वानरों का पुरुषार्थ देखते हो बड़ा प्रभाव भी छोटाकर मानते हो।।१।। कुंभकर्ण,

---

-शंका मान खरी तिन दीनी लिखत् चरित भयो जोई ।
नींद नारि भोजन सतकोटी तजत न महिमा जाकी मोटी होई।।२।।
तब प्रतीत लगि भुजा पठाई शंका करो न कोई ।
मम शिर गयो जहं रघुराई मांग ले आवो सत साज सजोई ।।३।।
सुनत सुलोचन चली महलसे दीनो सर्वस खोई ।
रामदलमें कियो पयानो पतिहित पतिव्रतधर्म रहोई ।।४।।

अतिकाय, महोदर, और सहोदर सहित मेरा पति युद्ध में गिर गया।।२।। उन शत्रुओं को रावण जीतना चाहता है महामोह की रीति तो देखो।।३।। उत्तर देने से पातक होगा विवाद कर कौन सर्वस खोवे।।४।। राज्य भी फिरे तो मुझे क्या काम है प्रीतम के बिना सब नरक का साज है।।५।। दोहार्थ–तुरत सुलोचना उठ मन्दोदरी के पास गई। चरण पकड़ रोकर सब कथा सुनाई।।३९।। चौ०–आदि से सब कथा सुनाई सुनकर मंदोदरी रोने लगी।।१।। और पुत्रवधू की वाणी सुन दुःखी हो मन्दोदरी बोली।।२।। हे सयानी! जो नारद कह गये हैं सो सुनो सब सत्य है।।३।।

पाछिल बात भई सब सांची । अनुभव कीन्ह न एकहु बाँची ।।४।।
देवि न होय मृषा ऋषि भाषत । अपने महामोह मन राखत ।।५।।
वैरभाव दशकन्धर जूझब । प्राणहु गये नीति नहिं बूझब ।।६।।
सिया शोक संकटसे छूटहिं । वारन भालु राज्यघर लूटहिं ।।७।।
अब पुत्री परिहरि सब शोका । पति संग बेगि साध परलोका।।८।।
जाहु रामपहँ पति शिर लागी । तजि संकोच आन किन मांगी ।।९।।
है पुनि श्वशुर विभीषण तोरा । वालि तनय बालकसम मोरा ।।१०।।
एक नारिव्रत रघुवर केरा । लषण सुयश तुम सुनेउ घनेरा ।।११।।
जाम्बवन्त मन्त्री सुग्रीवा । द्विविद मयन्द महाबल सीवा ।।१२।।
जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता । शिवस्वरूप भवहर भगवन्ता ।।१३।।
सदा नीतिरत राम नरेशा । तहाँ जात कहु कवन कलेशा ।।१४।।

दोहा–विदित तोर पति भुज लिखित, लक्ष्मण राम प्रभाव ।
हमहू ऋषि भाषित कहेउ, अब विलम्ब जनि लाव ।।४०।।

बार बार चरणन शिर नाई । चली जहां लक्ष्मण रघुराई ।।१।।

पिछली बात सब सत्य हुई अनुभव कर देखा एक न बची।।४।। हे देवी ऋषिका कहना मिथ्या न होगा चाहे अपने मन में महा मोह रखो।।५।। वैरभाव से रावण जूझेगा प्राण जाने पर भी नीति न मानेगा।।६।। सीता शोचसंकट से छूट जायगी रीछ वानर राज्यघर की लूट करेंगे।।७।। हे पुत्रि! अब तुम सब शोक त्यागकर पति के संग शीघ्र परलोक साधो।।८।। पति के शिर के निमित्त राम पर जाओ और संकोच तज मांग लाओ।।९।। वहां विभीषण तुम्हारे श्वशुर हैं, वलिपुत्र मेरे बालक के समान हैं।।१०।। रघुनाथ का एक नारिव्रत है, लक्ष्मण का घना यश तुमने देख सुनही लिया।।११।। जाम्बवन्त सुग्रीव द्विविद मयन्द महाबली रामके आज्ञाकारी मंत्री हैं।।१२।। हनूमान् नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं यह साक्षात् शिवस्वरूप संसारनाशक भगवन्त हैं।।१३।। रामचन्द्र सदा नीति की मर्यादा रखते हैं फिर वहां जाने में क्लेश क्या है।।१४।। दोहार्थ–और लक्ष्मण राम का प्रभाव तेरे पति की भजाने ही लिख दिया है हम भी ऋषि का भाषण कह चुकी अब देर मत

लगाओ।।४०।। चौ०-तब सुलोचना बारंबार चरणों में शिर नवाय जहां राम लक्ष्मण थे वहां गई।।१।।

दोहा-देखत डरत सुलोचना, धीरज धरत बहोरि ।
महाराज रघुवीर कहँ, बिनय सुनावो मोरि ।।४१।।

करत दण्डवत शिर धर धरणी । तिहिकर चरित बिभीषण बरणी ।।१।।
बिभी०-पुत्रवधू दशकन्धर केरी । बड़ि पतिव्रता जानि प्रभुहेरी ।।२।।
मेघनादकी नारि सुशीला । असगति तब विरोध कर लीला ।।३।।
करत प्रणाम प्रेम नहिं थोरे । करुणा वचन कहत कर जोरे ।।४।।

सुलो०-छंद-निरखत युग चरणं अशरणशरणं तारणतरणं भयहरणम् ।।
जगकारण करणं पोषण भरणं खलदल हरणं दुख टरणम् ।।
घनश्याम स्वरूपं अतिहि अनूपं सुरवर भूपं नररूपम् ।।
जेहि निगमनिरूपं अकल अरूपं कीन्हकुरूपं नखशूपम् ।।१।।
तव शरणहिं आई जन सुखदाई रघुराई करुणासागर ।।
पतिमस्तक पाउँ जाउँ जरि सँग जाउँ शिरपाउँ शोभा आगर ।।
पति मम तनु त्यागी अतिबड़भागी अनुरागी जिन मुक्तिलही ।।
समता किमि तासू वरणू आशू जासु अचल जगपंक्ति रही ।।
इहिविधि पदपंकज सेव्य रमा अज शिरनमि द्वौ करजोरि रही ।।
सुनि पंकजलोचन वचन सुलोचन लोचनमें जलधार बही* ।।२।।

दोहार्थ-सुलोचना देखकर डरी और फिर धीरज धारण कर बोली श्रीराम से मेरी विनय सुनाओ।।४१।। चौ०-पृथ्वी में शिरधर दंडवत् की उसका चरित्र विभीषण वर्णन किया।।१।।

---

* भजन-दीजे पतिशीश राय हितकारी ।।
दो पतिशीश राम हितकारी विनती करूं तिहारी ।
शरण चरणकी हौं त्राहि त्राहि जन आरतहारी ।।१।।
करुणामय गोविन्द ईश प्रभु सुर मुनि जनरखवारी ।
कृपा करहु मोपर रघुराई देव देव रघुवर असुरारी ।।२।।
धन्य भाग्य मेरे स्वामीके करी ब्रह्मसों रारी ।
प्राणदान कर मुक्तिलही जिन कहीं जाय अर्द्धांगी नारी ।।३।।
होय सती मैं हूँ निजपिय संग पाऊँ होऊँ सुखारी ।
मिश्र गुणाकर दीनबंधुके चरण, कमल बलिहारो ।।४।।

महाराज! यह रावण की पुत्रवधू है प्रभू ने बड़ी पतिव्रता जानकर देखा।।२।। यह मेघनाद की सुशीला स्त्री है परंतु विरोध से इसकी यह गति हुई।।३।। बड़े प्रेम से प्रणाम करती है हाथ जोड़ करुणा के वचन कहती है।।४।। छन्दार्थ–आपके दोनों चरण अशरण के शरण देनेवाले भय हरनेवाले देखे जग के कारणकरण भरणपोषण करनेवाले खलों के दल के हरनेवाले दुःख टारनेवाले हैं तुम्हारा घनश्यामस्वरूप बड़ा अनूप है आप नररूप देवताओं के भूप हो जिसको वेद अकल अरूप वर्णन करता है जिसने शूर्पणखा को विरूप किया।।१।। हे जनसुखदाई रघुराज करुणासागर! मैं तुम्हारी शरण आई हूँ मैं पति का शिर पाऊं तो संग में सती हो जाऊं हे शोभा के खान! मुझे शिर मिलै मेरा पति बड़ा बड़भागी है अनुरागी है जिसने शरीर त्यागकर मुक्ति शिर पाई उसकी अब समता क्या वर्णन करूं जिसकी जगत् में अचल बड़ाई रही इस प्रकार रमा ब्रह्मा से सेवित पद राम को प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर रह गई कमलोचन राम के नेत्रों में सुलोचना के वचन सुन जल भर आया।।२।।

दोहा–मुये जान पतिभुजा लिखि, समुझाई प्रभु मोहिं ।
महाराज रघुवंशमणि, याचन आई तोहिं ।।४२।।

राम-देहुँ जिवाय तोरपति आजू । भोगहु जाय कल्प शतराजू ।।१।।
छाँड़ि शोच अब मन हर्षाहू । तुरत भवन अपने फिर जाहू ।।२।।
देखि बहुत रघुवरकर छोहू । विनय करति दशकंधपतोहू ।।३।।
सु०-तुम उदार सब देवेलायक । करुणामय देखे रघुनायक ।।४।।
हमहु विचारि दीख मन माहीं । जीवनते अस मरण सराहीं ।।५।।
भुजबल जीति लोक वश कीन्हें । चौदह भुवन भोग करि लीन्हें ।।६।।

दोहार्थ–मेरे मरे हुए पति की भुजा ने मुझे लिखकर समझाया। हे महाराज रघुवंशमणि! मैं आपसे पति का शिर मांगने आई हूं।।४२।। चौ०—राम मैं तेरा पति जिवाय देता हूं तुम युग युग अकंटक राज्य करो।।१।। शोच त्याग अब मन में प्रसन्न हो अपने घर को जाओ।।२।। राम की बड़ी कृपा देख सुलोचना विनय करने लगी।।३।। हे उदार! तुम सब कुछ देने योग्य हो आपको करुणामय देखा है।।४।। पर मैंने भी मन में विचार देखा जीने से ऐसा मरना अच्छा है।।५।। जिसने भुजबल से जीत सर्व लोक वश किये चौहद भुवन का सुख भोगा।।६।।

रण तीरथ याचक बड़ चीन्हा । प्राण सुधन लक्ष्मणकहँ दीन्हा ।।७।।
अब न उचित पतिदै उपहारा । तेहि पर अधिकसो दरश तुम्हारा ।।८।।
हमहू जाइ मरब सत साधी । मिलब तुमहिं जसमिलत समाधी ।।९।।
"लीन्हेउ राम कपीश बुलाई । मेघनाद शिर दीन्ह मँगाई ।।१०।।
अंचल पोंछति मुखकी धूरी । कहि मम प्राण सजीवन मूरी ।।११।।
सुग्रीव–देखि संदेह कहत सुग्रीवा । भुज किमि लिखत जीह बिन ग्रीवा ।।१२।।

हँसिहहिं वदन तो ह्वैहै सांची । नातर निशिचर माया कांची ।।१३।।
कित अस ज्ञान मृतक भुजगावा । जो मुनिवर साधन नहिं पावा ।।१४।।
राम-प्रभु असकहेउ हँसब यह शीशा । करत कुतर्क न उचित कपीशा ।।१५।।

सुलो०-दोहा-शिरसों कहति सुलोचना, हँसहु बेगि मम नाथ ।
नातर सत्य न मानिहैं, लिखा जो तुम्हरे हाथ ।।४३।।

पुनि पुनि कहत सो नागकुमारी । श्रमित भयउ रणमें करिमारी ।।१।।
लगे लषण शर क्षोभ बढ़ावा । प्रभुसमीप कस मोहिं लजावा ।।२।।
जो मन वचन कर्म यह देही । पतिदेवता न आन सनेही ।।३।।

रणतीर्थमें लक्ष्मणको बड़ा याचक जानकर प्राणरूपी धन दान किया।।७।। अब यह उचित नहीं।पतिको उपहार में लूँ और फिर उस पर आपका दर्शन हुआ।।८।। इससे अब मैं जाय सत साधकर मरूँगी और योगियों के समान तुमसे मिलूंगी।।९।। तब राम ने सुग्रीव को बुलाय मेघनाद का शिर मंगा दिया।।१०।। सुलोचना प्राणनाथ जीवनमूल इत्यादि शब्द कहकर अंचल से मुख की धूरि पोंछने लगी।।११।। यह देख सन्देह से सुग्रीव ने कहा बिना जीव बिना शिर के भुजा कैसे लिख सकती है।।१२।। जो यह मुख हँसे तो यह बात सत्य है नहीं तो स्त्री की असत्य माया है।।१३।। मृतक की भुजा कैसे ऐसा ज्ञान कह सकती है जिसको मुनिवर साधन कर नहीं पा सकते।।१४।। प्रभु बोले यह शिर हँसेगा हे सुग्रीव! यह कुतर्क करनी भली नहीं।।१५।। दोहार्थ—सुलोचना शिर से बोली हे नाथ! शीघ्र हँसो नहीं तो तुम्हारे हाथ का लिखा सत्य न माना जायगा ।।४३।। चौ०—सुलोचना ने बारबार कहा कि युद्ध में बड़ी मारकर के स्वामी श्रमित हुए हैं।।१।। लक्ष्मण के बाण लगने से क्षोभ बढ़ाया प्रभु के समीप मुझे क्यों लजाते हो।।२।। जो मन वचन कर्म से यह देही पतिव्रता है इसका और कोई स्नेही नहीं है।।३।।

तौ प्रभु सभाबीच शिर बोलै । रहहि छाययश सुयश अमोलै ।।४।।
जो जानति तव यह गति साँई । बोल पठावति पितहि सहाई ।।५।।
सुन तियवचन हँसेउ तबशीशा । चौंके चकित भालु भटकीशा ।।६।।
हँसेउ ठठाय वदन सब देखा । विस्मय भयउ सकल जिहि पेखा ।।७।।
सकुच कपीशहि तोषेउ नारी । बड़ आश्चर्य भयो वनचारी ।।८।।

दोहा—शीशपाइ प्रभुचरण गहि, बहुविधि विनय सुनाय ।
आजको दिनरण परिहरहु, मत हित कौशल राय ।।४४।।
बाहर करि कपि कटकते, फिरेउ विभीषण आप ।
बिसरेउ दशमुख वैरही, हृदय अधिक संताप ।।४५।।

शिर चढ़ाय पालकी चढ़ीसो । रघुपति कृपा प्रभाव बढ़ीसो ।।१।।

दोहा-देत अनल ज्वाल बढ़ी, लपट गगन लगिजाय ।
लखी न काहू जात तेहि, सुर पुर पहुँची धाय ।।४६।।

इति पंचम दर्शन

इति क्षेपक

तौ प्रभु की सभा के बीच में यह शिर बोले जगत् में अमोल यश छा जाय ।।४।। हे स्वामी! जो मैं जानती कि, तुम्हारी यह गति होगी तो सहायता के निमित्त पिता को बुला भेजती।।५।। यह स्त्री के वचन सुन वह शिर हँसा भालु वानर चकित होकर चौंक पड़े।।६।। बड़े वेग से हँसा सब देखनेवालों को विस्मय हुआ।।७।। सकुचाकर सुग्रीव ने सुलोचना की बड़ाई की, सब वनचारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ।।८।। दोहार्थ-शिर पाय प्रभु के चरणों को प्रणामकर विनय की, हे कोशलनाथ! आज के दिन मेरे निमित्त युद्ध मत करो।।४४।। उसको बानरों के कटक से बाहर कर विभीषण लौट आया, रावण का वैर विसर गया हृदय में बड़ा सन्ताप हुआ।।४५।। चौ०-वह शिर चढ़ाय पालकी पर चढ़ी। रामचन्द्र की कृपा से उसका प्रभाव बढ़ गया।।१।। दोहार्थ-अनल देते ही ज्वाला बढ़ी आकाश तक लपट चली उसे किसी ने जाते न देखा वह जाकर सुरपुर पहुँच गई।।४६।।

इति पंचम दर्शन

अथ षष्ठ दर्शन

(रावण मंत्र जपता है और अहिरावण पाताल से आता है)

अहिरावण-कहो तात! कुशल तो है कैसे बुलाया?

रा०-तातकुशलअससबइसिरानी । कटकनिशाचरसकलनशानी ।।१।।
कुंभकर्ण घननादहु मारे । राम लषण दुइ मनुज विचारे ।।२।।
आनेहुँ बोलितोहि निजपासा । कहहु सो यत्न होय रिपुनासा ।।३।।
अ०-विनाविचाररारितुमठानी । कीन्ह सेन कुल सरबस हानी ।।४।।
यदपि न योग मोहिं असबाता । तदपिहरहुँतबलगिदोउभ्राता ।।५।।
लै पताल देविहिं बलि देहौं । यशपूरण निशिचर कूल लेहौं. ।।६।।
लै जैहौं तुम जानेउ तबहीं । रविसमतेजहोइ निशि जबहीं ।।७।।

दोहा-कहि अस वचन प्रबोधकरि, शीश नवाइ बल भाखि ।
आयउ रघुपति कटक तब, निजदेवहिं उरराखि ।।४७।।"

वेष विभीषण सब अनुहारी । पवनतनयपहँ गा छलकारी ।।१।।
ठाढ़ होउ बोलेउ सुनभ्राता । चलेउँ जहाँ कृपालु जनत्राता ।।२।।
अ०—मैं रघुपतिसनआयसुपाई । सन्ध्याकरन गयउँ सुनुभाई ।।३।।

टीका—रावण—हे तात! अब सब कुशल गई। राक्षसों की सब सेना नष्ट हो गई।।१।। कुम्भकर्ण मेघनाद को भी राम लक्ष्मण दो विचारे मनुष्यों ने मार दिया।।२।। मैंने तुमको इस कारण बुलाया है कि वह यत्न करो जिससे शत्रुओं का नाश होय।।३।। अहिरावण—बिना विचारे तुमने लड़ाई ठानकर सेना कुल और सर्वस्व की हानि की ।।४।। यद्यपि यह बात मुझे उचित नहीं है तो भी तुम्हारे निमित्त दोनों भाइयों का हरण करूंगा।।५।। पाताल ले जाकर देवी को बलि दूंगा। निशिचर कुल में पूरा यश लूंगा।।६।। जब मैं ले जाऊं तब तुम जानना कि जब रात्रि में सूर्य के समान प्रकाश हो।।७।। दोहार्थ—यह वचन कह समझाकर शिर नवाय अपना बल कथनकर कुलदेवी को हृदय में रख रामचन्द्र के कटक में आया।।४७।। सम्पूर्ण वेष विभीषण के समान था वह छली महावीर पर गया।।१।। और खड़ा होकर बोला—हे भाई! मैं रघुनाथपुर जाता हूं।।२।। भाई! मैं राम की आज्ञा पाकर संध्या करने को गया था।।३।।

तेहिते तुरच चलेउँ प्रभुपाहीं । भइ विलंब जनि रामरिसाहीं ।।४।।
"आयसु पाय गयउ सो तहँवा । रह फणीश प्रभु दोऊ जहँवा ।।५।।
अहिरावण मन कीन्ह प्रणामा । देखि राम सुन्दर घनश्यामा ।।६।।

दोहा—मोहनते मोहे सकल, मंत्रनते मुख मूँदि ।
भय० अदृश्य उठांइकरि, प्रभुहि चलेउ लै कूदि ।।४८।।

यहिविधि गयउ दुहुँन लै सोई । नभ मारग प्रकाश अतिहोई ।।१।।
जागे वानर श्रीहत भारी । देखिय जिमिसरिता विनुवारी ।।२।।
एकहि एक लगे तव बूझन । कहां गये त्रैलोक्य विभूषन ।।३।।

दोहा—शोधेउ सब मिलि कटन तिन, नहिं पाये दोउ वीर ।
भे व्याकुल सब भालु कपि, जिमि जलचर गतनीर ।।४९।।

सब वानर—यातुधानसेनासबमारी । रहा एक रिपुरावण भारी ।।१।।
सोउ न रहत रामशर लागे । भाइउ हम सब परम अभागे ।।२।।
कबहुँ जो दशशिर अरि रणजीतहिं । उत्तर कवनदेब हम सीतहिं ।।३।।
"पवनतनय पुनि कह सब पाहीं । विस्मय एक होत मन माहीं ।।४।।

इससे बहुत शीघ्रता से जाता हूं। कहीं राम न रिसाय।।४।। इस प्रकार आज्ञा पाय वह राम लक्ष्मण के समीप गया।।५।। सुन्दर घनश्याम राम को देख अहिरावण ने मन में प्रणाम किया।।६।।

दोहार्थ–मोहन मंत्र से सब को मोहा। मन्त्रों से सबके मुख मूँद दिये और अदृश्य हो प्रभु को उठाय कूदकर ले चला॥४८॥ चौ०–इस प्रकार वह दोनों को ले गया। आकाशमार्ग में प्रकाश बहुत हुआ॥१॥ इधर वानर जागकर श्रीहत हो गये, बिना जल के नदी के समान गति हुई॥२॥ तब एक एक से बूझने लगे, त्रिलोकी के भूषण कहां गये॥३॥ दोहार्थ–सबने मिलकर कटक शोधा पर दोनों वीरों को न पाया तब सब रीछ वानर जल सूखने से जलजीवों के समान व्याकुल हुए॥४९। चौ०–सब बोले–रावण की सब सेना मार दी। अब एक भारी शत्रु रावण रहा था॥१॥ वह भी राम का बाण लगने से न रहता हे भाइयो! हम सब बड़े अभागी हैं॥२॥ यदि हम रावण को युद्ध में न जीतें तो फिर जानकी को क्या उत्तर देंगे॥३॥ फिर महावीरजी ने सबसे कहा, मन में एक विस्मय होता है॥४॥

ह०–कोउइकआवविभीषणवेषा । प्रभु के निकट जात हम देखा ॥५॥
वि०–वचन सुनत बोलेउ लंकेशा । अहिरावण लैगा अवधेशा ॥६॥
पन्नगलोक निवासी सोई । ममतनुवेष अपर नहिं कोई ॥७॥
महाबली जान सब माया । निश्चय तेहि दशशीश पठाया ॥८॥
जेहि बल होइ तहां सो जाई । ताहि जीति आनदोउ भाई ॥९॥
जा०–कहेउ भालुपति तब हनुमाना । तवबलतातसकलजगजाना ॥१०॥
वग सो यत्न बिचारहु ताता । कृपासिंधु आनहु दोउ भ्राता ॥११॥
ह०–सुनतवचनमारुतसुतबोला । राखेउ चितथिरकटक अडोला ॥१२॥
भुवन चारिदश तीनहुँ लोका । आनहुँ प्रभुबल प्रभु तजशोका ॥१३॥
अब तुम सजग रहौ सब भाई । लरेउ कालसन जो चढ़िआई ॥१४॥
"असकहिसकृतचलेउहनुमाना । गर्जत प्रलय पयोधिसमाना ॥१५॥
अभय प्वलंगपतालहिं गयऊ । अहिरावणपुर प्रविशत भयऊ ॥१६॥
द्वारपाल मकरध्वज कीशा । कपिसन डाटि कहत बहुरीशा ॥१७॥"
मकर०–निदरिजात मोहिंतोहिंडरनाहीं । दीपहिंजिमिनमतंगडराहीं ॥

कोई एक विभीषण के वेष में आया। हमने प्रभु के समीप जाते देखा था॥५॥ वचन सुनते ही विभीषण बोला–अवधेश को अहिरावण हरकर ले गया॥६॥ वह नागलोक का निवासी है। मेरा वेषधारी और कोई नहीं हो सकता॥७॥ वह महाबली सब माया जानता है अवश्य उसको रावण ने भेजा होगा॥८॥ जिसको बल होय सो वहां जाकर उसे जीत दोनों भाइयों को लावे॥९॥ जाम्बवन्त ने कहा–हे महावीर! तुम्हारा बल सब जगत् जानता है॥१०॥ हे तात! शीघ्र ही वह यत्न करो और कृपासिन्धु दोनों भाइयों को लाओ॥११॥ यह सुन महावीर बोले–चित्त को स्थिर

कर सेना अडोल रखो।।१२।। प्रभु! चौदह भुवन तीनलोक में से भी प्रभु को उनकी सामर्थ्य ले आऊंगा, आप शोक त्यागो।।१३।। हे भाई! अब तुम सब सावधान हो जो काल भी चढ़ि आवे तो युद्ध करना।।१४।। यह कह प्रलय काल के मेघ के समान गर्जते महावीर एक साथ चले।।१५।। और निडरता से एक कुलांच में पाताल में जाय अहिरावण के पुर में प्रवेश किया।।।१६।। वहां का द्वारपाल मकरध्वज वानर रिसकर डाटकर महावीर से बोला।।१७।। मुझे निदरकर जाते हो तुम्हें डर नहीं जैसे दीपक के समीप जाते पतंग नहीं डरते हैं।।१८।।

जानसि मोहिं न मरुतसुतबालक । स्वामिभक्त भञ्जन मुखकालक ।।१९।।
म०–कहत वचन शठ संयुतखोरी । कामविवश कब भइ मतिमोरी ।।२०।।
मम सुत बनसि मूढ़ केहि काजा । इतना कहत तोहि नहिं लाजा ।।२१।।
केहि प्रकार तैं मम सुत भयऊ । निज उत्पति मोसन किन कहऊ ।।२२।।
म०–सुनत कहहि मकरध्वजवचना । कियउ दाह रावणपुररचना ।।२३।।
जब आयउ चलि उदधि समीपा । बहेउ स्वेद तव तनु कपिदीपा ।।२४।।
सो प्रस्वेद सागरमहँ गयऊ । पियउ मीन तेहिते मैं भयऊ ।।२५।।
यहि प्रकार मैं तव सुत ताता । गोपहुँ नहिं निज पिता न माता ।।।२६।।
अहिरावण सेवा मैं करहूँ । राखहुँ द्वार न कबहूँ टरहूँ ।।२७।।
हनु०–दोहा–सत्य वचन हनुमान कहि, पुनि पूछी सब बात ।
लावा लक्ष्मण राम कहँ, कहा करत सो तात ।।५०।।
कहहु तात तेहि थल करनाऊँ । जान चहूं मैं तव प्रभुठाऊँ ।।१।।
म०–यह वृत्तांत अस जानेउँ ताता । यह मैं श्रवण सुनेउँ कछुबाता ।।२।।
सीतापति अरुफणिपति साथा । सो लै आयउँ निशिचरनाथा ।।३।।

मुझे नहीं जानते, मैं हनुमान का पुत्र हूँ, स्वामी का भक्त काल का भी मुख भंजन करता हूँ।।१९।। महावीर बोले–अरे शठ! यह दोष के वचन क्यों कहता है। मेरी मति कब काम के वश हुई।।२०।। रे मूढ़! मेरा पुत्र किस निमित्त बनता है। इतना कहते तुझे लाज नहीं आती।।२१।। मेरा पुत्र तू कैसे हुआ, अपनी उत्पत्ति मुझसे कहो।।२२।। मकरध्वज ने कहा–जब तुमने रावण का पुर जलाया।।२३।। और फिर सागर के समीप आये तब तुम्हारे शरीर से पसीना बहा।।२४।। वह प्रस्वेद सागर में गया, उसे मच्छी ने पिया, उससे मैं हुआ।।२५।। इस प्रकार से मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, अपने पिता माता को नहीं छिपाता हूँ।।२६।। मैं अहिरावण की सेवा करता हूं, द्वार पर रहता हूं। कभी नहीं टलता हूं।।२७।। दोहार्थ–हनुमानजी ने कहा–सत्य है फिर सब बात पूछी हे तात! वह राम लक्ष्मण को लाया है सो क्या करता है।।५०।। चौ०–हे पुत्र! उस स्थान का नाम कहो, मैं

तुम्हारे प्रभु के स्थान में जाना चाहता हूं।।१।। मकरध्वज ने कहा–हे तात! जो मैंने सुना है सो कहता हूं, यह वृत्तांत इस प्रकार है।।२।। सीतापति और लक्ष्मण को यह निशाचरराज ले आया है।।३।।

करत होम तेहि कारण आजू । देविहि बलि देई नृपराजू ।।४।।
जो कछुनिज श्रवणन सुनि पायउँ । तातसकल सो तुमहिं सुनायउँ ।।५।।
निजप्रभुकाज लागि दुख सहऊं । तुम सन सत्य वचन मैं कहऊं ।।६।।
जान कहहु तुम जान न देऊं । प्रभु आज्ञा तजि अयश न लेऊं ।।७।।
सुनिअस पेलि चलेउ हनुमाना । भयउक्रोध मकरध्वज जाना ।।८।।

दोहा–तेहिं मुष्टिक कपिकहँ हनेउ, पुनि मारेउ कपि ताहि ।
हनहिं परस्पर एक इक, बल समान घटनाहिं ।।५१।।

सुतहिं पूंछसों बांधि भवानी । चलेउ वातसुत विलँबनआनी ।।१।।
धरि लघुरूप होम गृह देखा । जीव सजीव परै नहि लेखा ।।२।।

(मालिन के फूलों में छिपते हैं)

जब देविहिं सो पुष्प चढ़ायउ । विकटरूप तब कपि दिखरायउ ।।३।।

दोहा–छुवत चरण देवी तुरत, धरणी रही समाइ ।
मुखपसारि ठाढ़ेभये, कपिछबि लखतडराइ ।।५२।।

रा०–कहहिंकिदेविप्रगट भइ आजू । बड़ भागी भा निशिचरराजू ।।१।।
"जो जहँ रही वस्तु समुदाई । बची न एकौ सब कपि खाई ।।२।।

इस कारण होम करता है और देवी को बलि देगा।।४।। हे तात! जो कुछ मैंने अपने कानों से सुना है सो तुमको सुनाया।।५।। प्रभु के काज मैं दुःख सहता हूं, तुमसे सत्य कहता हूं।।६।। तुम जाने को कहते हो सो मैं जाने न दूंगा। प्रभु की आज्ञा त्यागकर अपयश न लूंगा।।७।। यह सुनकर महावीर पेलकर चले। मकरध्वज को क्रोध हुआ।।८।। दोहार्थ–उसने कपि के और कपि ने उसके मुष्टिक मारा। परस्पर एक दूसरे को मारते हैं, बल समान है न्यून नहीं है।।५१।। चौ०–हे पार्वती! फिर पुत्र को पूंछ से बांध शीघ्रता से चले।।१।। और छोटा रूप धर होम का घर देखा। जीव सजीव जाने नहीं जाते।।२।। (मालिन के फूलों में छोटा रूप धर बैठे) जब वह फूल देवी को चढ़ाया तब कपि ने विकट रूप दिखाया।।३।। दोहार्थ–चरण छूते ही देवी भूमि में समा गई और कपि मुख पसार खड़े हुए, उनकी छबि देख भय लगता है।।५२।। चौ०–राक्षस कहते हैं, आज देवी प्रगट हुई, निशिचरराज बड़े बड़भागी हैं।।१।। वहां जितनी वस्तु थी, कुछ न बची, महावीर सब खा गये।।२।।

जबहीं होम सिद्ध तेहि जाना । लक्ष्मण राम तुरत तहँ आना।।३।
ठाढ कीन्ह प्रभुकहँ तहँ आनी । निशिचरबहु आयुध धरिपानी ।।४।।
आयसु पाइ खड्गतिन काढ़े । मारन कहँ प्रभुपर भे ठाढ़े ।।५।।
"कोउ कह राजनीति अनुसरहू । भरि त्रयदण्डविलंब अब करहू ।।६।।"
पुनि अस वचन मूढ़ मतिकहहीं । सुमिरहु जो तुम्हरे हितु अहहीं ।।७।।
"जाना देविरूप हनुमाना । बिहँसि कहा तब राम सुजाना ।।८।।"
रा०—कालकौरतुमसुमिरहुरक्षक । भई तुम्हारि देवि तुव भक्षक ।।९।।
गिरा सुनत तिन मारन ठयऊ । घन समान कपिगरजत भयऊ ।।१०।।
निशिचर सकल त्रसित भे भारी । कहहिंवचन भय हृदय विचारी ।।११।।
रा०—अहिरावण भलकीन्ह न काजू । आनेसि कपटवेष सुरराजू ।।१२।।
ताहित देवि क्रुद्ध भइ आजू । अब भा सबकर मरण समाजू ।।१३।।

दोहा—"'प्रगट रूप करि पवनसुत, अट्टहास गंभीर ।
अति भयत्रासित रजनिचर, सुनहु उमामतिधीर ।।५३।।"

तेहि क्षण कपि लीन्हें दोउ भाई । धुनत तूलनिशिचर समुदाई ।।१।।
छीन कृपाण लीन्ह हनुमाना । काटत भुज शिर कृषी समाना ।।२।।

जब उन्होंने जाना होम सिद्ध हुआ तुरंत वहां राम लक्ष्मण को लाये।।३।। प्रभु को वहां लाकर खड़ा किया और राक्षस आयुध ले खड़े हुए।।४।। आज्ञा पाकर उन्होंने खड्ग निकाले और मारने को खड़े हो गये।।५।। कोई बोले—राजनीति का पालन कर तीन घड़ी विलम्ब करो।।६।। यह वचन सुन वे मूढ़ बोले जो तुम्हारे हितू हों, उनको स्मरण करो।।७।। हनुमान को देवीरूप जानकर हँसकर श्रीरामचन्द्र बोले।।८।। तुम ही काल के ग्रास में हो, अपना रक्षक स्मरण करो। तुम्हारी देवी ही तुम्हारी भक्षक हुई है।।९।। यह वाणी सुन उन्होंने मारने की इच्छा की। महावीर घन के समान गर्जे।।१०।। सब राक्षस व्याकुल हुए और भय से मन में विचार कर वचन बोले।।११।। अहिरावण ने भला नहीं किया जो कपट के वेष से सुरराज को ले आया।।१२।। इसी से देवी क्रुद्ध हुई है अब सबका मरण बन गया है।।१३।। दोहार्थ—महावीर अपना रूप प्रगटकर बड़े जोर से हँसे, हे उमा! उस समय सब राक्षस व्याकुल हुए।।५३।। चौ०—उसी समय कपि ने दोनों भाई उठा लिये और रुई के समान राक्षसों को धुनने लगे।।१।। महाबीरजी कृपाण छीनकर राक्षसों के शिर भुजाएं खेती के समान काटने लगे।।२।।

खण्ड खण्ड तब खलदल कीन्हा । गहिपदडारि अनलमहँ दीन्हा ।।३।।
इहि विधि सब निशिचर सँहारे । अहिरावण लखि वचन उचारे ।।४।।

अ०-रे कपिढीठ त्रासनहिं तोहीं । अहिरावणतैं जान न मोही ।।५।।

दोहा-कालनेमिसम नाहिं मैं, करु कपि वचन प्रमान ।
अस कहि खड्ग प्रहार किय, कपि तनु वज्रसमान ।।५४।।

लै अस ताहि पवनसुत मारा । काटि शीश पावक महँ डारा ।।१।।
आहुति पूर्ण दीन्ह तब कीशा । लै पुनि चलेउ लषण जगदीशा ।।२।।
मकरध्वज प्रणाम तब कीन्हा । बंधन छोरिराज्य तेहि दीन्हा ।।३।।
यहां राज्य भोगहु तुम ताता । भजहु सदामम प्रभु दोउ भ्राता ।।४।।
असि कहि कपि निजदल सो आवा । हर्षेउ कटक सबनि सुख पावा ।।५।।
मिलेउ कपीश चरण धरिमाथा । पुनि पद गहे निशाचर नाथा ।।६।।

दोहा-जाम्बवन्त अंगद सहित, मिले भालु अरु कीश ।
सनमाने कहि वचन प्रिय, लषण कोशलाधीश ।।५५।।
करि बहु विधि हरि आरती, वाणी सत्य सुनाय ।
रामचरण अनुरागेउ, अमर सुमन झरि लाय ।।५६।।

इति षष्ठ दर्शन

सब दुष्टों का दल खण्ड खण्ड करके चरण पकड़ अग्नि में डाल दिया।।३।। इस प्रकार सब राक्षस मारे। तब अहिरावण ने देखकर कहा।।४।। रे ढीठ वानर! तुझे भय नहीं, यह नहीं जानता मैं अहिरावण हूं।।५।। दोहार्थ-मेरे वचन मान, मैं कालनेमि के समान नहीं हूं, ऐसा कहा खड्ग का प्रहार किया पर कपि का शरीर वज्र के समान हो गया।।५४।। चौ०-वही तलवार लेकर महावीर ने अहिरावण को मारा और शिर काट अग्नि में डाला।।१।। इस प्रकार पूर्ण आहुति कर राम और लक्ष्मण को लेकर चले।।२।। तब मकरध्वज ने प्रणाम किया। बन्धन खोलकर उसे राज्य दिया।।३।। यह कह हनुमानजी अपने दल में दोनों भ्राताओं को लाये। सब कटक प्रसन्न हुआ, सबने सुख पाया।।५।। चरणों में माथा धर कपीश मिले फिर बिभीषण ने चरण पकड़े।।६।। दोहार्थ-जाम्बवन्त तथा अंगद के सहित सब रीछ वानर मिले, राम और लक्ष्मण के प्रिय वचन कह उनका सन्मान किया।।५।। देवता भी अनेक प्रकार से प्रभु की आरती कर सत्यवाणी सुनाय फूलों की वर्षा कर राम के चरणों में प्रेम दिखाने लगे।।५६।।

इति षष्ठ दर्शन

अथ सप्तम दर्शन

राव०—सुभटबुलाय दशाननन बोला। रणसन्मुख जाकर मन डोला ।।१।।
सो अबहीं बरु जाइ पराई । रण सन्मुख भागे न भलाई ।।२।।
निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा । देहौं उतर जो रिपु चढ़ि आवा ।।३।।
असकहि मरुत वेगिरथ साजा । बाजहिं सकल जुझाउ बाजा ।।४।।
चले वीरसब अतुलित बली । जनु कज्जलगिरि आँधी चली ।।५।।
कहै दशानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन के ठट्टा ।।६।।
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई । असकहि सन्मुख फौज चलाई ।।७।।

दोहा—"दुहुँ दिशि जय जयकार करि, निजनिजजोरीजानि ।
भिरे बीर इत रघुपतिहि, उत रावणहि बखानि ।।५७।।

रावण रथी विरथ रघुवीरा । देख विभीषण भयो अधीरा ।।१।।"
वि०—नाथ न रथ नहिंतनुपदत्राना। किहिविधि जीतब रिपुबलवाना।।२।।
रा०—सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिजय होय सो स्यंदन आना।।३।।

(राम का रावण से युद्ध)

टीका—रावण ने योद्धाओं को बुलाकर कहा—युद्ध के सन्मुख जिसका मन डोला।।१।। सो अच्छा है कि अभी भाग जाय। पर युद्ध के सन्मुख भागना भली नहीं।।२।। अपने भुजबल से मैंने वैर बढ़ाया है; जो शत्रु चढ़ आया है उसे मैं स्वयं उत्तर दूंगा।।३।। ऐसा कह पवन के समान वेगगामी रथ सजाया और जुझाऊ बाजे बजने लगे।।४।। सब बड़े बली वीर चले, मानो कज्जलपर्वत और आंधी चली।।५।। रावण बोला—हे योद्धाओ! सुनो रीछ वानरों के समूहों को मर्दन करो।।६।। और मैं उन दोनों भाइयों को जो भूप कहाते हैं, मारूंगा। ऐसा कहकर सन्मुख सेना चलाई।।७।। दोहार्थ—दोनों ओर जयजयकार कर अपनी अपनी जोड़ी जानकर इधर राम उधर रावण की जय जयकार कर वीर भिड़े।।५७।। चौ०—रावण रथी और राम रथरहित थे, यह देख विभीषण अधीर हो बोला।।१।। हे नाथ! न तो आपके रथ न पदत्रान है, इससे बली शत्रु से कैसे जीतोगे?।।२।। रामचन्द्र बोले—हे सखा! जिससे जय होती है वह स्यन्दन और है।।३।।

शौरजधीर जाहि रथचाका । सत्य शील दृढ़ध्वजापताका ।।४।।
बल विवेक दम परहित घोरे । क्षमा दया समतारजु जोरे ।।५।।

ईश भजन सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ।।६।।
दानपरशु बुधिशक्ति प्रचंडा । वर विज्ञान कठिन कोदण्डा ।।७।।
संयमनियम शिली मुख नाना । अमल अचल मनत्रोन समाना ।।८।।
कवच अभेद विप्रपद पूजा । इहि सम विजय उपावन दूजा ।।९।।
सखा धर्ममय असरथजाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपुताके ।।१०।।

दोहा–महाघोर संसार रिपु, जीति सकै को वीर ।
जाके अस रथ होय दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ।।।५८।।
सुनत विभीषण प्रभु वचन, मुदित गहे पदकंज ।
यहिविधि मोहिं उपदेश किय, रामकृपा सुखपुंज ।।५९।।
विचलत देखाकपिकटक, कपि निषंग धनु हाथ ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाय रामपद माथ ।।६०।।

ल०-रे खलका मारसि कपिभालू । मोहिं बिलोकु तोर मैं कालू ।।१।।

शूरता और वीरता उसके पहिये हैं सत्य और शील दृढ़ ध्वजा पताका हैं।।४।। बल, विवेक, इंद्रियनिग्रह, परोपकार ही चार घोड़े हैं, क्षमा, दया, समता की रज्जु में जोड़े हैं।।५।। ईश्वर का भजन सारथी है वैराग्य की ढाल और संतोष ही तलवार है।।६।। दान फरशा बुद्धि प्रचण्डशक्ति विज्ञान ही कठिन धनुष है।।७।। संयम अनेक प्रकार के बाण है निर्मल अचल मन तर्कस के समान है।।८।। ब्राह्मणों के चरणों की पूजा ही अभेद कवच है इसके समान विजय का और उपाय नहीं है।।९।। हे सखा! जिसके धर्ममय ऐसा रत है उसको कोई शत्रु नहीं जीत सकता।।१०।। दोहार्थ–इस महाघोर संसार रूपी शत्रु को कौन जीत सकता है है मतिधीर सखा! जिसके ऐसा रथ होय वही जीत सकता है।।५८।। यह विभीषण ने प्रभु के वचन सुन चरण स्पर्शकर कहा कृपासागर राम! आपने इस प्रकार मुझे उपदेश किया है।।५९।। वानरों का कटक विचलता देख कमर में तरकस हाथ में धनुष ले राम के चरणों में माथा नवाय लक्ष्मण चले।।६०।। चौ०–लक्ष्मण-अरे दुष्ट! रीछ वानरों को क्या मारता है मुझे देख मैं तेरा काल हूँ।।१।।

रा०-खोजत रहेउँ तोहिं सुतघाती । आजु निपाति जुड़ावौं छाती ।।२।।
असकहि छांड़ेसि बाण प्रचण्डा । लक्ष्मण किये शरहति शतखण्डा ।।३।।
कोटिन आयुध रावण डारे । तिल समान प्रभु कोटि निवारे ।।४।।
शत शत शर मारे दशभाला । गिरि शृंगनजनु प्रविशहिं व्याला ।।५।।
पुनि शत शर मारे उरमाहीं । परेउ अवनि तनु सुधि कछु नाहीं ।।६।।
उठा प्रबल पुनि मूर्छा जागी । छांड़ेसि ब्रह्मदत्त जो सांगी ।।७।।

छन्द–जो ब्रह्मदत्त प्रचण्ड शक्ति अनन्त उर लागी सही ।
परचो वीर विकल उठाय दशमुख अतुल बल महिमा रही ।
ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक शिर जिमि रजकनी ।
सो चह उठावत मूढ़ रावण जान नहिं त्रिभुवनधनी ।।१।।
दोहा–देखत धावा पवनसुत, बोलत वचन कठोर ।
आवत तेहि उरमहँ हनेउ, मुष्टि प्रहार प्रजोर ।।६१।।
जानु टेककपि भूमि न परेऊ । उठा सँभारि बहुरि रिस भरेऊ ।।१।।
मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेऊ शैल जिमि वज्र प्रहारा ।।२।।

रावण–हे सुतघाती! मैं तुमको बहुत समय से खोजता रहा आज तुझे मार छाती ठंढ़ी करूंगा।।२।। ऐसा कह तीक्ष्ण बाण चलाये लक्ष्मण ने बाण मारकर उनके सौ सौ खण्ड किये।।३।। अनेक आयुध रावण ने प्रहार किये प्रभु ने तिल के समान काटकर फेंक दिये।।४।। सौ सौ बाण दश दश शिरों में मारे वह पर्वत शृंग में सर्प के समान प्रवेश कर गये।।५।। फिर सौ बाण हृदय में मारे जिनसे वह भूमि पर गिर गया शरीर की सुधि न रही।।६।। फिर मूर्च्छा जागने से प्रबल हो उठा ब्रह्मा की दी हुई सांग छोड़ी।।७।। छन्दार्थ–वह ब्रह्मदत्त शक्ति लक्ष्मण के हृदय में लगी वह बीर मूर्च्छित हो भूमि में गिरे तब रावण उठाने लगा अतुल बल की महिमा रही, जिसके एक शिर पर रजकण के समान ब्रह्माण्ड विराजमान है मूढ़ रावण उसे उठाना चाहता है, त्रिभुवन धनी को नहीं जानता।।१।। दोहार्थ–देखते ही कठोर वचन कहते महावीर धावमान हुए और आते ही रावण ने उनके हृदय में वेग से एक मुष्टिक प्रहार किया।।६१।। चौ०–जानु टेक दी पर महावीर भूमि में नहीं गिरे और सँभल कर बड़े वेग से उठे।।१।। उसके घूंसा मारा और वह व्रज लगने से शैल के समान भूमि में गिरा।।२।।

मूर्छा गई बहुरि सो जागा । कपि बल विपुल सराहन लागा ।।३।।
म०-धिक् धिक् बल पौरुष धिक् मोही । जो तै जियत उठा सुरद्रोही ।।४।।
"असकहि कपि लक्ष्मण कहँल्याये । देखि दशानन विस्मय पाये ।।५।।
कह रघुवीर समुझि जिय भ्राता । तुम कृतांत भक्षक सुरत्राता ।।६।।
सुनत वचन उठि बैठ कृपाला । गगन गई सो शक्ति कराला ।।७।।
दोहा–वहां दशानन जायकर, करन लाग कछु यज्ञ ।
जय चाहत रघुपति विमुख, काल विवश शठ अज्ञ ।।६२।।
इहां विभीषण सब सुधि पाई । सपदि जाय रघुपतिहिं सुनाई ।।१।।
विभी०-नाथ करै रावण इक यागा । सिद्ध भये नहिं मरहि अभागा ।।२।।

पठवहु नाथ वेगिभट बन्दर । करहिं विध्वंस आवदश कंधर ।।३।।
"प्रात होय प्रभु सुभट पठाये । हनुमदादि बंदर सब धाये ।।४।।
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका । पैठे रावण भवन अशंका ।।५।।
जबहीं यज्ञ करत तेहि देखा । सकल कपिन भा क्रोध विशेखा ।।६।।
रणते भाग निलज गृह आवा । यहां आय बक ध्यान लगावा ।।७।।
अस कहि अंगद मारेउ लाता । चितव न शठस्वारथ मनराता ।।८।।

मूर्च्छा जाने से रावण महावीर के बल की सराहना करने लगा।।३।। महावीर मेरे बल पौरुष को धिक्कार है।।२।। हे सुरद्रोही! तू जो जीता उठा है।।४।। यह कह महावीर लक्ष्मण को लाये, देखकर रावण को बड़ा विस्मय हुआ।।५।। रामचन्द्र बोले-भ्राता! समझ देखो कि तुम काल के भक्षक हो देवताओं के रक्षक हो।।६।। यह वचन सुन लक्ष्मण उठ बैठे वह कराल शक्ति आकाश को गई।।७।। दोहार्थ–उधर रावण जाकर यज्ञ करने लगा वह मूर्ख राम के विमुख होने से काल के वशीभूत होकर भी जय चाहता है।।६२।। चौ०–यहां बिभीषण ने समाचार पाय शीघ्र राम से जाय कहा।।१।। हे नाथ! रावण एक यज्ञ करता है सिद्ध होने से वह अभागा नहीं मरेगा।।२।। हे नाथ! शीघ्र ही सुभट वानर भेजो वह यज्ञ विध्वंस करें जिससे रावण आवे।।३।। प्रभात होते ही प्रभु ने योद्धा भेजे हनूमान आदि सब बंदर गये।।४।। कौतुक से कपि लंका में कूद चढ़े और रावण के भवन में अशंक हो घुस गये।।५।। उसे यज्ञ करते देख कपियों को बड़ा क्रोध हुआ।।६।। हे निर्लज्ज! युद्ध से भागकर घर आया है और यहां बगले का सा ध्यान लगाया है।।७।। यह कह अंगद ने लात मारी पर उस स्वार्थी शठ ने न देखा।।८।।

दोहा–छन्द–नहिं चितव जब कपि कोपितब गहि दशन लागत मारहीं ।।
धरि केश नारि निकारिबाहर जब सो दीन पुकारहीं ।।
तब उठा कोपि कृतांत सम गहि चरण वानर डारहीं ।।
इहि भाँति यज्ञ विध्वंस करि कपि नेकु मनहिं न हारहीं ।।१।।
दोहा–मखविध्वंस करि कपि सकल, आये रघुपति पास ।
चला दशानन क्रोध कर, छांड़ी जियकी आस ।।६३।।

देवन प्रभुहि पयादे देखा । उर उपजा अति क्षोभ विशेषा ।।१।।
सुरपति निजरथ तुरत पठावा । हर्ष सहित मातलि ले आवा ।।२।।
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा । विहँसि चढ़े कोशलपतिभूपा ।।३।।
रथारूढ रघुनाथहिं देखी । धाये कपि बल पाय विशेषी ।।४।।
तब लंकेश क्रोध उर छावा । गर्ज तर्ज कर सन्मुख धावा ।।५।।

रा०-जीतेउ जो भट संयुगमाहीं । सुनतापस मैं तिनसम नाहीं ॥६॥
रावण नाम जगत यश जाना । लोकपाल जेहि बन्दीखाना ॥७॥
खरदूषण विराध तुम मारा । हतेउ व्याध इव बालि विचारा ॥८॥

छन्दार्थ–जब न देखा तब वानरों ने दांतों से काट लातों से मारना प्रारंभ किया बाल पकड़ उनकी स्त्रियों को बाहर ले आये जब वे दीन होकर पुकारने लगीं तब काल के समान क्रोधकर चरण पकड़ वानरों को डालने लगा इस प्रकार यज्ञ विध्वंस कर वानर हार नहीं मानते॥९॥ दोहार्थ–यज्ञ विध्वंस कर सब वानर रामचन्द्र पर आये इधर जीकी आशा छोड़कर क्रोधकर रावण चला॥६३॥ चौ०–देवताओं ने प्रभु को पयादे देखा तब मनमें बड़ा क्षोभ हुआ॥१॥ इन्द्र ने तुरंत अपना रथ भेजा प्रसन्न हो मातलि ले आया॥२॥ वह तेजपुंज दिव्य और अनूप रथ था, उस पर कोशलपुर के राजा प्रसन्न हो चढ़े॥३॥ रघुनाथजी को रथारूढ़ देख विशेष बलपाय वानर धावमान हुए॥४॥ तब रावण क्रोधकर गर्जता हुआ सन्मुख आया, और बोला॥५॥ हे तापस! जो योद्धा तुमने समर में जीते हैं, मैं उनके समान नहीं हूँ॥६॥ मेरा रावण नाम है मेरे यश को जगत् जानता है लोकपाल जिसके बन्दीखाने में हैं॥७॥ खर दूषण और विराध को तुमने मारा है व्याध के समान विचारे बालि को मारा॥८॥

निशिचर सुभट सकल संहारे । कुम्भकर्ण घननादहि मारे ॥९॥
आज वैर सबलेहुँ निबाही । जो रणभूमि भाग नहिं जाहीं ॥१०॥
आज करौं खल काल हवाले । परेउ कठिन रावणके पाले ॥११॥
सुनि दुर्वचन कालवश जाना । बिहँसि वचन कह कृपानिधाना ॥१२॥
राम–सत्य सत्य तव सब प्रभुताई । जनि जल्पसि देखब मनुसाई ॥१३॥
"कहि दुर्वचन क्रोध दशकंधर । कुलिश समान लागछांड़न शर ॥१४॥
अनल बाण छांड़े रघुवीरा । क्षणमहँ जरे निशाचरतीरा ॥१५॥
छांड़ेसि तीव्रशक्ति खिसियाई । बाणसंगप्रभु फेरि पठाई ॥१६॥

दोहा–पुनि रावण अति क्रोधकर, छाँड़ी शक्ति प्रचण्ड ।
सन्मुख चली विभीषणहिं, मनहुँ कालकोदण्ड ॥६४॥

आवत देखि शक्ति खर धारा । प्रणतारतिहरि विरद सँभारा ॥१॥
तुरत विभीषण पाछे मेला । सन्मुख राम सह्यो सो शेला ॥२॥
देखि विभीषण प्रभु श्रमपायउ । गहिकर गदा क्रोध कर धायउ ॥३॥"
विभी०–रे अभाग्य शठमंद कुबुद्धे । तैंसुरनर मुनि नाग विरुद्धे ॥४॥

सब योद्धा राक्षस तुमने मारे मेघनाद कुम्भकर्ण को मारा ।।९।। वह वैर आज सब निकाल लूंगा जो युद्धभूमि छोड़कर भाग न जाओगे तो।।१०।। हे शठ! आज काल के हवाले करूंगा कठिन रावण के पाले पड़े हो।।११।। यह दुर्वचन सुन कालवश जान हँसकर रामचन्द्र बोले।।१२।। तेरी वीरता सत्य है बकवाद मतकर मैं धीरता देखूंगा।।१३।। तब रावण दुर्वचन कह वज्र के समान बाण प्रभु पर छोड़ने लगा।।१४।। रघुवीर ने अग्निबाण छोड़े जिनसे राक्षस के तीर क्षण में भस्म हो गये।।१५।। फिर खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति चलाई वह प्रभु ने बाण के संग ही लौटा दी।।१६।। फिर रावण ने बड़ा क्रोध कर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी वह काल के धनुष के समान विभीषण के सन्मुख चली ।।६४।। चौ०–उस शक्ति को आती देख भगवान् ने शरणागत रक्षण का विभीषण ने देखा कि प्रभु को श्रम हुआ तब गदा लेकर सन्मुख दौड़ा।।३।। बिभीषण बोला–रे अभागे शठ मन्द कुबुद्धि रावण! तैंने सुर नर मुनि नाग सबसे विरोध किया है।।४।।

सादर शिव कहँशीश चढ़ाये । एक एकके कोटिन पाये ।।५।।
तेहि कारण खल अबलगिबांचा । अब तव काल शीश पर नाचा ।।६।।
राम विमुख शठ चहसि संपदा । अस कहिहनेसिमाँझ उरगदा ।।७।।
"देखा श्रमित विभीषण भारी । धाये हनूमान गिरिधारी ।।८।।
रथ तुरंग सारथी निपाता । हृदय माँझ मारेउ तेहि लाता ।।९।।
भयो क्रोध रावण बलवाना । गहिपदमहि पटके भटनाना ।।१०।।
देखि भालुपति निजदल घाता । तासु हृदय महँ मारेउ लाता ।।११।।
दोहा–मूर्छा विगत भालु कपि, सब आये प्रभु पास ।
सकल निशाचर रावणहि, घेरि रहे अति त्रास ।।६५।।"

स्थान अशोकवाटिका

(सीता त्रिजटा का संवाद वर्णन)

"तेहि निशिमें सीता पहँ जाई । त्रिजटा कहि सब कथा बुझाई ।।१।।
शिरभुज बाढ़ि सुनत रिपुकेरी । सीता उरभइ त्रासघनेरी ।।२।।"
सीता-होइहि कहसिकिन माता । केहि विधि मरहि विश्व दुखदाता ।।३।।
रघुपति शर शिर कटे न मरई । विधि विपरीत चरित सब करई ।।४।।

आदर से तैंने शिव को शीश चढ़ाकर एक एक के कोटिन पाये हैं।।५।। हे खल! इसीसे अब तक बचा है पर अब तेरे शिर पर काल नाचा है।।६।। हे शठ! राम के विमुख सम्पत्ति चाहता है ऐसा कह हृदय में गदा मारी युद्ध होने लगा।।७।। तब विभीषण को श्रमित देख पर्वत खण्ड उठाय महावीर धावमान हुए।।८।। रावण के रथ घोड़े और सारथी को मार दिया हृदय में लात

मारी।।९।। तब रावण को बड़ा क्रोध हुआ चरण पकड़ २ योद्धाओं को भूमि पर पटक दिया।।१०।। तव जाम्बवन्त ने अपने दल का घात देख रावण के हृदय में लात मारी इससे वह मूर्च्छित हुआ।।११।। दोहार्थ–इधर मूर्च्छा छूटने से भालु कपि प्रभु के पास आये और सब निशाचर रावण को घेरकर दुःख करने लगे।।६५।। चौ०–उसी रात में सीता पर जाकर त्रिजटा ने सब कथा सुनाई।।१।। शत्रु का शिर और भुजाओं की वृद्धि सुन सीता के मन में बड़ा त्रास हुआ।।२।। बोली कि, हे माता! कहो क्या होगा।।३।। जब राम के शिर काटने से भी नहीं मरता तो यह विपरीत विधाता ही सब चरित्र करता है।।४।।

कह त्रिजटासुन राजकुमारी । उरशर लागत मरहि सुरारी ।।५।।
दोहा–काटत शिर हुइहै विकल, छूटि जाय तव ध्यान ।
तब रावणके हृदय शर, मारहिं कृपानिधान ।।६६।।

(गई)

यहां अर्ध निशिरावण जागा । निजसारथि सन खीजन लागा ।।१।।
शठ रणभूमि छुड़ायहु मोहीं । अधमनिलज्ज लाज नहिं तोहीं ।।२।।

(फिर आनकर युद्ध करता है रामचन्द्र बिभीषण की ओर देखते हैं)

वि०-सुन सर्वज्ञ चराचर नायक । प्रणतपालसुर मुनि सुखदायक ।।३।।
नाभी कुण्ड सुधा बस वाके । नाथ जियै रावणबल ताके ।।४।।
"सुनत विभीषण वचन कृपाला । हर्ष गहे कर बाण कराला*।।५।।"

त्रिजटा बोली-हे राजकुमारी! यह देवशत्रु हृदय में शर लगने से मरैगा।।५।। दोहार्थ–जब शिर कटते में व्याकुल हो जाने से तुम्हारा ध्यान छूट जायगा तब रावण के हृदय में रामचन्द्र बाण मारैंगे।।६६।। यहां आधी रात को रावण जागा और अपने सारथी से रिसाकर कहा।।१।। हे शठ! तैंने मुझसे रणभूमि छुड़ाई अधम निर्लज्ज तुझको लाज नहीं आती।।२।। (फिर आकर महायुद्ध करता है तब श्रमित हो राम विभीषण को देखते हैं) विभीषण बोले हे सर्वज्ञ! चर अचर के स्वामी! सुनो हे प्रणतपाल! सुर मुनियों के सुख देनेवाले।।३।। रावण की नाभि में अमृत है, हे नाथ! रावण उसके बल से जीता है।।४।। विभीषण के वचन सुन रघुनाथजी ने प्रसन्न हो बाण लिये।।५।।

---

* भजन–रघुवर आज युद्ध कियो भारी ।।
जब रावणने सब विधि अपनी माया दीन पसारी ।
एक बाणमें सब प्रभु काटी जैसे मिटै तम रवि उजियारी ।।१।।
इकतिस बाण लिए रघुबरने इक संग धनुपर धारी ।
खैंच तान रावणके मारे शीश भुजा उड़ गये विबुधारी ।।२।।

दोहा–आकर्षेउ धनु श्रवणलगि, छाँडे शर इकतीस ।
रघुनायक सायक चले, मानहु कालफणीश ॥६७॥

सायक एक नाभिसर शोषा । अपर लगे शिरभुज करिरोषा ॥१॥
ले शिर बाहु चले नाराचा । शिरभुज हीन रुंड महि नाचा ॥२॥
धरणि धसै धर धाव प्रचण्डा । तब प्रभुशर हति कृतयुगखंडा ॥३॥
गर्जेउ मरत घोररव भारी । कहाँ राम रण हतौं प्रचारी ॥४॥
डोली भूमि गिरत दशकंधर । क्षुभित सिन्धु सर दिग्गजभूधर ॥५॥
तासु तेज समान प्रभु आनन । हर्षे देखि शंभु चतुरानन ॥६॥
जय ध्वनि पूरि रही नवखण्डा । जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा ॥७॥
वर्षहिं सुमन देव मुनि वृन्दा । जयकृपाल जय जयति मुकुन्दा ॥८॥"

देवमुनि छंद–जय कृपाकन्द मुकुन्दद्वन्दहरण शरणप्रभो ।
"खलदलविदारण परमकारण कारुणीक सदा विभो ।
सुर सुमन वर्षहिं हर्ष संकुल बाज दुन्दुभि गहगही ।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु शोभा लही ॥१॥"

दोहार्थ–श्रवणपर्यंत धनुष खैंचकर ३१ बाण छोड़े वे राम के बाण काल के सर्प के समान चले।।६७।। एक बाण ने नाभि का सर शोषा और शिर भुजाओं में लगे।।१।। वह बाण शिर और भुजाओं को लेकर चले तब शिर भुजहीन रुण्ड भूमि में नाचने लगा।।२।। उसके धावमान होने से पृथ्वी धसक गई तब प्रभु ने बाण मार उसके दो खण्ड किये।।३।। मरते समय बड़ा घोर शब्द किया राम कहां है जो प्रचारकर मारूं।।४।। रावण के गिरने से भूमि डोल गई सागर सरोवर दिग्गज पर्वत क्षुभित हो गये।।५।। उसका तेज प्रभु के मुख में समा गया शिव ब्रह्मा देखकर प्रसन्न हुए।।६।। नौ खंडों में जय की धुनि फैल गई राम के अखंड प्रताप की जय हो।।७।। देवता फूल बरसाते हैं और मुनिसमूह जय कृपालु जय मुकुन्द ऐसा कहते हैं।।८।। छन्दार्थ–हे कृपाकन्द मुकुन्द! दुःख हरनेवाले शरणागत सुखदायक हे प्रभु! खलों का दल नाश करनेवाले परमकारण करुणामय सदाव्यापक आपकी जय हो, देवता प्रसन्न हो फूल बरसाते हैं आकाश से गहगहे निशान बजते हैं संग्राम भूमि में राम की अनेक कामदेव की समान शोभा हो रही है।।१।।

ले शिर बाहु मन्दोदरि आगे राम शरन दिये डारी ।
विजय रामकी भई चहूँ दिशि दैवनने जय जयति पुकारी ॥३॥
सुर मुनि सिद्ध नागपवनादिक वरुणदेव तपधारी ।
मिश्र भये सबही प्रमुदित मन परमानंद तनु सुरति बिसारी ॥४॥

दोहा–कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृन्द ।
हर्षे वानर भालु कपि, जय सुखधाम मुकुन्द* ।।६८।।

(रामचन्द्रजी स्वस्थान को गये)

इति सप्तम दर्शन

दोहार्थ–प्रभु ने कृपा की दृष्टिकर सब देवताओं को अभय किया और सब रीछ वानर प्रसन्न हो प्रभु को जयजयकार करते हैं, हे सुखधाम मुकुन्द! आपकी जय हो।।६८।।

इति सप्तम दर्शन

अथ अष्टम दर्शन

मन्दोदरी का विलाप

"पति शिर देखत मन्दोदरी । मूर्छित विकल धरणि खसिपरी ।।१।।"
म०–तव बलनाथ डोलनितधरणी । तेजहीन पावक शशितरणी ।।२।।
शेष कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु आज परा मरिछारा ।।३।।
वरुण कुबेर सुरेश समीरा । रणसन्मुख धरु काहु न धीरा ।।४।।

टीका–पति का शिर देख मन्दोदरी व्याकुल हो भूमि में गिर पड़ी और बोली।।१।। हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी डोलती थी अग्नि चंद्र सूर्य तेजहीन हो गये थे।।२।। शेष कमठ तुम्हारा भार नहीं सह सकते थे वह शरीर आज धूरि में पड़ा है।।३।। वरुण कुबेर इंद्र पवन किसीने भी तुम्हारे सन्मुख युद्ध में धीर न धरा ।।४।।

भुजबल जितेउ कालयम सांई । आजु परेउ अनाथकी नाईं ।।५।।
जगत विदित तुम्हार प्रभुताई । सुत परिजनबल वरणि न जाई ।।६।।
राम विमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कुलकोउ रोवनहारा ।।७।।

---

* राग कान्हरा–राजत राम काम शत सुन्दर ।।
रिपु रण जीति अनुज संग शोभित फेरत चाप विशिष वनरुह कर ।
श्यामशरीर रुचिर श्रम सीकर शोणित कण विच बीच मनोहर ।।
जनु खद्योत निकर हर हित गण भ्राजत मर्कत शैल शिखर पर ।
घायल बीर बिराजत चहुँ दिशि हरषित सकल ऋच्छ अरु वनचर ।।
कुसुमित किंशुक तरुसमूहमहं तरुण विशाल विटप वर ।
राजिवनयन विलोकि कृपाकरि किये अभय मुनि नाग विबुध नर ।।
तुलसिदास यह रूप अनूपम हृदयसरोज बसि दुसहविपतिहर ।।१।।

छन्द–जानेउ मनुज करि दनुजकानन दहनपावक हरि स्वयं ।
जेहि नवत सुर ब्रह्मादि पिय तेहि भजेहु ना करुणामयं ।।
आजन्मते परद्रोहरति पापौघमय तव तनु अयं ।
तुमहूँ दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं ।।१।।

दोहा–अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धुको आन ।
मुनि दुर्लभ जो परमगति, तुमहिं दीन्ह भगवान ।।६९।।

रुदन करत देखी सब नारी । भयो विभीषण मन दुख भारी ।।१।।
लक्ष्मण तेहि बहुविधि समुझाये । सहित विभीषण प्रभुपहँ आये ।।२।।
कृपादृष्टि प्रभु ताहि विलोका । करहु क्रिया परिहरि सबशोका ।।३।।
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी । विधिवत देशकाल गति जानी ।।४।।

हे स्वामी! काल और यम को भुजाओं के बल से जीता आज अनाथ के समान भूमि में पड़े हो।।५।। तुम्हारी प्रभुताई जगतविदित है सुत कुटुम्बियों का बल नहीं कहा जाता।।६।। राम से विमुख होने से तुम्हारा यह हाल हुआ कि कुल में कोई रोनेवाला न रहा।।७।। छंदार्थ–जो राक्षसों के वन को जलाने को स्वयं हरि हैं हे पिया! तुमने उनको मनुष्य करके जाना जिसको देवता सुर ब्रह्मादिक भजते हैं हे पिया! उस करुणासागर का तुमने भजन न किया जन्म से ही तुम पराये द्रोह में रत रहे तुम्हारा यह शरीर पापसमूह में ही रहा ऐसे तुमको भी जिन्होंने अपना धाम दिया उन राम को मैं प्रणाम करती हूं।।१।। दोहार्थ–हे नाथ! रघुनाथ के समान कृपासागर कौन है जो मुनियों को परमगति दुर्लभ है सो भगवान् ने तुमको दी है।।६९।। चौ०–इस प्रकार सब स्त्रियों को रोती देखकर विभीषण परम दुःखी हुआ।।१।। लक्ष्मण ने उसको बहुत प्रकार समझाया विभीषण सहित प्रभु के पास आये।।२।। प्रभु ने कृपादृष्टि कर उसको देखा और कहा सब शोक त्याग क्रिया करो।।३।। प्रभु की आज्ञा मान देशकाल के अनुसार विधिपूर्वक रावण की क्रिया की।।४।।

दोहा–मयतनयादिक नारि सब, देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गई रघुवीरगुण, गण वर्णति मनमांहि ।।७०।।

आय विभीषण पुनि शिरनावा । कृपासिन्धु तब अनुज बुलावा ।।१।।
राम-तुम कपीश अंगद नल नीला । जाम्बवन्त मारुत नयशीला ।।२।।
सब मिलि जाहु विभीषण साथा । सारहु तिलक कह्यो रघुनाथा ।।३।।
पितावचन मैं नगर न जाऊँ । आपु सरिस कपि अनुज पठाऊँ ।।४।।
सुनत चले कपि सब प्रभुवचना । कीन्हीं जाय तिलककी रचना ।।५।।
सादर सिंहासन बैठारी । तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।।६।।

जोरि पाणि सबही शिर नाये । सहित विभीषण प्रभुपहँ आये ।।७।।
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हें । कहि प्रियवचन सुखी सब कीन्हें ।।८।।
राम-छन्द-किय सुखी कहि वानी सुधासम बल तिहारे रिपुहयो ।
पायो विभीषण राज तिहुँ पुर यश तुम्हारो नित नयो ।।
मोहिं सहित शुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइ हैं ।
संसारसिन्धु अपार पार प्रयास विनु तर जाइ हैं ।।१।।

दोहार्थ-मन्दोदरी आदि ने उसको तिलांजलि दी और राम के गुण मन में वर्णन करती घर गई ।।७०।। चौ०-विभीषण ने आनकर शिर नवाया तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण को बुलाया ।।११।। तब सुग्रीव अंगद नल नील जांबवंत और नीतिमान् हनुमान्।।२।। यह सब विभीषण के साथ जाओ और इनका लंका के राज्य में तिलक कर दो।।३।। पिता के वचन से मैं नगर में नहीं जाऊंगा परन्तु अपने समान कपि और अनुज को भेजता हूं।।४।। प्रभु के वचन सुन सब कपि चले और जाकर तिलक की रचना की।।५।। आदर से सिंहासन पर बैठाये हाथ जोड़ स्तुति की।।६।। हाथ जोड़कर सबने शिर नवाया फिर विभीषण सहित प्रभुपर आये।।७।। तब रामचंद्र ने वानरों को बुलाय प्रियवचन कह सबको सुखी किया।।८।। छंदार्थ-अमृत के समान वाणी सुनाय सबको सुखी किया मैंने तुम्हारे बल से शत्रु को मारा, विभीषण त्रिलोकी का राज्य पाया तुम्हारा यश नित नया है मेरे सहित जो तुम्हारी कीर्ति प्रेमसहित गावैंगे वह अपार संसार सागर को विना प्रयास तर जायँगे।।१।।

दोहा-प्रभु के वचन श्रवणकर, नहिं अघात कपिपुञ्ज ।
बार बार शिर नावहीं । गहहिं सकल पदकंज ।।७१।।

पुनि प्रभु बोलि लिये हनुमाना । लंका जाहु कह्यो भगवाना ।।१।।
रा०-समाचार जानकिहि सुनावहु । तासुकुशल लै तुम चलि आवहु ।।२।।
तब हनुमन्त नगर में आये । सुनिनिशिचरी निशाचर धाये ।।३।।
पूजा बहु प्रकार तिन कीन्हीं । जनकसुता दिखाय पुनिदीन्हीं ।।४।।
दूरिहिते प्रणाम कपि कीन्हा । रघुपतिदूत जानकी चीन्हा ।।५।।
सी०-कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुशल अनुज कपि सेनसमेता ।।६।।
ह०-सबविधिकुशल कौशलाधीशा । मातु समर जीत्यो दशशीशा ।।७।।
अविचलराज्य विभीषण पावा । सुन कपिवचन हर्ष उर छावा ।।८।।
सीता-छंद-अतिहर्षमनतनु पुलकलोचन सजल पुनिपुनि कह रमा ।।
का देहुँ तोहिं त्रैलोक्यमहँ कपि किमपि नहिं बाणीसमा ।।

हनु०–सुन मातु मैं पायों अखिल जगराज आज न संशयम् ।
रणजीत रिपुदल बन्धुयुत पश्यामि राम निरामयम् ।।१।।

दोहार्थ–यह प्रभु के वचन श्रवण कर वानर नहीं अघाते हैं, और चरण पकड़ कर बारंबार शिर नवाते हैं।।७१।। चौ०–फिर प्रभु ने महावीर को बुलाकर कहा–तुम मेरे निमित्त लंका को जाओ।।१।। जानकी को समाचार सुनाकर उनकी कुशल ले बहुत शीघ्र आओ।।२।। तब महावीर नगर में आये सुनकर निशिचरी और निशाचर सत्कार को दौड़े।।३।। बहुत भांति से महावीर का सत्कार कर जानकी को दिखा दिया।।४।। कपि ने दूर से प्रणाम किया, जानकी ने राम के दूत को पहचाना।।५।। सीता–हे तात! कहो! कृपासागर प्रभु अनुज कपि और सेना समेत कुशल हैं।।६।। महावीर–सब प्रकार रघुनाथजी कुशल हैं हे माता! समर में रावण को जीत लिया।।७।। बिभीषण को अचल राज्य मिला। यह कपि के वचन सुन मन बड़ा प्रसन्न हुआ।।८।। छन्दार्थ–मन में हर्ष शरीर में पुलकावली नेत्रों में जल भर जानकी बोली हे कपि! तुमको क्या दूं। त्रिलोकी में वाणी के समान और कुछ नहीं है। महावीर बोले–हे माता! इसमें सन्देह नहीं, मैंने त्रिलोकी का राज्य पा लिया जो शत्रु को कुटुम्बसहित जीतकर राम को भ्रातासहित कुशल देखता हूं।।१।।

सीता–दोहा–सुत सुन सद्गुण सकल तव, हृदय बसहु हनुमन्त ।
सानुकूल रघुवंशमणि, रहहिं समेत अनन्त ।।७२।।
अब सोइ यत्न करहु तुम ताता । देखौं नयन श्याम मृदुगाता ।।१।।
"तब हनुमन्त रामपहँ आई । जनकसुता की कुशल सुनाई ।।२।।"
सुनि वाणी पतंगकुलभूषण । बोलि लिये युवराज बिभीषण ।।३।।
राम–मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुता लै आवहु ।।४।।
"तुरतहि सकल गये जहँ सीता । सेवहिं सब निश्चरी विनीता ।।५।।"
देखि विभीषण तिनहिं सिखावा । सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा ।।६।।
दिव्य वसन भूषण पहिराई । शिबिका रुचिर साजि पुनि लाई ।।७।।
तेहि पर हर्ष चढ़ी वैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ।।८।।
देखन भालु कीश कपि आये । रक्षक कोटि निवारण धाये ।।९।।
राम–कह रघुवीर कहा मममानहु । सीतहि सखा पयादेहि आनहु ।।१०।।
देखहि कपि जननीकी नाईं । विहँसि कहा रघुवीर गुसाईं ।।११।।
"सुनि प्रभुवचन भालु कपि हर्षे । नभते सुरन सुमन बहु वर्षे ।।१२।।
सीता प्रथम अनलमहँ राखी । प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी ।।१३।।

दोहार्थ–सीता–हे पुत्र! सम्पूर्ण सद्गुण तुम्हारे मन में बसैं और रघुवंशमणि भ्राता सहित तुम पर प्रसन्न रहें।।७२।। चौ०–हे तात! अब सो यत्न करो जिससे श्याम मृदुगात भगवान् का दर्शन करूं।।१।। तब हनुमान्‌जी ने रामपर आकर जानकी की कुशल सुनाई।।२।। यह वचन सुन रघुनाथजी ने कपिराज और विभीषण को बुलाया।।३।। कि तुम महावीर के साथ जाकर आदर से जानकी को लाओ।।४।। यह सुन सब सीता के निकट गये। उनको भय से सब राक्षसी सेवन करती थीं।।५।। देखकर विभीषण ने उनको सिखाया। आदर से उन्होंने जानकी को स्नान कराया।।६।। दिव्य भूषण पहराये और एक सुन्दर पालकी मँगाई, उसे सजाया।।७।। उस पर जानकी प्रसन्न हो रघुराज को स्मरण करती चढ़ी।।८।। जब जानकी आई, तब देखने को भालु कीश दौड़े। अनेक राक्षस निवारण करने लगे।।९।। तब रघुनाथजी बोले–हमारा कहना मानो हे सखा! जानकी को प्यादे ले आओ।।१०।। सब कपि माता के समान देखैं, यह बात श्रीराम ने हँसकर कही।।११।। यह प्रभु के वचन सुन भालु कपि प्रसन्न हुए आकाश से फूल बरषे।।१२।। पहले सीता को अनल में रखा था, अब राम उसे ही प्रगट करना चाहते हैं।।१३।।

दोहा–तेहि कारण करुणायतन, कहे कछुक दुर्वाद ।
सुनत यातुधानी सकल, लागीं करन विषाद ।।७३।।

प्रभु के वचन शीश धरि सीता । बोली मनक्रम वचन पुनीता ।।१।।"
सी०–लक्ष्मण होहु धर्म के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम बेगी ।।२।।
सुनत लषण सीता के वानी । विरह विवेक धर्म नय सानी ।।३।।
लोचन सजल जोर कर दोऊ । प्रभुसन कछु कहिसकत न ओऊ ।।४।।
देखि रामरुख लक्ष्मण धाये । पावक प्रगट काठ बहु लाये ।।५।।
प्रबल अनल विलोकि वैदेही । हृदय हर्ष कछु भय नहिं तेही ।।६।।
सी०–जो मनक्रम वचन मम उर माहीं । तजि रघुवीर आनगतिनाहीं ।।७।।
जो कृशानु सबकी गति जाना । मोकहँ होउ श्रीखण्ड समाना ।।८।।

छंद–श्रीखण्ड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोशलेश महेश वंदित चरणरज अति निर्मली ।।
प्रतिबिंब औ लौकिक कलंक प्रचण्ड पावकमहँ जरे ।
प्रभुचरित काहु न लखेउ नभसुर सिद्धमुनि देखत खरे ।।१।।

दोहार्थ–इसी से करुणासागर राम ने कुछ दुर्वचन कहे कि अब तुम हमारे काम की नहीं हो, जाओ। यह सुनकर सब राक्षसी विषाद करने लगीं।।७३।। चौ०–सीता प्रभु के वचन शिर पर धर मन, वचन, कर्म से पवित्र वचन बोली।।१।। लक्ष्मण! तुम धैर्य नेगी हो, शीघ्रता से अग्नि प्रगट करो।।२।। यह विरह विवेक धर्म नीति की सनी सीता की वाणी सुनकर लक्ष्मण।।३।। नेत्रों में जल भर प्रभु से कुछ न सह सके।।४।। राम का रुख देख लक्ष्मण गये और अग्नि प्रगट करने को काठ लाये।।५।। जानकी ने प्रबल अग्नि देखकर कुछ भय नहीं किया, मन में प्रसन्न हुईं।।६।। और बोलीं–जो मन, वचन, कर्म से मेरे हृदय में राम को छोड़कर दूसरी गति नहीं है।।७।। तो यह सबकी गति जानती है मुझे चन्दन के समान हो जाय।।८।। छंदार्थ–यह अग्नि चन्दन के समान हो

जाय, यह कह जानकी ने अग्नि में प्रवेश किया और महेश से वन्दना की हुई कोशलेश के चरणों की निर्मल रज की जय हो, यह कहा प्रतिविम्ब और लौकिक कलंक यह तो सब प्रचण्ड अग्नि में जल गये। प्रभु का चरित्र किसी ने नहीं जाना। आकाश में सुर, सिद्ध मुनि खड़े देखते हैं।।१।।

तब अनल भूसुररूप कर गहि सत्यश्रीश्रुति विदित जो ।
जिमि क्षीरसागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि ओ ।।
सोइ राम वाम विभाग राजत रुचिर अति शोभाभली ।
नवनील नीरज निकट मानहु कनकपंकज की कली ।।२।।

दोहा–हर्षि सुमन वर्षहिं विबुध, बाजहिं गगन निशान ।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढ़ी विमान ।।७४।।
श्रीजानकी समेत प्रभु, शोभा अमित अपार ।
देखि भालु कपि हर्षेउ, जय रघुपति सुखसार ।।७५।।

तब रघुपति अनुशासन पाई । मातलि चले चरण शिरनाई ।।१।।
आये देव सदा स्वारथी । वचन कहहिं जनु परमारथी ।।२।।
देव–दीनबन्धु दयालु रघुराया । देव कीन देवनपर दाया ।।३।।

दोहा–"करि विनती सुर सिद्धि सब, रहे जहँ तहँ कर जोर ।
अतिशय प्रेम सरोजभव, अस्तुति करत बहोर ।।७६।।"

ब्रह्मा–जयराम सदा सुखधाम हरे, रघुनायक सायक चापधरे ।।१।।
भववारण दारण सिंह प्रभो । गुणसागर नागरनाथ विभो ।।२।।

तब अग्नि ने ब्राह्मण का रूप धारण कर जो सत्य श्री वेद में विदित है वह राम को आनकर समर्पण की। जैसे पूर्व में लक्ष्मी को क्षीर सागर ने समर्पण किया था, सोई सीता राम के बाईं ओर विराजमान हो, ऐसे शोभित हुई जैसे नवीन नील कमल के निकट सोने के कमल की कली हो।।२।। दोहार्थ–तब देवताओं ने प्रसन्न हो फूल वर्षाये। आकाश में बाजे बजे, किन्नर सुरवधू विमान में चढ़ी नाचने गाने लगीं।।७४।। जानकी समेत प्रभु की बड़ी शोभा हुई देखकर भालु कपि प्रसन्न हुए कि सुख सागर राम की जय हो।।७५।। तब रघुनाथजी की आज्ञा पाय चरणों में शिर नवाय मातलि चले।।१।। फिर सदा के स्वार्थी देवता आये, परमार्थी के समान वचन कहने लगे।।२।। हे दीनबंधु दयालु रघुराज! हे देव! आपने देवताओं पर दया की।।३।। दोहार्थ–इस प्रकार सुर सिद्ध विनती कर जहां तहां हाथ जोड़ स्थित हुए। ब्रह्माजी बड़े प्रेम से स्तुति करने लगे।।७६।। चौ०–हे राम! हे सुखधाम! हे हरे! आपकी जय हो, हे रघुनायक! आप धनुष बाण लिये हो, आपकी जय हो।।१।। हे प्रभो! आप संसार रूपी हाथी के मारने को सिंह हो, हे व्यापक चतुर! आपके गुण सब कोई गाते हैं।।२।।

तनु काम अनेक अनूप छवि । गुण गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवि ।।३।।
अज व्यापक मेकमनादि सदा । करुणाकर राम नमामि मुदा ।।४।।

दोहा–विनय कीन चतुरानन, प्रेम प्रफुल्लित गात ।
शोभासिन्धु विलोकत, लोचन नाहिं अघात ।।७७।।

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये । तनयविलोकि नयनजल छाये ।।१।।
अनुजसहित प्रणामप्रभु कीन्हा । आशिर्वाद पिता तब दीन्हा ।।२।।
राम–तात सकल तवपुण्य प्रभाऊ । जीत्येउँ अजय निशाचर राऊ ।।३।।
सुन सुतवचन प्रीति अतिबाढ़ी । नयन नीर रोमावलि ठाढ़ी ।।४।।
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितै पितहि दीन्हों दृढ़ज्ञाना ।।५।।
बार बार कर प्रभुहि प्रणामा । दशरथ हर्षि गये निजधामा ।।६।।

दोहा–अनुज जानकी सहित प्रभु, कुशल कोशलाधीश ।
छबिविलोकि मन हर्षि अति, अस्तुति कर सुरईश ।।७८।।

इन्द्र–छन्द–जयराम शोभाधाम, दायक प्रणत विश्राम ।।
धृत तूण वर शर चाप, भुजदण्ड प्रबल प्रताप ।।१।।

आपके शरीर की छबि अनेक काम के समान उपमारहित है। सिद्ध मुनिराज और कवि तुम्हारा गुण गाते हैं।।३।। आप अजन्मा एक व्यापक और अनादि हो, हे करुणामय राम! मैं आपको सदा प्रणाम करता हूं।।४।। दोहार्थ–इस प्रकार प्रेम से पुलकित हो ब्रह्माजी ने विनय की और रघुनाथजी को देखकर नेत्र नहीं अघाते हैं।।७।। चौ०–उसी अवसर में दशरथजी आये और पुत्र को देख नेत्रों में जल छा गया।।१।। प्रभु ने भाई सहित प्रणाम किया तब पिता ने आशीर्वाद दिया।।२।। राम–हे तात! सब तुम्हारे पुण्य का प्रभाव है जो अजय निशाचरराज को जीता।।३।। यह पुत्र के वचन सुन बड़ी प्रीति बढ़ी, नेत्रों में जल भरा, रुएँ खड़े हो गये।।४।। रामचन्द्र ने पहले प्रेम का अनुमान कर पिता को देख दृढ़ ज्ञान दिया।।५।। बार बार प्रभु को प्रणामकर प्रसन्न हो दशरथ अपने स्थान को गये।।६।। दोहार्थ–अनुज जानकी सहित प्रभु कोशलपति कुशलरूप हैं, उनकी छबि देख प्रसन्न हो इन्द्र स्तुति करने लगे।।७८।। छन्दार्थ–हे शोभाधाम राम! आप दीनदासों को विश्राम देते हो, आपकी जय हो। आप चाँप तरकस धारे हो, आपके भुजदण्डों का प्रबल प्रताप है।।१।।

जय दूषणारि खरारि, मर्दन निशाचर झारि ।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ, भए देव सकल सनाथ ।।२।।

दोहा–अब करि कृपा विलोकि मोहिं, आयसु देहु कृपालु ।
कहाकरौं सुनि प्रियवचन, बोले दीनदयाल ।।७९।।

राम–सुनुसुरपतिकपिभालु हमारे । परे भूमि निशिचर जो मारे ॥१॥
ममहित लागि तजे इन प्राना । सकलजियाउ सुरेश सुजाना ॥२॥

(इन्द्र विमान में बैठ अमृत वर्षाता है, वानर उठते हैं)

"प्रभुचह त्रिभुवन मारि जिवाई । केवलशक्रहि दीन्ह बड़ाई ॥३॥
सुधाबरस कपि भालु जिवाये । उठे हर्षि सब प्रभु पहँ आये ॥४॥
देव अंश सब वानर रिच्छा । जिये सकल रघुपति की इच्छा ॥५॥

दोहा–सुमन वरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर विमान ।
देखि सुअवसर रामपहँ, आये शंभु सुजान ॥८०॥
परम प्रीति कर जोरि युग, नयन नलिनभरि वारि ।
पुलक गात गद्गद गिरा, अस्तुति कर त्रिपुरारि ॥८१॥

शिव–मामभिरक्षयरघुकुलनायक । धृतवरचापरुचिरकरसायक ॥१॥

स्तुति–

आप दूषण और खर के मारनेवाले हैं। आप निशाचरों के मारनेवाले हैं, हे नाथ! इस दुष्ट को मारा, यह सब देवता सनाथ हुए।।२।। दोहार्थ–अब कृपाकर मुझे देखकर आज्ञा करो, मैं क्या करूं, यह प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु बोले।।७९।। चौ०–हे सुरपति! हमारे कपि और भालु राक्षसों के मारे भूपि पर पड़े हैं।।१।। मेरे निमित्त इन्होंने प्राण त्यागे हैं, इन्द्र! इन सबको जिवाओ।।२।। प्रभु चाहें तो त्रिभुवन को मारकर जिवा दें, केवल इन्द्र को यह बड़ाई दी।।३।। इन्द्र ने अमृत वर्षा कर कपि और भालुओं को जिवाये। वे सब उठकर रामचन्द्र पर आये।।४।। यह वानर रीछ देवअंश थे। सब प्रभु की इच्छा से जिये।।५।। दोहार्थ–देवता फूल बरसायकर विमान पर बैठकर चले गये तब अच्छे समय में शिवजी राम पर आये।।८०।। परम प्रीति से हाथ जोड़ नेत्रों में जल भर शरीर से पुलकित हो गद्गद वाणी से विनय करने लगे।।८१।। चौ०–शिव–हे रघुकुलनायक! मेरी रक्षा करो। आप चाप और बाण धारण किये हैं।।१।।

महा मोह घनपटल प्रभंजन । संशयविपिन अनल जनरंजन ॥२॥
अनुजजानकी सहित निरन्तर । बसहुराम नृप मम उरअन्तर ॥३॥
मुनिरंजन महि मंडल मंडन । तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥४॥
करि विनती जब शंभु सिधाये । तब प्रभु निकट विभीषण आये ॥५॥
नायचरण शिर कह मृदुबानी । बिनय सुनिय ममसारंग पानी ॥६॥
वि०–सकुल सदल प्रभु रावणमारा । पावनयश त्रिभुवन बिस्तारा ॥७॥
दीन मलीन हीन मति जाती । मोपर कृपा कीन्ह बहुभाँती ॥८॥

अब जनगृह पुनीत प्रभु कीजै । मज्जनकरिय समरश्रम छीजै ।।९।।
देश कोश मन्दिर सम्पदा । देहु कृपालु कपिन्ह कहँ मुदा ।।१०।।
सबविधि नाथ मोहिं अपनाइय । पुनिमोहिंसहित अवधपुरजाइय ।।११।।
सुनत वचन मृदु दीनदयाला । सजलनयन दोउ भये विशाला ।।१२।।
राम–दोहा–तोर कोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुन तात ।
दशाभरत की सुमिरि मोहिं, पलक कल्पसम जात ।।८२।।

आप महामोह के घने अन्धकार को नाश करनेवाले हो। आप सन्देहरूपी वन के जलाने को अग्नि हैं, जनों के प्रसन्न करनेवाले हैं।।२।। हे राम नृप! आप अनुज जानकी सहित निरन्तर मेरे मन में बसो।।३।। मुनियों के आनन्ददाता महिमण्डल का मण्डन करनेवाले त्रास के दूर करनेवाले प्रभु हो।।४।। विनती करके जब शिवजी चले गये, तब प्रभु के समीप बिभीषण आये।।५।। चरणों में शिर नवाय कोमल वाणी से बोले–हे भगवन्! मेरी विनय सुनो।।६।। हे प्रभु! आपने कुल और दलसहित रावण मारा। त्रिलोकी में पवित्र यश का विस्तार किया।।७।। दीन मलीन हीनमति हीनजातिवाले मुझ पर आपने बड़ी कृपा की।।८।। हे प्रभु! अब आप दास का घर पवित्र कीजै। मज्जन करके युद्ध का श्रम दूर करो।।९।। देश, कोश मन्दिर, सम्पत्ति ये सब कपियों को दीजिये।।१०।। हे नाथ! सब प्रकार से मुझे अपनाकर मेरे सहित अयोध्या चलो।।११।। दीनदयालु यह कोमल वचन सुन दोनों नेत्रों में जल भरकर बोले।।१२।। दोहार्थ–हे तात! तुम्हारा घर खजाना यह सब मेरा है। यह सत्य वचन सुनो। अब भरत की दशा स्मरण कर एक पलक भी कल्प के समान बीतता है।।८२।।

तापस वेष शरीर कृश, जपै निरन्तर मोहिं ।
देखौं वेगि सो यत्नकर, सखा निहोरों तोहिं ।।८३।।
जो जैहौं बीतें अवधि, जियत न पाऊं वीर ।
प्रीति भरतकी समुझि प्रभु, पुनिपुनि पुलकि शरीर ।।८४।।
करहु कल्पभरि राज्य तुम, मोहिं सुमिरेउ मनमाहिं ।
पुनि मम धाम सिधारेउ, जहां संत सब जाहिं ।।८५।।

"सुनत विभीषण वचन राम के। हर्षि गहे पद कृपाधाम के ।।१।।
बहुरि विभीषण भवन सिधाये । मणिगण बसन विमान भराये ।।२।।
ले पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसिकै कृपासिन्धु असभाषा ।।३।।"
राम–चढ़िविमानसुनुसखाविभीषण । गगनजाय वर्षहु पटभूषण ।।४।।
"नभ पर जाय विभीषण तबहीं । वर्ष दिये पट भूषण सबहीं ।।५।।

जो जेहि मन भावै सो लेहीं । मणिमुख मेलिडारी कपिदेहीं ।।६।।
हँसत राम सिय अनुजसमेता । परम कौतुकी कृपानिकेता ।।७।।
भालुकपिन पट भूषण पाये । पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये ।।८।।
चितै सबनि पर कीन्ही दाया । बोले मधुर वचन रघुराया ।।९।।"

तपस्वियों का वेश, कृश शरीर निरन्तर मेरा जप करते हैं, उनको शीघ्र देखूं सो यत्न करो हे सखा! तुम्हारा निहोरा करता हूं।।८३।। जो अवधि बीते जाऊंगा। तो वीर को जीता ना पाऊंगा। भरत की प्रीति समझकर प्रभु बारंबार पुलकित शरीर होते हैं।।८४।। तुम कल्पभर राज्य करके मन में मुझे स्मरण करते रहो। फिर मेरे धाम को जाओगे। जहां सब सन्त जाते हैं।।८५।। चौ०–बिभीषण घर गये और मणि, भूषण, वस्त्र विमान में भराय।।२।। पुष्पक लेकर प्रभु के आगे धरा, तब भगवान् ने हँसकर कहा।।३।। हे बिभीषण मित्र! विमान में चढ़कर आकाश से यह भूषण वसन वर्षा दो।।४।। तब बिभीषण ने जाय आकाश से भूषण वस्त्र वर्षा दिये।।५।। जो जिसे मनभावे सो लेते हैं मणि मुख में डालकर उगल देते हैं।।६।। परम कौतुकी कृपासागर राम यह देख सीता लक्ष्मणसहित हँसते हैं।।७।। भालु कपियों ने पट भूषण पाये, पहर पहर कर सब प्रभु पै आये।।८।। रघुनाथ ने सबको देख दया की और मधुर वचन बोले।।९।।

राम–तुम्हरे बल मैं रावणमारा । तिलक विभीषण को पुनिसारा ।।१०।।
"निजनिज गृह अब तुम सब जाहू । सुमिरेहु मोहिं डरेउ जनिकाहू ।।११।।"
"वचन सुनत प्रेमाकुल वानर । जोरि पाणि बोले सब सादर ।।१२।।"
वा०–सुनिप्रभुवचनलाजहमरहहीं ।मशक कबहुँ खगपतिहितकरहीं।।१३।।
दीन जानि कपि किये सनाथा । तुमत्रैलोक्यईश रघुनाथा ।।१४।।

दोहा–प्रभुप्रेरित कपि भालु सब, राम रूप उर राखि ।
हर्षविषादसमेत सब, चले विनय बहु भाखि ।।८६।।
जाम्बवन्त कपिराज नल, अंगदादि हनुमान ।
सहित विभीषण अपर जे, यूथप अति बलवान ।।८७।।
कहि न सकहिं कछु प्रेमवश, भरि भरि लोचन वारि ।
सन्मुख चितवहिं रामतन, नयन निमेष बिसारि ।।८८।।

"अतिशय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हें सकल विमान चढ़ाई ।।१।।
मनमहँ विप्रचरण शिरनावा । उत्तरदिशहि विमान चलावा ।।२।।
राम–कह रघुवीर देखु रण सीता । लक्ष्मण हत्यो इहाँ इन्द्रजीता ।।३।।

तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और बिभीषण को तिलक किया।।१०।। अब तुम सब अपने

अपने घर जाओ। मुझे स्मरण कर किसी से मत डरो।।११।। यह बचन सुन सब वानर प्रेम से व्याकुल हो गये। हाथ जोड़ आदर से सब बोले।।१२।। हे महाराज! आपके वचन सुन हमको बड़ी लाज आती है, कहीं मशक से खगपति गरुड़ का हित हो सकता है।।१३।। आपने दीन जानकर कपियों को सनाथ किया है रघुनाथजी! तुम त्रिलोकी के ईश हो।।१४।। दोहार्थ–प्रभु की आज्ञा से सब कपि, भालु राम का रूप हृदय में धारण कर बहुत विनय कर हर्ष विषाद सहित चले।।८६।। जाम्बवन्त, सुग्रीव, नल, अंगदादि हनुमान् विभीषण सहित जो बलवान् यूथप थे।।८७।। यह सब प्रेम के कारण कुछ न कह सके, नेत्रों में जल भरकर नेत्रों के पलक विसार राम को देखने लगे ।।८।। चौ०–रामचंद्र ने उनकी अधिक प्रीति देख विमान पर चढ़ा लिये।।१।। मन में ब्राह्मणों के चरणों को शिर नवाय उत्तर दिशा को विमान चलाया।।२।। रामचन्द्र बोले–हे सीता! रणभूमि देखो, लक्ष्मण ने यहां मेघनाद को मारा था।।३।।

अंगद हनूमान के मारे । रणमें परे निशाचर भारे ।।४।।
कुंभकर्ण रावण दोउ भाई । यहां हतेउँ सुरमुनिदुखदाई ।।५।।
दोहा–इहांसेतु बाँधेउँ अरु, थापेउँ शिव सुखधाम ।
सीता अनुज समेत प्रभु, शंभुहि कीन्ह प्रणाम ।।८९।।
"सकलमुनिनसौपाय अशीशा । आये चित्रकूट जगदीशा ।।१।।
बहुरि राम जानकी दिखाई । यमुनाकलिमलहरणिसुहाई ।।२।।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रणाम करुसीता ।।३।।
तीरथपति पुनि देखि प्रयागा । निरखतजन्मकोटिअबभागा ।।४।।
दोहा–तब रघुनन्दन सिय सहित, अवधहिं कीन्ह प्रणाम ।
सजल विलोचन पुलकतनु, पुनि पुनि हर्षित राम ।।९०।।
बहुरि त्रिवेणी आयप्रभु, हर्षित मज्जन कीन्ह ।
कपिन्हसमेतमहीसुरन्ह, दान विविध विधि दीन्ह ।।९१।।"
प्रभुहनुमंतहि कहा बुझाई । धरि द्विजरूप अवधपुर जाई ।।१।।
राम–भरतहि कुशल हमारिसुनावहु । समाचर ले पुनि चलि आवहु ।।२।।

अंगद हनुमान् के मारे यहां बड़े बड़े राक्षस पड़े हैं।।४।। कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई सुर मुनियों के दुःखदाई यहां मारे थे।।५।। दोहार्थ–यहां पुल बांधकर शंकर की स्थापना की थी। सीता लक्ष्मण सहित प्रभु ने शिवजी को प्रणाम किया।।८९।। चौ०–फिर सब मुनियों से आशीश पाय प्रभु चित्रकूट मे आये।।१।। फिर रघुनाथजी ने जानकी को पापहारिणी यमुना दिखाई।।२।। फिर पवित्र गंगाजी देखी, राम ने कहा–हे सीता! प्रणाम कर।।३।। फिर तीर्थपति प्रयागराज का दर्शन किया जिसको देखने से कोटि जन्म के पाप दूर होते हैं।।४।। दोहार्थ–तब रामचन्द्र ने सीता सहित अयोध्या को प्रणाम किया। नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकित हो गया। राम बारंबार हर्षित

हुए।।९०।। प्रभु ने फिर त्रिवेणी में आनकर प्रसन्न हो मज्जन किया और कपियों सहित ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये।।९१।। फिर प्रभु ने महावीर से कहा–तुम ब्राह्मण का रूप धर अयोध्या को जाओ।।१।। भरत से हमारी कुशल सुनाओ, उनकी कुशल समाचार ले शीघ्र आओ।।२।।

"तुरत पवनसुत गवनत भयऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहँगयऊ ।।३।।

(प्रणाम कर चलते हैं)

सुरसरि लाँघि यान जब आवा । उतरातट प्रभु आयसु पावा ।।४।।

(जानकी प्रणाम करती हैं)

दीन्ह अशीश मुदितमन गंगा । सुन्दरि तव अहिवाद अभंगा ।।५।।
सुनतहिं गुह धायो प्रेमाकुल । आयो निकट परम सुख संकुल ।।६।।
प्रभुहिं विलोकिसहित वैदेही । परेउ अवनितनुसुधि नहिं तेही ।।७।।
परम प्रीति विलोकि रघुराई । हर्षि उठाय लीन्ह उरलाई ।।८।।

छन्द–लये हृदय लाय कृपानिधान सुजान राम रमापति ।
बैठारि परमसमीप बूझी, कुशल सो कर बीनती ।।"

निषाद–अब कुशल पदपंकज विलोकि विरंचि शंकरसेव्य जे ।
सुखधाम पूरण काम राम नमामि रामनमामि ते ।।१।।

(मिलकर बैठते हैं)

दोहा–"समर विजय रघुवीरके, चरित जे सुनहिं सुजान ।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देय भगवान ।।९२।।"

इति अष्टम दर्शन

महावीरजी तुरत गये। तब प्रभु भरद्वाज पर गये।।३।। वहां से गंगा को लांघकर जब विमान चला तब प्रभु की आज्ञा से किनारे पर आया।।४।। तब गंगा ने प्रणाम करने पर आशीश दी हे सुन्दरि! तेरा सौभाग्य अभंग रहे।।५।। इधर निषाद सुनते ही प्रेम से व्याकुल हो धावमान हुआ और प्रेम से समीप आया।।६।। वैदेही सहित प्रभु को देख पृथ्वी में गिरा, शरीर की सुधि न रही।।७।। रामचन्द्र ने उसकी परमप्रीति देख उठाकर हृदय से लगा लिया।।८।। छंदार्थ–कृपानिधान सुजान राम रमापति ने हृदय से लगाय समीप बैठाय कुशल पूछी, वह विनती कर बोला–अब तुम्हारे ब्रह्मा शंकर से सेवित पदकमलों को देखकर प्रसन्न हूं, हे सुधाम पूरणकाम राम! आपको प्रणाम करता हूं।।१।। (सब बैठते हैं) दोहार्थ–जो सुजान पुरुष रघुवीर के समरविजय चरित्र सुनेंगे। भगवान् उनको विजय विवेक विभूति देंगे।।९२।।

इति अष्टम दर्शन

इति लंकाकाण्ड ६

रामलीला-रामायण

उत्तरकाण्ड ७

अथ प्रथम दर्शन

भरत मिलन

दोहा-"रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुरलोग ।
जहँ तहँ शोचहि नारि नर, कृशतनु राम वियोग ।।१।।
भरत नैन भुज दक्षिण, फरकहिं बारंबार ।
जान शकुन मनहर्ष अति, लागे करन विचार ।।२।।"

भ०-कारण कवन नाथ नहिं आये । जानिकुटिलप्रभुमोहिबिसराये ।।१।।
अहहधन्य लक्ष्मण बड़भागी । राम पदारविंद अनुरागी ।।२।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभुचीन्हा । ताते नाथ साथ नहिं लीन्हा ।।३।।
जो करणी समुझैं प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कल्प शत कोरी ।।४।।
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ । दीनबन्धु अतिमृदुल स्वभाऊ ।।५।।
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं रामशकुन असहोई ।।६।।

भरत मिलन

दोहार्थ-राम के आगमन में एक दिन रहने से पुरवासी बहुत उत्कंठित हो गये, नारि नर कृश शरीर राम के वियोग से जहां तहां शोच रहे हैं।।१।। भरत की दहिनी भुजा और दक्षिण नेत्र बारंबार फड़कने लगे, शकुन जान मन में प्रसन्न हो विचारने लगे।।२।। चौ०-क्या कारण है जो स्वामी नहीं आये, कुटिल जानकर प्रभुने मुझे बिसार दिया।।१।। अहह बड़भागी लक्ष्मण बड़े धन्य हैं जो राम के चरणारविन्द के अनुरागी हैं।।२।। मुझे प्रभु ने कपटी कुटिल जाना, इसी से स्वामी ने साथ नहीं लिया।।३।। जो प्रभु मेरी करणी समझें तो अनेक कल्पों तक निस्तार न होगा।।४।। पर प्रभु कभी दास के अवगुण नहीं मानते, उन दीनबंधु का कोमलस्वभाव है।।५।। मेरे जी में दृढ़ भरोसा है कि, रघुनाथजी मिलेंगे, शकुन ही ऐसे हो रहे हैं।।६।।

बीते अवधि रहें जो प्राणा । को पापी जगमोहिं समाना ।।७।।

दोहा-"राम विरह सागर महँ, भरत मगनमन होत ।

विप्र रूप धरि पवनसुत, आय गये जिमि पोत ।।३।।
बैठे देखि कुशाशन, जटा मुकुट कृश गात ।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयनजलजात ।।४।।
मनमहँ बहुत भाँति सुख मानी । बोले श्रवण सुधा समबानी ।।१।।
म०-जासुविरह शोचहु दिन राती । रटहु निरंतर गुणगणपाती ।।२।।
रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता । आये कुशलदेव सुनि त्राता ।।३।।
रिपुरण जीतिसुयश सुरगावत । सीता अनुज सहित प्रभु आवत ।।४।।
भ०-को तुम तात कहाँ ते आये । मोहिं परम प्रिय वचन सुनाये ।।५।।
म०-मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ।।६।।
दीनबन्धु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटे उठि सादर ।।७।।
भ०-कपितवदरशसकलदुखबीते । मिले आजु मोहिं रामपिरीते ।।८।।
बारबार पूछी कुशलाता । तो कहँ काह देउँ सुन भ्राता ।।९।।
यहि सन्देश सरिस जगमाहीं । करि विचार देखा कछु नाहीं ।।१०।।

अवधि बीते प्राण रहैं तो मेरे समान कौन पापी है।।७।। दोहार्थ-राम के वियोगरूप सागर में भरतजी मग्न हुए जाते थे कि उसी समय ब्राह्मण का रूप धर महावीर जहाज के समान आ गये।।३।। कुशासन पर बैठे हुए जटाओं का मुकुट कृश शरीर है, राम राम रघुपति जपते हैं, कमल से नेत्रों में जल बहता है।।४।। चौ०-मन में बहुत भांति से सुख मानकर कानों को अमृत के समान वाणी बोले।।१।। जिसके विरह में दिन रात शोचते हो और जिसके गुणसमूह निरन्त जपते हो।।२।। रघुकुलतिलक सुजनों के सुखदाता देव मुनियों के रक्षक सकुशल आये हैं।।३।। शत्रु को युद्ध में जीत देवताओं से अपना यश गवाते हुए प्रभु सीता और अनुज के सहित आते हैं।।४।। भरत-हे तात! तुम कौन हो, कहां से आये हो? मुझे परमप्रिय वचन सुनाये हैं।।५।। मैं मारुतसुत हनुमान् हूँ, हे कृपानिधान! यही मेरा नाम है।।६।। दीनबंधु श्रीराम का दास हूँ, सुनकर भरत आदर से उठ मिले।।७।। भरत-हे कपि! तुम्हारे दर्शन से सब दुःख बीत गये, मानो मुझे आज राम ही मिल गये।।८।। बार बार कुशल पूछी हे भाई! तुमको क्या दूं।।९।। इस संदेश के समान जगत् में कुछ नहीं है, विचार कर देखा।।१०।।

नाहि न उऋण तात मैं तोही । अब प्रभुचरितसुनावहु मोहीं ।।११।।
कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं । सुमिरत मोहिं दास की नाईं ।।१२।।
छन्द-निजदास ज्यों रघुवंशभूषण कबहुँ मम सुमिरन करचो ।।
सुनि भरतवचन विनीत अतिकपि पुलकतनु चरणनपरचो ।।

रघुवीर निजमुख जासु गुणगण कहत अग जगनाथ जो ।।
काहे न होहु विनीत परम पुनीत सदगुण गाथ सो ।।१।।
दोहा—"राम प्राण प्रिय नाथ तुम, सत्य वचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरतसन, प्रेम न हृदय समात ।।५।।"
सोरठा—भरतचरण शिर नाय, तुरत गये कपि रामपहँ ।
कही कुशल सब जाय, हर्षि चले प्रभु यान चढ़ि ।।१।।
हर्षि भरत कौशलपुर आये । समाचार सब गुरुहि सुनाये ।।१।।

हे तात! मैं तुझसे उऋण नहीं हूं, अब प्रभु के चरित्र मुझे सुनाओ।।११।। हे कपि! कहो तो कभी कृपालु गोसाईं मुझे दास के समान स्मरण करते हैं।।१२।। छंदार्थ—निजदास के समान रघुवंशमणि ने कभी मेरा स्मरण किया, यह भरत के विनीत वचन सुनि कपि पुलकित शरीर हो चरणों में पड़े, रामचन्द्र अपने मुख से जिसके गुण कहते हैं वह चराचर के अधिपति ऐसे नम्र परमपुनीत सद्गुणों के सिंधु क्यों न हो।।१।। दोहार्थ—हे नाथ! हे तात! तुम राम को प्रिय हो। यह मेरे सत्य वचन हैं, हृदय में प्रेम नहीं समाता।।५।। सोरठार्थ—भरत के चरणों में शिर नवाय महावीर राम पर गये और सब कुशल जाकर कही, प्रभु प्रसन्न हो विमान पर बैठे चले।।१।। चौ०—भरत प्रसन्न हो कौशलपुर आये और गुरु से सब समाचार कहे।।१।।

पुनि मंदिर में बात जनाई । आवत कुशल नगर रघुराई ।।२।।
सुनत सकल जननी उठि धाई । कहिप्रभुसकल भरत समुझाई ।।३।।
समाचार पुरवासिन पाये । नर अरु नारि हर्ष उठिधाये ।।४।।
दोहा—हर्षित गुरुपुरजन अनुज, भूसुरवृन्द समेत ।
चले प्रेम अति भरत मन, सन्मुख कृपा निकेत ।।६।।
यहां भानुकुल कमल दिवाकर । कपिनदेखावत नगर शुभाकर ।।१।।

---

* राग सोरठा—बैठी शकुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर करहु काग फुरिबाता ।।
दूधभातकी दोनी देहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सियासहित विलोकि नयनभरि रामलषण उर लेहौं ।
अवधि समीप जानि जननी जिय अतिआतुर अकुलानी ।
गणक बोलाइ पायँपरि पूछत प्रेम मगन मृदुबानी ।।
तेहि अवसर कोउ भरत निकटते समाचार लै आयो ।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मानौं मीन मरत जल पायो ।।१।।

राम–सुन कपीश अंगद लंकेशा । पावनपुरी रुचिर यह देशा ।।२।।
यद्यपि सब वैकुंठ बखाना । वेदपुराण विदित जग जाना ।।३।।
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । यह प्रसंग जानै कोउकोऊ ।।४।।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिशिसरयूबह पावनि ।।५।।
जा मज्जन ते विनहिं प्रयासा । ममसमीप नर पावहिंवासा ।।६।।
अति प्रिय मोहिं इहां के वासी । ममधामदा पुरी सुखवासी ।।७।।
"हर्षे कपि सुनिप्रभु की वानी । धन्य अवध जेहि रामबखानी ।।८।।

दोहा–आवत देखे लोग सब, कृपासिन्धु भगवान् ।
नगर निकट प्रभु प्रेरे, उतरेउ भूमि विमान ।।७।।

फिर मंदिर में बात जनाई। श्रीराम कुशल पूर्वक आते हैं।।२। सुनकर सब माता उठ धाई। भरत ने प्रभु की कुशल कह समझाई ।।३।। पुरवासियों ने समाचार पाये। नरनारी प्रसन्न हो उठ धाये।।४।। दोहार्थ–गुरु, पुरवासी, भरतजी, शत्रुघ्न तथा ब्राह्मण जन यह साथ में ले प्रसन्नता से राम से मिलने चले।।६।। चौ०–यहां सूर्य कुलकमल दिवाकर कपियों को अपना मनोहर नगर दिखाने लगे।।१।। हे कपीश अंगद लंकेश! सुनो यह पुरी बड़ी पवित्र है और देश मनोहर है।।२।। यद्यपि सब वैकुण्ठ को बखानते हैं, वेद पुराण से विदित है, यह जगत् जानता है।।३।। परन्तु अवध के समान वह भी मुझे प्रिय नहीं। इस प्रसंग को कोई ही जानते हैं।।४।। यह जन्मभूमि मेरी पुरी शोभायमान है। उत्तर की ओर पवित्र सरयू बहती है।।५।। इसके स्नान से बिना ही प्रयास प्राणी मेरे समीप निवास पावेंगे।।६।। यहां के निवासी मुझे बड़े प्यारे हैं। यह सुख की खान पुरी मेरे धाम की देनेवाली है।।७।। सब वानर प्रभु की वाणी सुन प्रसन्न हुए। अवध धन्य है जिसका राम ने बखान किया है।।८।। दोहार्थ–तब कृपासिन्धु भगवान् ने लोगों को आते देखा और प्रभु की प्रेरणा से नगर के निकट विमान उतरा।।७।।

बहुरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम कुबेरपै जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो, हर्ष विरह अति ताहु ।।८।।

आये भरत संब सब लोगा। कृशतनु श्रीरघुवीर वियोगा।।१।।
वामदेव वशिष्ठ मुनिनायक । देखा प्रभु महिधर धनुसायक ।।२।।
धायधरे गुरुचरण* सरोरुह । अनुजसहित अति पुलकत नोरुह ।।३।।

सवैया–'रामवसिष्ठके पांय परे मिलबैठ भली रुचिसों पग धोये ।
भूपतिकी विपरीत कथा सुनिकै उमड़े जलनैन समोये ।।
सिन्धु धराधर नाग नदी वन बेहड़ जे पहले हम जोये ।
देखत श्रीगुरुपांयनको पलमें विसरे प्रभुजू दुखखोये ।।१।।

सकल द्विजन कहँ नायउ माथा । धर्मधुरंधर रघुकुल नाथा ।।४।।
गहे भरतपुनि प्रभुपदपंकज । नमित जिनहिं शंकर सुरमुनिअज ।।५।।
परे* भूमि नहिं उठत उठाये । बलकर कृपासिंधु उरलाये ।।६।।
श्यामलगात रोमभये ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ।।७।।

छन्द–राजीवलोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदय लगाय अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ।।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मोपहँ जात नहिं उपमा कही ।।
जनु प्रेम अरु श्रृंगार तनुधरि विमलकर सुखमालही ।।२।।

तब प्रभु ने पुष्पक से कहा तुम कुबेर पर जाओ वह राम की प्रेरणा से हर्षविषादयुक्त हो चला गया।।८।। चौ०–इधर सब लोगों के संग भरतजी श्रीरघुवीर के वियोग में कृश हुए आये।।१।। वामदेव वसिष्ठजी को जब देखा तब प्रभु ने पृथ्वी में देखते ही धनुषबाण धर दिये।।२।। और गुरु के दोऊ चरणकमल पकड़ लिये और भाई सहित शरीर पुलकायमान हो गया।।३।। सब द्विजों को शिर नवाया, धर्मधुरंधर रघुकुल के अधिपति हैं।।४।। फिर भरत ने प्रभु के चरणकमलों को प्रणाम किया जिनको शंकर सुर नर मुनि अज प्रणाम करते हैं।।५।। भूमि पर गिर गये उठाने से नहीं उठते बलकरके कृपासिन्धु ने हृदय से लगाया।।६।। श्यामशरीर के रुएँ खड़े हो गये नये कमल से नेत्रों में जल भरि आया।।७।। छन्दार्थ–कमल से नेत्रों में जलभर शरीर पुलकित हुआ अतिप्रेम से अनुज को हृदय से लगाय प्रभु से मिले, प्रभु जो अनुज से मिलते हैं वह उपमा मुझसे नहीं कही जाती मानो प्रेम और श्रृंगार अपना शरीर धारणकर मिलते हैं और बड़ा सुख हो रहा है।।२।।

पूँछत कृपा निधि कुशल भरतहिं वचन वेगि न आवई ।
सुन शिवा सो सुख वचन मनते भिन्न जान न पावई ।।"

भरत–अब कुशल कौशल नाथ आरत जानि मोहिं दर्शन दियो ।
बूड़त विरहवारीश कृपानिधान मोहिं करगहिलियो ।।२।।

दोहा–पुनि प्रभु हर्षित शत्रुहन, भेटे हृदय लगाय ।
लक्ष्मण भरत मिले पुनि, प्रेम न हृदय समाय ।।९।।

---

* सवैया–कैकेयिनन्दन दूरते आन प्रणाम कियो दुख नैन बहाये ।
मूंड जटा नखवेष तपोधन भूपति झुण्ड सबै पग लाये ।।
श्रीरघुवीर लगाय रहे छतियां मुखचूम कछू मुसकाये ।
देख विभीषण और सुग्रीव न ग्रीव उठी बहुतै शरमाये ।।११।।

भरत अनुज लक्ष्मण तब भेंटे । दुसह विरह संभव दुख मेटे ।।१।।
सीता चरण भरत शिरनावा । अनुज समेत परम सुखपावा ।।२।।
अमितरूप प्रगटे तेहि काला । यथा योग्य मिलि सबहिं कृपाला ।।३।।
कृपादृष्टि सब सब लोकविलोकी । किये सकलनर नारि विशोकी।।४।।
कौशल्यादि मातु सब धाईं । निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं ।।५।।

छन्द–जनु धेनु बालक वत्सगृह तजि चरनवन परवश गईं ।
दिन अंतपुररुख स्रवतथन हुँकार करि धावत भईं ।।
अतिप्रेम प्रभु सब मातु भेंटे वचन मृदु बहुविधि कहे ।
गइ विषम विपति वियोग भव तिन्ह हर्षसुखअगणित लहे ।।३।।

कृपानिधि भरत से कुशल पूछते हैं पर उनपै वेग से नहीं कहा जाता हे शिवा पार्वती! वह सुख वचन मन से परे हैं इससे जाना नहीं जाता भरत बोले हे कौशलेश! अब कुशल है जो आपने जन को दुःखी जान दर्शन दिया मैं विरहसागर में डूब रहा था हे कृपासागर! हाथ पकड़ मुझे निकाल लिया।।२।। दोहार्थ–फिर प्रभु प्रसन्न हो शत्रुघ्न को हृदय से लगाय मिले फिर लक्ष्मण और भरत मिले हृदय में प्रेम नहीं समाता।।९।। चौ०–फिर शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने मिलकर महाविरह के दुःख मेटे।।१।। भरत ने सीता के चरणों में प्रणाम किया और शत्रुघ्न ने शिर नवाय परम सुख पाया।।२।। भगवान् उस समय अनेक रूप से प्रगट हुए और कृपासागर यथायोग्य सबसे मिले।।३।। कृपादृष्टि से सब लोगों को देखकर सब नर नारियों को शोकरहित किया।।४।। कौशल्यादि सब माता उठ धाई वत्स को देखकर जैसे धेनु धावमान होती हैं।।५।। छन्दार्थ–जैसे धेनु बालकवत्स को छोड़कर परवश हो वन में चरने गई और दिन के अन्त में दूध चुचाती हुंकार करके धावमान हुई अति प्रेम से प्रभु सब माताओं से भेंटे बहु प्रकार से कोमल वचन कहे और विषम विपत्ति गई और प्रसन्न हो गई सब दुःख दूर हुए।।३।।

दोहा–भेंटे तनय सुमित्रा, रामचरण रति जानि ।
रामहिं मिलत कैकेयी, हृदय बहुत सकुचानि ।।१०।।
लक्ष्मण सब मातन्ह मिले, हर्षे आशिष पाय ।
कैकेयि कहँ पुनि पुनि मिले, मनकरक्षोभ न जाय ।।११।।

सासुन सबहिं मिली वैदेही । चरणन लागिहर्ष अति तेही ।।१।।
देहिं अशीश पूँछि कुशलाता । होउ अचल तुम्हार अहिवाता ।।२।।
कनक थाल आरति उतारहिं । बारबार प्रभु गात निहारहिं ।।३।।

पुनि रघुपतिनिज सखा बुलाये । मुनिपद लागहु सबहि सिखाये ।।४।।
राम-ये सब सखा सुनिय मुनि* मेरे । भये समर सागर कहँ बेरे ।।५।।
मम हित लागि जन्म इन हारे । भरत हुते मोहिं अधिक पियारे ।।६।।

दोहा–कौशल्याके चरणन, पुनि तिन्ह नायउ माथ ।
आशिश दीन्ह हर्षहिय, तुमप्रिय जिमि रघुनाथ ।।२।।
सुमनवृष्टि नभसंकुल, भवन चले सुखकंद ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहीं, नगर नारिनरवृंद ।।१३।।

दोहार्थ–राम के चरणों में प्रीति जान सुमित्रा पुत्र से मिलीं, कैकेयी राम से मिलते मन में बहुत सकुचाई।।१०।। लक्ष्मण सब माताओं से मिले अशीश पाय प्रसन्न हुए कैकेयी से बारंबार मिले मन का क्षोभ नहीं जाता।।११।। चौ०–जानकी यथायोग्य सब सासुओं से मिली जो जिस योग्य थीं।।१।। वे कुशल पूछ अशीश देती हैं तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।।२।। सुवर्ण के थाल में आरती उतार बारंबार प्रभु के शरीर को निहारती हैं।।३।। फिर रघुनाथ ने अपने सब सखा बुलाये मुनि के चरणों को प्रणाम करो यह सबको सिखाया।।४।। हे मुनिराज! यह सब मेरे सखा समर सागर को बेड़े हुए हैं।।५।। मेरे निमित्त इन्होंने अपना जन्म हार दिया है यह मुझे भरत से भी अधिक प्यारे हैं।।६।। दोहार्थ–मुनि को प्रणाम कर उन्होंने कौशल्या के चरणों में माथा नवाया और उन्होंने प्रसन्न हो अशीष दी तुम राम के समान प्यारे हो।।१२।।

आकाश में फूलों की वर्षा हुई भगवान् घर को चले नगर के नारिनर अटारियों पर चढ़े देखते हैं।।१३।।

इति प्रथम दर्शन

अथ द्वितीय दर्शन

(राम राज्य)

(शृंगार करके राम सीता लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न विराजमान हैं

सिंहासन पर राम बैठे हैं)

वशिष्ठ-सब द्विज देहु हर्षि अनुशासन । रामचन्द्र बैठहिं सिहांसन*।।१।।

---

* कहैं रघुराई मुनि सुनिये चितलाई हौंतो कौन कौन उपकार कपि राजके ।
सीता शोधलाइ सिंधुपाटके बनाइ भलै ज्यायो लछमनजूको एतेबड़े काजके ।।
नील नल हनूमान अंगदसो जाम्बवान येई हैं जितैया सब रावण समाजके ।
ताते हम इनके ऋणी हैं अजहूँ लौं मुनि लोचन हमारे न उठत मारे लाजके ।।१।।

** कवित्त–मदमंद चलत गयदनके वृन्द वृन्द तरल तुरंग रंगरंगके सुहाये हैं ।

सब-अब मुनिवर विलम्बनहिं कीजै महाराजको तिलक करीजै ।।२।।
“प्रथमतिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा ।।३।।

(सब तिलक करते हैं)

सुतविलोकी हर्षहिं महतारी । बारबार आरती उतारी ।।४।।
दोहा–भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गये सुर निज निज धाम ।
वंदि वेषधर वेद तहँ, आये जहँ श्रीराम ।।१४।।”

रामराज्य

टीका–आज सब ब्राह्मण प्रसन्न हो आशीर्वाद दें कि रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें।।१।। हे मुनिवर! अब देर मत करो। महाराज को तिलक करो।।२।। पहिले वसिष्ठजी ने तिलक किया फिर सब ब्राह्मणों ने आज्ञा दी।।३।। पुत्र को देख महतारी प्रसन्न हुई बारबार आरती उतारी।।४।। दोहार्थ–भिन्न २ स्तुति करके देवता अपने २ स्थान को गये उस समय बंदी का वेष धारण कर वेद श्रीराम के समीप आये।।१४।।

वेद–छन्द–जय सगुणनिर्गुण रूप राम अनूप भूप शिरोमणे ।
दशकंधरादि प्रचंड निशिचर प्रबल खल भुजबल हने ।।
अवतार नर संसार भार विभंजि दारुण दुःख दहे ।
जय प्रणतपाल दयाल प्रभु संयुक्तशक्ति नमामहे ।।१।।
तव विषम मायावश सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथभ्रमति श्रमित दिवसनिशि कालकर्मन गुणभरे ।।
जेहि नाथ करि करुणा विलोकहु त्रिविधि दुख तेहि निर्वहे ।
भव खेद छेदन दक्ष हम कहँ रक्ष राम नमामहे ।।२।।
जे चरण शिव अज पूज्य रजशुभ परसि मुनिपत्नी तरी ।

–घर्घरत चक्ररथ भर्भरथ पौरजन खर्खरत शस्त्रगण शत्रु भीति पाये हैं ।।
देवता विमाननमें दशहू दिशाननमें रामचन्द्र चन्द्र ज्यों चकोरटकलाये हैं ।
राजन समाज सँग राजराजरघुराज अवध दराजदरवाजे लों सिधाये हैं।।१।।
पद्मराग–मर्कत मणीन्द्र नीलमणिकेरी विविधि किताकी लताभासैं चहुँओर हैं ।
सूर्यमणि चन्द्रमणि चिंतामणि चारु राजैं औरहू अमोललागे तरन करोर हैं ।
कोटिभानु भासभयो रतन सिंहासनको सुरनर मुनिनके मानसभे भौंर हैं ।।
गुरु अनुशासनते बैठिगे सिंहासनमें जानकी समेत रघुवंश शिरमौर हैं ।।१।।

नख निर्गता सुरवंदिता त्रैलोक्यपावनि सुरसरी ।।
ध्वज कुलिश अंकुश कंजयुत वन फिरत कंटक जिन लहे ।
पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे ।।३।।
जे ज्ञान मान विमत्त तव भय हरणि भक्ति न आदरी ।
ते पायँ सुरदुर्लभ पदादपि पतित हम देखत हरी ।।
विश्वास करि सब हास परिहारि दास तब जे ह्वै रहे ।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सोइ स्मरामहे ।।४।।

छंदार्थ–हे राम आपका सगुणनिर्गुण रूप है आप अनूप भूप शिरोमणि हो रावणादि प्रचण्ड राक्षसों को आपने अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से नष्ट किया है आपका संसार में नरावतार भूमि भार के निवारण करने को है तथा तुम भक्तों का दारुण दुःख दूर करते हो, हे दीनों के पालक दयालु! शक्तिसहित आपको प्रणाम करता हूँ।।१।। हे हरे! आपकी विषम माया के वश में सुर असुर नाग नर अग चराचर हैं और अपने काल कर्म गुणों के वश हो भव पंथ में दिनरात भ्रमते हैं हे नाथ! जिसे आप कृपाकर देखो उसके तीन प्रकार के दुःख जाते रहते हैं, हे संसार के दुःख दूर करने में समर्थ! हे राम! हमारी रक्षा करो हम तुमको प्रणाम करते हैं।।२।। जो चरण शिव ब्रह्मादि से पूज्य हैं जिनकी रज को स्पर्शकर मुनि पत्नी तर गयीं जिनके नखों से देवताओं से वंदित तीन लोक की पवित्र करनेवाली गंगाजी निकली हैं जो ध्वज वज्र अंकुश कमल के चिह्न युक्त चरण वन में विचरते हैं जिन्होंने वन में फिरने से कंटकादि के चिन्ह धारण कर लिये हैं हे मुकुन्द! हे रामरमेश! हम आपके उन चरणकमलों का नित्य भजन करते हैं।।३।। जो ज्ञानमान में विमत्त हैं और भय करनेवाली तुम्हारी भक्ति जिन्होंने आदर नहीं की वह देवताओं के दुर्लभ पद को पाकर भी फिर पतित होते हैं हे हरे! यह हम देखते हैं और जो विश्वास करके सब आशा छोड़कर तुम्हारे दास हो रहे हैं, वे तुम्हारा नाम जपकर बिना श्रम के भवसागर पार हो जाते हैं, हे नाथ! आपका हम स्मरण करते हैं।।४।।

अव्यक्तमूलमनादि तरुत्वक चारि निगमागम भने ।
षट कन्ध शाखा पंचविंश अनेक पर्ण सुमन घने ।।
फलयुगलविधि कटु मधुर वेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवित फुल्लित नवल नित संसार विटप नमामि हे ।।५।।
जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभव गम्य मनपर ध्यावहीं ।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण नित यश गावहीं ।।
करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देहु यह वर मांगही ।
मन कर्म वचन विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं ।।६।।

दोहा–"सबके देखत वेदने, विनती कीन्ह उदार ।
अन्तर्द्धान भये पुनि, गये ब्रह्म आगार* ।।१५।।"

अव्यक्त जिसका मूल है ऐसा वेदशास्त्र कथित यह अनादि वृक्ष है अण्डजादि चार खान त्वचा हैं, सुख दुःख शीत उष्ण ज्ञान अज्ञान छः कंधे है, पांचतत्त्व पांच उनके विषय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार यह पच्चीस शाखा हैं अनेक प्रकार की वासना पत्ते हैं जो लगते और गिरते हैं, संकल्प रूपी फूल हैं वह कोई फूलते हैं कोई वैसे ही गिरते हैं वे फल पापपुण्यरूप से खट्टे मीठे हैं। अविद्या की बेल बढ़ रही है उसमें नित्य पत्ते निकलते हैं नित्य फूलती हैं ऐसे संसार वृक्षरूप आपको हम प्रणाम करते हैं।।५।। जो ब्रह्म अविनाशी अद्वैत को अनुभव से प्राप्त होनेवाला मन से परे कहकर ध्यान करते हैं हे नाथ! वे इस बात को कहें और जरनें पर हम आपके सगुणरूप का यश गाने की इच्छा करते हैं हे करुणासागर! हे सद्गुणों के आकर! आप दीजिये आपसे यह वर माँगते हैं मन वचन कर्म से विकार त्यागकर हम आपके चरणों का अनुराग करैं।।६।। दोहार्थ–सबके देखते वेदों ने बड़ी विनय की और अन्तर्धान होकर ब्रह्मलोक को गये।।१५।।

(शिवजी आते हैं)

शिव-छं०-जयरामरमारमणं शमनं, भवतापभयाकुलपाहिजनम् ।
अवधेश सुरेश रमेशविभो, शरणागत माँगत पाहि प्रभो ।।१।।
दशशीश बिनासन बीशभुजा, कृतदूरिमहा महिभूरिरुजा ।
रजनीचरवृन्द पतंग रहे, शरपावक तेज प्रचण्ड दहे ।।२।।
महिमण्डलमण्डन चारुतरं, धृत सायक चाप निषंगवरम् ।
मद मोह महा ममतारजनी, तमपुंज दिवाकर तेजअनी ।।३।।
मन जात किरात निपात किये, मृगलोक कुभोग शरेण हिये ।
हत नाथ अनाथ न पाहि हरे, विषयावन पामर भूलि परे ।।४।।
बहरोग वियोगन लोग हये, भवदंघ्रि निरादरके फल ये ।
भवसिंधु अगाधु परे नर ते, पदपंकज प्रेम न जे करते ।।५।।

छन्दार्थ–शिवजी बोले–हे रमारमण! हे संसार के ताप शान्त करनेवाले! भक्तों की रक्षा करो

---

*राग टोडी–आजु अवध आनंद बधावन रिपुरणजीति राम आये ।
सजि सुविमान निशान बजावत मुदित देव देखन धाये ।।
घर घर चारु चौक चंदन मणि मंगलकलश सबनि साजे ।।

हे अवधेश! हे देवताओं के अधिपति! हे प्रभो! शरणागत आपसे रक्षा चाहते हैं।।१।। आप दश शिर बीस भुजावाले रावण के नाशक हो यह आपने भूमि का महाभार दूर किया है जो पतंगों के समान राक्षसों के वृन्द थे वह आपके बाणों की तीक्ष्ण अग्नि में भस्म हो गये।।२।। आप सम्पूर्ण भूमि के अति सुन्दर शृंगाररूप हैं श्रेष्ठ धनुषबाण और तरकस धारण किये हैं, मद मोह और ममता की जो महारात्रि है उसके दूर करने को आपका प्रकाश सूर्य है।।३।। कामरूप बटमारने लोगों को मृगों के समान कुभोग रूप बाणों से मार डाला है हे नाथ! इससे उन पामर अनाथों को मारा है जो विषयरूप वन में भूले पड़े हैं हे हरे! उनकी रक्षा करो।।४।। अनेक रोग और वियोग में व्याकुल हो रहे हैं यह आपके चरणकमल निरादर के फल हैं; वे मनुष्य अगाध संसारसागर में पड़े हैं जो आपके चरण कमल में प्रेम नहीं करते।।५।।

अतिदीन मलीन दुखी नितहीं, जिनके पदपंकज प्रीति नहीं ।
अवलम्ब भवन्त कथा जिनके, प्रियसन्त अनंत सदा तिनके ।।६।।
नहिं राग न रोष न मान मदा, तिनके सम वैभव वादि पदा ।
इहिते तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत योग भरोस सदा ।।७।।
करि प्रेम निरन्तर नेम लिये, पदपंकज सेवत शुद्ध हिये ।
सम मान निरादर आदरही, सोइ सन्त सुखी विचरन्त मही ।।८।।
मुनि मानस पंकज भृंग भजै, रघुवीर महारणधीर अजै ।
तव नाम जपामि २ हरी, भवरोग महामदमान अरी ।।९।।
गुणशील कृपा परमायतनं, प्रणमामि निरन्तर श्रीरमणम् ।
रघुनन्द निकन्दय द्वन्द्वघनं, महिपाल विलोकय दीनजनम् ।।१०।।

दोहा—बार बार वर मांगों, हर्षि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सतसंग ।।१६।।

(नित्य गान कौतुक होते हैं)

इति द्वितीय दर्शन

- ध्वज पताक तोरण वितान वर विविध भांति बाजन बाजे ।।
रामतिलक सुनि द्वीप द्वीपके नृप आये उपहार लिए ।
सीय सहित आसीन सिंहासननिरखि जोहारत हरष हिये ।।
मंगलमान वेदधुनि जयधुनि मुनि अशीश धुनि भुवन भरे ।
वरषि सुमन सुर सिद्ध प्रशंसत सबके सब संताप हरे ।।
रामराज भई कामधेनु महि सुख संपदा लोक छाये ।
जनम जनम जानकीनाथके गुणगण तुलसिदास गाये ।।१।।

वह नितही दीन मलीन दुःखी हैं जिनकी आपके चरणकमल में प्रीति नहीं है और जिनको भगवान की कथा का अवलम्बन है उनको सन्तजन सदा प्रिय हैं॥६॥ उनको राग रोष मान मद नहीं है जगत् की सम्पत्ति उनके सामने व्यर्थ है इसीसे मुनिजन योग की आशा त्याग मुदितमन से आपही के सेवक होते हैं॥७॥ जो नियमपूर्वक शुद्ध हिये से आपके चरणकमल में सदा प्रीति रखते और सेवा करते हैं आदर निरादर को समान जानते हैं वे ही सन्त पृथ्वी पर सुखी हो विचरते हैं॥८॥ आप मुनियों के मनकमल के भ्रमर हैं, रघुवीर महारणधीर और अजय हैं, भयरोग और महामद मान के आप शत्रु हैं मैं आपका नाम जपता और प्रणाम करता हूं॥९॥ आप गुणशील कृपा के परमस्थान हो हे श्रीरमण! मैं आपको निरंतर प्रणाम करता हूं, हे रघुनन्दन! आप द्वन्द्व को दूर कीजिये हे महिपाल! आप दीनजनों को देखिये॥१०॥ दोहार्थ–हे श्रीरंग! बारंबार यही वर माँगता हूं कि, आप मुझे अपने चरणों की भक्ति दो॥१६॥

इति द्वितीय दर्शन

अथ तृतीय दर्शन

(बिभीषणादि का स्वदेश को बिदा होना)

स्थान रामसभा

"तब रघुपति निजसखा बुलाये । आयसबनि सादर शिरनाये ॥१॥"
राम-तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई । मुखपर केहिविधि करौं बड़ाई ॥२॥
ताते तुम मोहिं अतिप्रिय लागे । मम हितलागि भवनसुख त्यागे ॥३॥
अनुज राज सम्पति वैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥४॥
सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना । मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥५॥
सेवक प्रिय सबके यह नीती । मोरे अधिक दासपर प्रीती ॥६॥

दोहा–अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहिं दृढ़ नेम ।
"सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करहु अति प्रेम ॥१७॥
जाम्बवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ ।
हिय धरि राम स्वरूप सब, चले नाय पद माथ ॥१८॥
तब अंगद उठि नाय शिर, सजल नयन कर जोर ।
अति विनीत बोले वचन, मनहु प्रेमरस बोर ॥१९॥"

अंगद-सुन सर्वज्ञ कृपासुखसिन्धो । दीन दयाकर आरतबन्धो ॥१॥

स्थान रामसभा

टीका–तब रघुनाथजी ने अपने सखा बुलाये सबने आय चरणों में शिर नवाया ।।१।। राम बोले-तुमने मेरी बड़ी सेवा की मुख पर तुम्हारी क्या बड़ाई करुं।।२।। तुम मुझे इस कारण बहुत प्रिय लगे कि, तुमने मेरे निमित्त घर और सुखों को त्याग दिया।।३।। अनुज राज संपत्ति जानकी देह घर परिवार स्नेहीजन।।४।। यह सब कोई भी मुझे तुम्हारे समान प्यारे नहीं मैं मृषा नहीं कहता मेरी यह बान है।।५।। यह नीति है कि सेवक सबका प्रिय होता है मेरी दासों पर अधिक प्रीति हैं।।६।। दोहार्थ–हे सखा! अब तुम अपने घर जाओ दृढ़ नेम से मेरा भजन करो सदा सर्वगत सर्व हितकारी जानकर प्रेम करो।७।। जांबवंत नील बिभीषण सुग्रीवादि को रघुनाथ ने भूषण वस्त्रादि पहराये वे सब राम का स्वरूप हृदय में धारण कर चरणों में माथा नवाय चले।।१८।। तब अंगद ने उठ शिर नवाय नेत्रों में जल भर हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से प्रेम रस में सनी वाणी से कहा।।१९।। चौ०–अंगद-हे सर्वज्ञ! हे कृपा सुख के सागर! दीनों पर दया करनेवाले आर्त्तबंधु! सुनो।।१।।

भरती बार नाथ मोहिं वाली । गयो तुम्हारे पदतर घाली ।।२।।
अशरण शरण विरद संभारी । मोहिं जनि तजहु भक्त भयहारी ।।३।।
मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता । जाउं कहां तजिपद जलजाता ।।४।।
तुमहिं विचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काज मम काहा ।।५।।
बालक अबुध ज्ञान बलहीना । राखहु शरण जानि जनदीना ।।६।।

दोहा–अंगद वचन विनीत सुन, रघुपति करुणासीव ।
प्रभु उठाय उर लायऊ, सजल नयन राजीव ।।२०।।
निज उर माला वसन मणि, वालितनय पहिराइ* ।
बिदा किये भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ ।।२१।।

भरत अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भक्त चितचेता ।।१।।
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा । फिरि २ चितवत प्रभुकी ओरा ।।२।।
तब सुग्रीव चरण गहि नाना । भाँति विनय कीन्ही हनुमाना ।।३।।

---

* सवैया–शशिसूर मणीनकी माल मनोहर सूरज ज्योतिसी भास करै ।
तिहुँलोकमें मोल है तासु नहीं सुरवृन्द विलोकत शंक भरै ।
पहिराय दियो युवराजको सो रघुराज सहर्ष उठाय करै ।
मणिमालसों मंडित कीश भयो कनकाचलमें चपला ज्यों फिरै ।।१।।

ह०–दिनदशकरि रघुपति पद सेवा । तब फिरि चरण देखिहौं देवा ।।४।।

हे नाथ! मरती बार वालि मुझे आपके चरणों में डाल गया था।।२।। हे अनाथनाथ! अपना विरद विचारकर मुझे मत त्यागो।।३।। हे प्रभु! तुमही मेरे गुरु पिता माता हो तुम्हारे चरण कमल छोड़ कहां जाऊं।।४।। हे नरनाह! तुम ही विचारकर कहो कि आपको छोड़ घर में मेरा क्या काम है।।५।। मैं बालक मूर्ख ज्ञानबल से हीन हूं दीन जानकर मुझे अपनी शरण में रखो।।६।। दोहार्थ–यह अंगद के विनीत वचन सुन रामचंद्र कृपासागर ने नेत्रों में जल भर उठायकर अंगद को हृदय से लगाया।।२०।। अपने हृदय की माला वस्त्र मणि वालिपुत्र को पहराकर और बहुत प्रकार से समझाकर प्रभु ने बिदा किया।।२१।। चौ०–भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न समेत प्रेम से पहुँचाने चले।।१।। अंगद के हृदय में बड़ा प्रेम है बारंबार प्रभु की ओर देखता है।।२।। तब सुग्रीव के चरण स्पर्शकर महावीर ने बहुत विनय की।।३।। कि हे देव! दशदिन रघुनाथजी के चरणकमल की सेवा कर फिर तुम्हारे चरणकमल का दर्शन करूंगा।।४।।

सु०-पुण्यपुञ्ज तुम पवनकुमारा । सेवहु जाय कृपा आगारा ।।५।।
"असकहि कपिपति चले तुरंता । अंगद कहेउ सुनहु हनुमन्ता ।।६।।"
अंगद–दोहा–कहेहु दंडवत प्रभुसन, तुमहिं कहौं कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहि, सुरति करायहु मोरि ।।२२।।
"अस कहि चलेउ वालिसुत, फिरि आये हनुमान ।
तासु प्रीति प्रभुसन कही, मगन भये भगवान ।।२३।।
पुनि कृपालु लिय बोलि निषादा । दीन्हेउ भूषन वसन प्रसादा ।।१।।
राम-जाहु भवन मम सुमिरन करहू । मन क्रम वचन धर्म्म अनुसरहू ।।२।।
तुम मम सखा भरतसम भ्राता । सदा रहउ पुर आवत जाता ।।३।।
वचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरण लोचन भरि वारी ।।४।।
चरणकमल उर धरि गृह आवा । प्रभुस्वभाव परिजनहिं सुनावा ।।५।।
रघुपति चरित देखि पुरवासी । पुनिपुनि धन्य कहहिं सुखरासी ।।६।।
दोहा–वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ।।२४।।
दण्ड यतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।
जीतिय मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्रके राज ।।२५।।

सुग्रीव बोले–हे महावीर! तुम बड़े पुण्यात्मा हो जाकर रघुनाथजी की सेवा करो।।५।। ऐसा कह सुग्रीव तुरन्त चले तब अंगद ने कहा हे हनुमान! सुनिये।।६।। दोहार्थ–अंगद-प्रभु से मेरी

दंडवत कहियो मैं हाथ जोड़ता हूं और बारंबार रघुनाथजी को मेरी सुरत कराना॥२२॥ यह कह अंगद गये महावीर लौट आये प्रभु से उनकी प्रीति कही सुनकर भगवान मग्न हुए॥२३॥ फिर श्रीराम ने निषाद को बुलाया भूषण वसन प्रसाद दिया॥१॥ और बोले घर जाओ मेरा स्मरण कर मन वचन कर्म से धर्म करते रहो॥२॥ तुम मेरे भ्राता भरत के समान सखा हो सदा हमारे पुर में आते जाते रहो॥३॥ वचन सुनकर बड़ा सुख उपजा, नेत्रों में जल भर चरणों पर गिरा॥४॥ और चरणकमलों को हृदय में धर घर आया और कुटुम्बियों को प्रभु का स्वभाव सुना दिया॥५॥ राम के चरित्र देख पुरवासी धन्य धन्य कहने लगे॥६॥ दोहार्थ—लोग वर्णाश्रम के अपने अपने धर्म में निरत हैं वेदमार्ग में चलते हैं सुख पाते हैं, भय, शोक, रोग नहीं है॥२४॥ दण्ड तो यतियों के हाथ में है भेद नर्तकसमाज में है और जीतना मन का है ऐसा रामचन्द्र का राज्य है॥२५॥

विधु महि पूर मयूखन्ह, रवितप जितनहु काज ।
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज ॥२६॥

(सब गये)

इति रामलीला रामायण उत्तरकाण्ड ७

चन्द्रमा किरणों से भूमि को पूर्ण करता है, कार्य के अनुसार सूर्य तपता है और रामचन्द्र के राज्य में मेघ मांगने से जल देते हैं॥२६॥

इति तृतीय दर्शन

आरती

आरती श्रीरामायणजीकी । कीरति कलित ललित सियपीकी ॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । वाल्मीकि विज्ञान विशारद ।
शुकसनकादि शेष अरु शारद । वरणि पवनसुतकी रति नीकी ॥१॥
संतत गावत शंभु भवानी । औ घटसंभव मुनि विज्ञानी ।
व्यासआदि कपिपुंग बखानी । कागभुशुण्ड गरुड़के हीकी ॥२॥
चारउ वेद पुराण अष्टदश । छहौं शास्त्र सब ग्रन्थनको रस ।
तन मन धन संतनकी सर्वस । सारअंश सम्मत सबहीकी ॥३॥
कलिमलहरणि विषयरस फीकी । सुभगसिंगार मुक्ति युवतीकी ।
हरणि रोग भवभूरि अमीकी । तात मात सब विधि तुलसीकी ॥४॥

सम्वत ग्रह ९ शर ५ अंक ९ विधु, श्रावणमास पवित्र ।
भौमदिवस तिथि पूर्णिमा, पूरचो रामचरित्र ॥१॥
श्रीरघुनायकचरण गहि, महावीर शिर नाय ।
रामायण लीलाविधि, संग्रह कीन्ह सुभाय ॥२॥

पढ़हिं सुनहिं मनलाय जो, पावति सब मनकाम ।
सार यही सब ज़गतमें, भजिये सीताराम ।।३।।
बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको सदा, बुध ज्वालापरसाद ।।४।।
दीनबंधु करुणायतन, कृपासिन्धु सुखधाम ।
चरणकमलसुखदायिनी, भक्ति देहु श्रीराम ।।५।।

स्तुति

जयति मंगलागार संसार भारा पहर वानराकारविग्रह पुरारी ।
रामरोषानलज्वालमालामिषध्वान्त चरशलभ संहारकारी ।।
जयति मरुदंजनामोदमन्दिरनतग्रीवसुग्रीव दुःखैकबन्धो ।
यातुधानोद्धत क्रुद्धकालाग्नि हरसिद्ध सुरसज्जनान्दसिन्धो ।।
जयति रुद्राग्रणी विश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भटचक्रवर्ती ।
सामगताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्ती ।।
जयति संग्रामकर रामसन्देशहर कौशलाकुशकल्याण भाषी ।
रामविरहार्कसन्तप्तभरतादिनरनारिशीतलकरणकल्पशाखी ।।
जयति सिंहासनासीन सीतारमण निरखि निर्भर हरषनृत्यकारी ।
राम संभ्राज शोभासहित सर्वदा तुलसिमानस रामपुरविहारी ।।१।।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS